इकाई–1 : व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ, प्रकृति एवं विस्तार

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ एवं स्वरूप
1.3 व्यावहारिक मनोविज्ञान का विकास
1.4 व्यावहारिक मनोविज्ञान का इतिहास
1.5 व्यावहारिक मनोविज्ञान का विस्तार या सीमा
1.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
1.7 सारांश
1.8 निबन्धात्मक प्रश्न
1.9 संदर्भ ग्रन्थ

1.0 उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- व्यावहारिक मनोविज्ञान के अर्थ को समझ सकेंगें।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान की प्रकृति को समझ सकेंगें।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान के ऐतिहासिक विकास को जान सकेंगें।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान के विस्तार को जान सकेंगें।

1.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान को व्यवहार एवं मानसिक क्रियाओं का विज्ञान कहा जाता है। आज मनोविज्ञान का क्षेत्र इतना बढ़ गया है कि उसके सही और व्यवस्थित अध्ययन के लिए मनोविज्ञान को अनेक शाखाओं में बांटा गया है। मनोविज्ञान का विकास द्विमुखी हुआ है। जिसमें विकास की एक विमा सैद्धान्तिक विकास से सम्बन्धित और दूसरी विमा इन सिद्वान्तों के व्यावहारिक जीवन के प्रयोग से सम्बन्धित है। जब मनोविज्ञान की प्रत्येक शाखा के

व्यावहारिक पक्ष को एक साथ रखकर उनका अध्ययन करते है तो इसे व्यावहारिक मनोविज्ञान कहा जाता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान के द्वारा मानव की अतः शक्तियों का पता लगाया जाता है और फिर उस पर नियंत्रण करके उनमें परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है ताकि वे मानव के लिए अधिक उपयोगी तथा कल्याणकारी बन सके।

व्यावहारिक मनोविज्ञान के नाम से ही ये पता चलता है कि यह मनोविज्ञान का व्यावहारिक पहलू है। जिस तरह हर एक विज्ञान के दो पहलू होते हे। 1. मौखिक 2. व्यावहारिक , उसी तरह मनोविज्ञान में भी मौखिक अध्ययन के साथ–साथ व्यावहारिक पहलू भी होता है। विज्ञान का मूल स्रोत है कि मनुष्य को बुद्धि मिली है, जो उसे संसार के अन्य सभी प्राणियों से अलग करती है, वह अपनी इसी बुद्धि को आधार पर अपने चारों तरफ की चीजों को समझ सकता है और उनके आधार पर सामान्य नियम बना सकता है। इस नियमों का प्रयोग वह मानव जीवन को बेहतर बनाने के लिये कर सकता है। दूसरें विज्ञानों की तरह मनोविज्ञान का प्रयोग भी मानव कल्याण के लिये ही होता है।

प्रस्तुत इकाई में आप व्यावहारिक मनोविज्ञान के स्वरूप एवं विस्तार को पढ़ सकेंगें।

1.3 व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ एवं स्वरूप :

व्यावहारिक मनोविज्ञान मानव में अन्दर पायी जाने वाली प्राकृतिक शक्तियों का पता लगाता है, पता लगाने के बाद उन पर नियन्त्रण करके उनमें सही परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। इस प्रकार के परिवर्तन का मूल उद्देश्य मानव में अन्तर्निहित प्राकृतिक शक्तियों में इस प्रकार बदलाव करना है जिससे कि वे मानव के लिए और अधिक कल्याणकारी बन जाय।

व्यावहारिक मनोविज्ञान एक विधायक विज्ञान है जो मानव–जीवन से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित रखती है। जहॉ–जहॉ भी मानव–जीवन की समस्याएॅ आती है वही व्यावहारिक मनोविज्ञान अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है। मनुष्य के सामने विभिन्न क्षेत्रों में जो समस्याएॅ आती है वे प्रमुख रूप से समायोजन की असफलता के कारण आती है। व्यावहारिक मनोविज्ञान इस समायोजन में असफलता से सम्बन्धित कारणों तथा तथ्यों का पता लगाकर मनुष्य को इस योग्य बनाता है कि वह जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के साथ समायोजन स्थापित कर ले। आधुनिक समाज में व्यावहारिक मनोविज्ञान की भूमिका और लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसका प्रयोग समाज के विभिन्न क्षेत्रों में देखने को मिलता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान तथा सामान्य विज्ञान दोनो ही मानव व्यवहार का

अध्ययन करते है। व्यावहारिक मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों और नियमों का जीवन के अलग–अलग क्षेत्रों में अनुप्रयोग करता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान मानव व्यवहार के व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्धित होता हैं।

व्यावहारिक मनोविज्ञान की मुख्य पहचान बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हुई जब उद्योग तथा व्यवसाय में मनोविज्ञान का प्रयोग आरम्भ हुआ। व्यावहारिक मनोविज्ञान की आधारशिला के निर्माण में वाल्टर डिल स्काट का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वे प्रथम मनोवैज्ञानिक थे जिसे किसी अमेरिकी विश्वविद्यालय में व्यावहारिक मनोविज्ञान के प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया गया था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय और उसके पश्चात् व्यावहारिक मनोविज्ञान में तेजी से प्रगति हुई। सामान्य मनोविज्ञान में विकसित अनेक परीक्षणों जैसे बुद्धि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिक्षमता परीक्षण आदि का उपयोगे किया जाने लगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान और उसके पश्चात् मनोविज्ञान का अनुप्रयोग विविध क्षेत्रों, उद्योग, सैन्य सेवाओं, असैन्य सेवाओं, मनश्चिकित्सा आदि में विस्तृत रूप से किया जाने लगा। सरकारी तथा गैर सरकारी विभिन्न सेवाओं के लिए निष्पत्ति परीक्षणों को बनाया किया गया जो कर्मचारियों की योग्यता परीक्षा और पदोन्नति के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए।

व्यावहारिक मनोविज्ञान का उद्देश्य प्राकृतिक परिस्थितियों तथा शक्तियों को इस प्रकार नियंत्रित करना है जिससे वे और भी अधिक मनुष्य के लिए उपयोगी बन जाये।

1.4 व्यावहारिक मनोविज्ञान का इतिहास विकास

प्रारम्भ में मनोविज्ञान को आत्मा तथा मन का विज्ञान माना जाता था। आत्मा तथा मन का अध्ययन करने का केवल एक साधन था और वह था–अन्तर्दर्शन। इस समय मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए केवल अन्तर्दर्शन जैसी विधि ही उपलब्ध थी। इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति केवल अपनी स्वयं की ही मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन कर सकता था, इसलिए मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रयोग, अनुसन्धान तथा जीवन उपयोगिता का अभाव था। बाद में मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान माना जाने लगा।

चेतना के अध्ययन के बाद मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान बन गया। इस दिशा में प्रमुख व्यवहारवादी वाटसन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जब मनोविज्ञान व्यवहारों का अध्ययन करने लगा था तब जर्मन मनोविज्ञानशास्त्रियों ने समग्रवादी सम्प्रदाय को जन्म दिया। इसकी प्रमुख मान्यता थी कि व्यवहार को समझने के लिए परिस्थितियों की समग्रता का ज्ञान अनिवार्य है। इसके बाद व्यवहारों को समझने की नवीन विधियों का विकास हुआ।

मनोविज्ञान धीरे–धीरे सैद्धान्तिक से व्यावहारिक रूप ग्रहण करता रहा। मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों मे, जिन्होने मनोविज्ञान को व्यावहारिक रूप प्रदान करने में सहयोग दिया। लेविन का क्षेत्रवाद, मैक्डूगल का प्रेरकवाद, फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद, तथा ऑटो रैक के समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय का नाम लिया जा सकता है। इस समस्त सम्प्रदायों तथा विचारधाराओं के परिणामस्वरूप मनोविज्ञान की न केवल व्यवाहारिकता में वृद्धि हुई बल्कि व्यावहारिकता के क्षेत्रों में भी वृद्धि हुई। इसके बाद व्यावहारिक मनोविज्ञान का प्रयोग मापन एवं मूल्यांकन, निर्देशन, शिक्षा, अपराधशास्त्र उद्योग, समाजशास्त्र तथा चिकित्सा–विज्ञान में भी होने लगा।

पैटरसन ने अपने लेख 'एप्लाइड साइकॉलॉजी कम्स ऑफ एज' में व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास के इतिहास को निम्नांकित 4 खण्डों में विभाजित किया है–

1. **गर्भावस्था**– : व्यावहारिक मनोविज्ञान की गर्भावस्था वह अवस्था है। जब मनोविज्ञान के क्षेत्र में गाल्टन तथा बिने अपने प्रारम्भिक विचारों से मनोविज्ञान को नई दिशा प्रदान करने की कोशिश कर रहे थे।

2. **जन्म काल**– : प्रथम विश्वयुद्ध का समय व्यावहारिक मनोविज्ञान के जन्म का समय कहा जा सकता है, क्योंकि इस युग से ही अमेरिका में सैनिक भर्ती के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया।

3. **बाल्यावस्था या शैशवावस्था**– : सन् 1937 में अमेरिका में 'नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड साइकॉलॉजी' का स्थापना हुइ यहीं से ही व्यावहारिक मनोविज्ञान की शैशवावस्था प्रारम्भ हो जाती है। धीरे–धीरे सम्पूर्ण मनोविज्ञान का तीव्र गति से विकास हुआ।

4. **युवावस्था** – इसके बाद व्यावहारिक मनोविज्ञान ने अपने युवावस्था में प्रवेश किया। तब से इसका क्षेत्र बढता ही जा रहा है। आज व्यावहारिक मनोविज्ञान का हर क्षेत्र में प्रयोग हो रहा है।

वर्तमान समय में व्यावहारिक मनोविज्ञान एक अत्यन्त ही विकसित विज्ञान का रूप धारण कर चुका है,जिसका व्यापक प्रयोग शिक्षा, उद्योग, वाणिज्य, न्याय, अपराध, निर्देशन तथा सामाजिक क्षेत्रों में किया जाता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान मानव जीवन से सम्बन्धित क्षेत्रों का अध्ययन करता है और जिस भी क्षेत्र में समस्याएॅ आती है वहॉ अपना कार्य शुरू कर देता है। अधिकतर व्यावहारिक समस्याएॅ समायोजन से सम्बन्धित होती है, व्यावहारिक मनोविज्ञान इन्हीं का पता लगाकर मनुष्य को इस योग्य बनाता है कि वह जीवन की विभिन्न

परिस्थितियों को साथ समायोजन कर सके। जब मनुष्य में समायोजन की क्षमता विकसित हो जायेगी तो उसका मानसिक स्वास्थ्य भी उन्नत होगा।

मनोविज्ञान पहले दर्शन विषय की एक शाखा थी, बाद में मनोविज्ञान जब एक स्वतन्त्र विषय बना तो यह आत्मा का विज्ञान माना जाता था। मनोविज्ञान को कालान्तर में मन का विज्ञान माना जाने लगा। फिर इसे 'चेतना के विज्ञान की परिभाषा दी गई। अन्त में मनोविज्ञान को व्यवहारों का विज्ञान माने जाने लगा। उसके समुचित व्यवस्थित अध्ययन के लिए मनोविज्ञान को अनेक शाखाओं में विभाजित किया गया। जैसे –सामान्य मनोविज्ञान, पशु–मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान, शिक्षा मनोविज्ञान आदि। इसी प्रकार की मनोविज्ञान की आज लगभग 25 शाखाएँ उपलब्ध है। जिसमें अपने अपने क्षेत्र से सम्बन्धित पहलुओं का मनोविज्ञान की दृष्टि से अध्ययन करते है।

मनोविज्ञान के इस प्रकार के विकास में एक प्रवृत्ति और पाई गयी है जिसके अन्तर्गत मनोविज्ञान का विकास द्विमुखी हुआ है। इसमें से विकास की एक विभा सैद्धान्तिक विकास से सम्बन्धित है और दूसरी विभा उन सिद्धान्तों के व्यावहारिक जीवन के प्रयोग से सम्बन्धित है। मनोविज्ञान की प्रायः प्रत्येक शाखा इस प्रवृत्ति का अनुसरण कर रही है। विकास की इस द्विमुखी प्रवृत्ति के अन्तर्गत मनोविज्ञान की प्रत्येक शाखा एक ओर जहॉ विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती है, वही दूसरी ओर उन सिद्धान्तों के व्यावहारिक प्रयोग की सम्भावनाओं का भी पता लगाती है। इस प्रकार मनोविज्ञान की प्रायः प्रत्येक शाखा के दो पक्ष होते है–सैद्वान्तिक तथा व्यावहारिक। इन प्रत्येक शाखाओं के व्यावहारिक पक्षों को जब हम एक समग्र रूप में रखकर अध्ययन करते है तो उस समग्र रूप कोम ही कव्यावहारिक मनोविज्ञान का नाम देते है। दूसरे शब्दों में 'व्यावहारिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं के सिद्धान्तों का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग किया जाता है। यह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनोविज्ञान के सिद्धान्तों तथा नियमों का प्रयोग करने वाला धनात्मक विज्ञान है।

परिभाषायें

i. मनोविज्ञान की वह शाखा जो शुद्ध तथा विशेष रूप से प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की पद्धतियों तथा परिणामों का प्रयोग जीवन की समस्याओ तथा जीवन सचयं में करती है।

जेम्स ड्रेवर

ii. व्यावहारिक मनोविज्ञान के लक्ष्य मानव क्रियाओं का वर्णन भविष्य कथन और नियन्त्रण है ताकि हम स्वयं अपने जीवन को बुद्धिमन्तापूर्वक समझ सके और निर्देशित करके दूसरों के जीवन को प्रभावित कर सकें। **हैपनर**

1.5 व्यावहारिक मनोविज्ञान का विस्तार

व्यावहारिक मनोविज्ञान के विस्तार या सीमा को हम निम्न तरह से समझ सकतें हैं–

1. **शिक्षा में सहायता** – व्यावहारिक मनोविज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र में एक नयी क्रान्ति ही ला दी है। बालकों की समस्याओं को अब मनोवैज्ञानिक तरीकों से सुलझाने का लगातार प्रयास किया जा रहा है। मनोविज्ञान ने बालकों के प्रति हमारा नजरिया ही बदल दिया है। उसने शिक्षा में डन्डे का युग समाप्त कर दिया है। अब बालक को जबर्दस्ती या दण्ड के भय से सिखाने की कोशिश नहीं की जाती बल्कि उसे प्रोत्साहित करके, उसमें प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करके तथा अन्य मनोवैज्ञानिक तरीकों से सिखाने की कोशिश की जाती है। उसकी समस्याओं को समझने का प्रयास किया जाता है और सहानुभूति तथा धैर्यपूर्वक उसमें सुधार करने के उपाय किये जाते है। आज मनोविज्ञान ने सीखने की प्रक्रिया के सम्बन्ध में खोज करके और सीखने में प्रगति करने के लिए अनेक सुझाव बताये है। मनोवैज्ञानिक सुझावों के आधार पर पाठ्यक्रमों में सुधार किये जाते है तथा स्कूल एवं पाठशाला में विभिन्न कार्यक्रमों का प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रकार मनोविज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र में, विद्यार्थी, शिक्षक, शिक्षा प्रणाली तथा पाठय्क्रम सभी में बहुत अधिक सुधार किये है।

2. **उद्योग में सहायता**– उद्योग के क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के द्वारा उद्योगों मे विभिन्न पदो ंके लिए कर्मचारियों और कारीगरों को भर्ती करने मे आसानी हो गयी और इसके आधार पर प्रत्येक स्थान पर योग्य व्यक्ति रखा जा सकता है। उद्योगों में मजदूरों की हड़ताल को निबटाने, तालेबन्दी की समस्याओं को सुलझाने तथा मिल मालिक और मजदूरों के सम्बन्धों को अच्छा बनाने में मनोविज्ञान ने बहुत अधिक सहायता की है। मनोविज्ञान की सहायता से थकान और मानव कौशल का अध्ययन करके इस प्रकार के यन्त्रों का निर्माण किया जा रहा है जिनमें कम परिश्रम से अधिक काम हो सके। मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर ही श्रम–कल्याण की योजनायें बनाई जाती है। श्रमिकों के मनोरंजन का आवश्यक प्रबन्ध किया जाता है तथा काम में नयापन और ताजगी बनाये रखने की कोशिश की जाती है। मनोविज्ञान की सहायता से उपभोक्ताओं की प्रवृत्तियों का अध्ययन करके वस्तुओं में सुधार किया जाता है। वस्तुओं के

मूल्य निश्चित करने मे, उनके डिजाइन आदि बनाने में भी मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार उद्योग के प्रत्येक पक्ष में भी मनोविज्ञान बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

3. **अपराध और न्याय में सहायता** – अपराध और न्याय के क्षेत्र में भी मनोविज्ञान ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किये है। मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण आज अपराधी को सीधे दण्ड नही दिया जाता है बल्कि उसके व्यक्तित्व के दोशों को समझकर उसको सुधारने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार अपराधियों को सुधारने की दिशा में रोज नये प्रयोग किये जा रहे है। प्रोबेशन, सुधारगृह, बोर्स्टल स्कूल, खुले जेलखाने आदि इसी के परिणाम है। इस प्रकार मनोविज्ञान के प्रभाव से अपराधियों के सुधार के साथ–साथ उनकी परिस्थितयों में भी सुधार की कोशिश की जाती है क्योंकि मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि अपराधी अकेले ही अपने अपराधों के लिए उत्तरदायी नही होते है बल्कि उसकी परिस्थितियॉ भी उनके लिए जिम्मेदार होती है। आज मनोविज्ञान के प्रभाव से दण्ड देने की प्रकिया मे भी परिवर्तन हो गया है। दण्ड देने के प्रतिकार की भावना के स्थान पर सुधार की भावना आती जा रही है। किशोर अपराधियों को तो दण्ड लगभग नहीं दिया जाता बल्कि उनकी देख–रेख, नियंत्रण तथा सुधार का प्रयास किया जाता है। मनोविज्ञान ने अपराधी और निर्दोश को पहचानने में भी सहायता दी है। मनोविज्ञान की सहायता से न्यायाधीश तथा वकील झूठे गवाहों को आसानी से पहचान जाते है। इस प्रकार न्याय और अपराध निरोध के क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

4. **व्यापार में सहायता**– उद्योग के साथ–साथ व्यापार में भी मनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रचार तथा विज्ञापन के रोज नये और आकर्षक तरीके जो आप देखते हैं उनमें मनोविज्ञान का ही योगदान है। विज्ञान आधुनिक व्यापार की रीढ़ है। उससे द्वारा ग्राहकों में किसी वस्तु के प्रति रूचि उत्पन्न की जा सकती है। रूचि मनोवैज्ञानिक अध्ययन का विषय है। प्रचार में सुझाव का बडा महत्व है। सुझाव मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय है। अतः सुझाव और रूचि में मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर प्रचार तथा विज्ञापन के साधनों में नित्य नये सुधार किये जा रहे है। पश्चिमी देशों में उद्योग और व्यापार में मनोविज्ञान का बहुत अधिक प्रयोग किया जा रहा है। भारतवर्ष में अभी इसका इतना अधिक प्रचार नहीं है। इसी कारण यहॉ उद्योग और व्यापार की अभी उतनी उन्नति नहीं हुई है जितनी कि पाश्चात्य देशों में हुई है।

5. **मापन व मूल्यांकन में**– व्यावहारिक मनोविज्ञान यह भी अध्ययन करता है कि मानव एवं मूल्यांकन को कैसे अधिक वस्तुनिष्ठ व वैज्ञानिक बनाया जा सकता है तथा मनुष्य की

विभिन्न मानसिक शक्तियों तथा उपलब्धियों का सही मूल्यांकन कैसे किया जा सकता है?व्यावहारिक मनोविज्ञान के अर्न्तगत मुख्य रूप से व्यक्तित्व, बुद्धि, रूचि, अभियोग्यता, निष्पत्ति आदि के मूल्यांकन का अध्ययन किया जाता है।

6. **भौक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन में**– व्यावहारिक मनोविज्ञान निर्देशन के सामान्य तत्त्वों, निर्देशन के प्रकार, उनकी सामान्य विशेषताएँ तथा निर्देशन प्रदान करने के सामान्य नियमों को अपने आप में सम्मिलित करता है और उन नियमों की तलाश करता है जिससे सही निर्देशन प्रदान किया जा सके। शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में यह छात्रों की समस्याओं का समाधान करता है। व्यवसायिक निर्देशन के क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान व्यवसायिक विश्लेषण करता है तथा व्यक्ति की मनोशारीरिक विशेषताओं का पता लगाकर उन्हें आवश्यक निर्देशन प्रदान करता है।

7. **मानसिक चिकित्सा में सहायता** – शिक्षा, अपराध और न्याय के साथ साथ चिकित्सा के क्षेत्र में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पुराने समय में जब मनोवैज्ञानिकों का हस्तक्षेप नही होता था तब विक्षिप्तों अथवा पागलों का ओझां आदि के द्वारा उपचार कराया जाता था और उनपर अत्याचार किये जाते थे। मनोवैज्ञानिकों ने पागलों की बेडियॉ कटवा दी और पागलपन के मानसिक कारणों का विश्लेषण करके उनका इलाज प्रारम्भ किया। आज जिस जगह पर भी पागलखाने स्थित हैं उनके साथ कोई न कोई मनोवैज्ञानिक अवश्य रहता है। पागलपन के साथ साथ अनेक प्रकार के मानसिक रोगों जैसे हिस्टीरिया आदि के बारे में लोगों में भारी भ्रॅान्तियॉ फैली हुई थी और रोगियों पर नाना प्रकार के अत्याचार किये जाते थे। मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक रोगों के कारणों का पता लगाया और उनका विश्लेषण करके मानसिक रोगों का सफलतापूर्वक इलाज किया। फ्रायड, युॅग आदि मनोविश्लेषणवादियों ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण खोजें की है। मन और शरीर का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। आजकल शारीरिक रोगो के साथ मानसिक परेशानियॅा भी लगी होती है। इसलिए इन परेशानियों को दूर करने के लिए आधुनिक चिकित्सक भी मनोवैज्ञानिकों की सहायता लेते है।

8. **व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने में सहायता**– व्यावहारिक मनोविज्ञान ने व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने में भी बहुत अधिक सहायता की है। अक्सर हम अपने कामों में आन्तरिक प्रेरकों को स्वयं नहीं जान पाते तथा अपनी अनेक मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों के उल्टे–सीधे अर्थ लगा लेते है। मनोविज्ञान ने हमें अपनी अनेक समायोजन सम्बन्धी कठिनाइयों, मानसिक परेशानियों तथा उलझनों को समझने में सहायता दी है।

उदाहरण – सीखने को ही ले लीजिए। सीखने की सर्वोत्तम विधि कौन सी है, सीखने में कठिनाइयों जैसे पठार आदि को दूर करने के क्या उपाय है और विभिन्न व्यक्तियों तथा एक व्यक्ति की विभिन्न अवस्थाओं में किस बात को सीखने की क्या सीमायें है आदि महत्वपूर्ण बातों को समझने में मनोविज्ञान ने बडी सहायता की है। मनोविज्ञान से केवल मानसिक शक्तियों का उपयोग करने तथा उनकी कठिनाइयों को दूर करने में ही सहायता नहीं मिलती बल्कि शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करने और उनके विकास की बाधाओं को दूर करने में भी सहायता मिलती है। शारीरिक क्रियाओं का मानसिक क्रियाओं से बडा निकट सम्बन्ध होता है। कई बार थकान शारीरिक न होकर मानसिक ही होती है। कभी–कभी केवल परिवर्तन मात्र से हमारी कार्य क्षमता में बडा बदलाव दिखाई पड़ता है।

9. दूसरों को समझने में सहायता– व्यावहारिक मनोविज्ञान केवल अपने को समझने में ही सहायक नहीं होता, बल्कि दूसरों को समझने मे भी सहायक सिद्ध होता है। उसके द्वारा हम दूसरे लोगो के भिन्न–भिन्न व्यवहारों के कारणों समझ पाते है। मनोविज्ञान से दूसरों की कठिनाइयॉ समझने में सहायता मिलती है। व्यावहारिक मनोविज्ञान का सभी मानव समूहों, परिवारों, क्रीडा समूह, स्कूल, कालेज, क्लबों आदि सभी जगह बड़ा महत्व है। मनोविज्ञान के द्वारा प्रेमी–प्रेमिका को, पति–पत्नी को, स्त्री–पुरूष को, माता–पिता, बाल बच्चों को तथा नेता जनता को समझ पाते है। व्यावहारिक मनोविज्ञान प्रत्येक प्रकार के मानव सम्बन्धों को समझने तथा उनकी कठिनाइयों को सुलझाने में सहायक होता है।

10. व्यावहारिक कुशलता में सहायता– व्यावहारिक मनोविज्ञान का व्यावहारिक कुशलता प्राप्त करने में बडा महत्व है। व्यावहारिक कुशलता अपने तथा दूसरों को समझने पर आधारित है। मनोविज्ञान इन दोनों में ही सहायक होता है। इस प्रकार मनोविज्ञान मनुष्य की उसके प्रत्येक कार्य में सहायता करता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान जानने वाला व्यक्ति ही सफल पति, सफल पिता, सफल मित्र, सफल शिक्षक, सफल नेता, सफल डाक्टर एवं सफल वकील हो सकता है। मनोविज्ञान घर में, व्यवसाय में, खेल में, जीवन के सभी क्षेत्रों में सहायक होता है।

11. सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में सहायक– व्यावहारिक मनोविज्ञान का महत्व केवल व्यक्ति के निजी एवं धरेलू जीवन में ही नही है बल्कि उसके सामाजिक जीवन में भी है। समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था होता है। इन सामाजिक सम्बन्धों के ठीक रहने से ही समाज ठीक रहता है। इनकी गडबडी से सामाजिक समस्याये उत्पन्न होती है।

ये सामाजिक सम्बन्ध मनुष्य की प्रवृत्तियों, भावनाओं आदि के आपसी सामंजस्य पर निर्भर होते है। वास्तव में सामाजिक समस्यायें इसी समायोजन से सम्बधित समस्यायें है। इन सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए अर्थात् समाज के सभी व्यक्तियों के सही अनुकूलन के लिए समाज सुधारकों को मनोविज्ञान का व्यावहारिक उपयोग करना चाहिए।

उदाहरण – भारत में जाति भेद की समस्या बहुत अधिक है। जातिवाद एक विशेष रूढिवादी मानसिक व्यवहार को प्रकट करता है। इस रूढिवादी मानसिक व्यवहार को जब तक हम समझेगें नहीं तब तक जातिवाद की समस्या हल नहीं की जा सकती। इसके लिए व्यावहारिक मनोविज्ञान बहुत अधिक सहायक होता है।

12. नौकरियों में भर्ती में सहायता– व्यावहारिक मनोविज्ञान का एक महत्व प्राइवेट या सरकारी नौकरियों के चुनाव में भी होता है। इसके द्वारा किसी भी व्यवसाय में उपयुक्त व्यक्तियों का चुनाव किया जाता है। सभी आधुनिक सरकारें या कम्पनियां अपनी सभी तरह की नौकरियों में उपयुक्त व्यक्तियों की भर्ती के लिए बडे पैमाने पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग करती है। इससे राष्ट्रीय शक्ति का सर्वोतम उपयोग हो पाता है।

13. राजनैतिक क्षेत्र में महत्व– राजनैतिक क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान का बडा महत्व है। जनतऩ्त्रीय सरकारों में जन–समुदाय की प्रवृत्तियों, रूढियों आदि को समझना आवश्यक होता है। उनके विरूद्ध चलने वाली सरकार अधिक दिन नही टिक सकती। इसलिए आधुनिक सरकारें उनका बडा ध्यान रखती है। जनतन्त्रीय सरकारों में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि सरकार बनाते है। चुनावों में प्रचार का बडा महत्व होता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान के आधार पर यह प्रचार जितना ही मनोवैज्ञानिक होगा, चुनाव में सफलता की आशा भी उतनी ही अधिक होगी। कानून बनाने में भी मनोवैज्ञानिक ज्ञान से लाभ होता है क्योंकि जनता की मनोवृत्तियों के विरूद्ध कानून चलना कठिन होता है।

14 युद्धकाल में महत्व – युद्धकाल में मनोविज्ञान का महत्व और भी बढ जाता है। आधुनिक युद्ध में शीत युद्ध मनोवैज्ञानिक प्रचार पर ही निर्भर होते है। युद्ध में सेनाओं में विश्वास बनाये रखना बडा आवश्यक होता है वरना जीती हुई बाजी हारी भी जा सकती है। जल, थल, वायु सेनाओं के लिए उपयुक्त व्यक्तियों के चुनाव में मनोविज्ञान की ही सहायता ली जाती है। युद्ध में विशेष अवसरों के लिए विशेष प्रकार के सैनिकों तथा नेताओं का चुनाव मनोवैज्ञानिक आधार पर किया जाता है। शत्रु के आक्रमण करने पर जनता की प्रतिक्रियाओं का बडे गौर से अध्ययन किया जाता है और मनोवैज्ञानिक सुझावों द्वारा उनमें स्थिरता और दृढ़ता बनाये रखने की कोशिश की जाती हैं।

15. विश्व भाान्ति में मनोविज्ञान का योगदान– विश्व शान्ति को बनाये रखने में भी मनोविज्ञान का बडा महत्व है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण समझ लेने पर विभिन्न राष्ट्रों के लोगों में आपसी भेद–भाव कम हो जाता है। दूसरों को समझने से भाईचारे की भावना बढती है। मनुष्य की आक्रामक प्रवृत्तियों के ज्ञान से उनको अहानिकारक तरीको जैसे खेलों की प्रतियोगिता आदि के द्वारा निकाला जा सकता है। अशान्ति और संघर्ष मे मनोवैज्ञानिक कारणों को ध्यान में रखकर उनके प्रकट होने से पहले उन्हें खत्म किया जा सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विश्व शान्ति की समस्या मानव सम्बन्धों के समायोजन एवं अनुकूलन की समस्या है। अतः मनोविज्ञान के ज्ञान से इन समस्याओं को सुलझाया जा सकता है।

1.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. व्यावहारिक मनोविज्ञानक का प्रारम्भ बीसवी शताब्दी के आरम्भ में हुआ।
2. व्यावहारिक मनोविज्ञान का एक उद्देश्य निर्देशन प्रदान करना है।
3. नेशनल इस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड साइकोलॉजी की स्थापना 1937 में जर्मनी में हुई।
4. प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला का प्रारम्भ विटमर ने पेनसिलवानिया विश्वविद्यालय में किया।
5. युंग ने मनोविश्लेषणवाद की स्थापना की।
6. मनोविज्ञान के दो पहलू होते है– मौखिक, व्यावहारिक ।
7. द्वितीय विश्व युद्ध में सैनिकों की भर्ती के लिये आर्मी अल्फा तथा आर्मी बीटा परीक्षण प्रयोग किये थे।
8. 1970 से 1910 तक व्यावहारिक मनोविज्ञान का जन्मकाल माना जाता है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. असत्य

6. सत्य
7. सत्य
8. असत्य

1.7 सारांश

- व्यावहारिक मनोविज्ञान, मनोवज्ञिान का व्यावहारिक पहलू है।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास के इतिहास को चार भागों में बॉटा गया है।
    1. गर्भावस्था (1882–1917 तक)
    2. जन्मकाल (1917–1918 तक)
    3. बाल्यवस्था (1918–1937 तक)
    4. युवावस्था (1937–वर्तमान तक)
- व्यावहारिक मनोविज्ञान ने मनोवज्ञिान की व्यक्तिगत विभिन्नताओं से सम्बन्धित खोज को सबसे अधिक बढ़ाना दिया।
- प्रथम विश्वयुद्ध के बाद व्यावहारिक मनोविज्ञान का विकास तेजी से हुआ।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान मानव जीवन से सम्बधित क्षेत्रों का अध्ययन करता है।

4. व्यावहारिक मनोविज्ञान का विस्तार या सीमा शिक्षा में न्याय व अपराध में, उद्योग में, मानसिक चिकित्सा में, व्यापार आदि तक है।

5. व्यावहारिक मनोविज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र में, विद्यार्थी, शिक्षक, शिक्षा प्रणाली तथा पाठय्क्रम सभी में बहुत अधिक सुधार किये है।

6. न्याय और अपराध निरोध के क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

7. व्यावहारिक मनोविज्ञान के अर्न्तगत मुख्य रूप से मानव के व्यक्तित्व, बुद्धि, रूचि, अभियोग्यता, निष्पत्ति आदि का मूल्यांकन का अध्ययन किया जाता है।

- मानसिक चिकित्सा के क्षेत्र में भी व्यावहारिक मनोविज्ञान ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान के द्वारा व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने में, दूसरों को

समझने में, व्यावहारिक कुशलता में ,सामाजिक सम्बन्धों के ठीक करन मे, प्राइवेट या सरकारी नौकरियों के चुनाव में, राजनैतिक क्षेत्र में, युद्धकाल में, विश्व शान्ति को बनाये रखने म भी बहुत अधिक सहायता की है।

- व्यावहारिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानव जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याओं के हल किये जाते है।

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान को परिभाषित करिये! व्यावहारिक मनोविज्ञान के ऐतिहासिक विकास एवं उद्देश्यों का वर्णन करिये।
2. व्यावहारिक मनोविज्ञान के अर्थ एवं स्वरूप को बताइये! इसके विस्तार को समझाइये।

1.9 संन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा. रामपाल सिंह, प्रो.सत्यदेव सिंह, डा.देव दत्त शर्मा, – व्यावहारिक मनोविज्ञान
2. डा. घनश्याम दास रस्तोगी– आधुनिक व्यावहारिक मनोविज्ञान
3. Harold Ernest Burtt- Applied Psychology
4. Dr. Ashok Kumar- Applied Psychology

इकाई–2 : व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र
  2.2.1 शिक्षा मनोविज्ञान
  2.2.2 नैदानिक मनोविज्ञान
  2.2.3 औधोगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान
  2.2.4 परामर्श एवं निर्देशन मनोविज्ञान
  2.2.5 सामुदायिक मनोविज्ञान
  2.2.6 स्कूल मनोविज्ञान
  2.2.7 सामाजिक मनोविज्ञान
  2.2.8 पर्यावरणीय मनोविज्ञान
  2.2.9 स्वास्थ्य मनोविज्ञान
  2.2.10 न्यायिक मनोविज्ञान
  2.2.11 खेलकूद मनोविज्ञान
  2.2.12 सैन्य मनोविज्ञान
2.3 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
2.4 सारांश
2.5 निबन्धात्मक प्रश्न
2.6 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य :–

व्यावहारिक मनोविज्ञान की इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप–

- व्यावहारिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न क्षेत्रों के बारे में जान सकेंगें।

2.1 प्रस्तावना

व्यावहारिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का एक पहलू है! इसका प्रचार धीरे–धीरे बढ़जा जा रहा है। इस बात को लगातार अनुभव किया जा रह है कि आज चाहे वो शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे उद्योग धन्धे हो, चुनाव प्रचार हो आदि सभी क्षेत्रों में मनोवैज्ञानकि उपायो से काम लेने की आवश्यकता है। आज हर एक क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक पद्धतियो, निरीक्षण, परीक्षण तथा अनुसंधान का बहुत महत्त्व है! मनोविज्ञान के इस महत्व को समझते हुए देश–विदेश हर जगह मनोविज्ञानशालायें खोली जा रही है। जिसमें व्यवसायिक निर्देशन, शिक्षा, मानसिक स्वास्थ्य तथा अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने का प्रयास लगातार किया जा रहा है। इस प्रकार व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र निरन्तर तरक्की कर रहा है। यह सच है कि मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान की बहुत आवश्यकता महसूस की जा रही है। व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

प्रस्तुत इकाई में इसके मुख्य–मुख्य क्षेंत्रों के बारे में आप अध्ययन कर सकेंगे। यहॉ पर केवल उन्ही क्षेत्रों का वर्णन किया जाएगा जिनमें मनोविज्ञान का प्रयोग प्रमुख रूप से किया जा रहा है।

2.2 व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र

व्यावहारिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत वे क्षेत्र आते है जिनमें मनोविज्ञान के विविध सिद्धान्तों एवं नियमो का अनुप्रयोग किया जाता है। मानव जीवन का जन्म से लेकर मृत्यु तक कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें मनोविज्ञान द्वारा अर्जित ज्ञान का प्रयोग न किया जा सके। अपनी उपयोगिता के कारण अपने विकास के कम समय में ही व्यावहारिक मनोविज्ञान ने अपना विषय–क्षेत्र बहुत ही अधिक बढा़ लिया है। वर्तमान समय में व्यावहारिक मनोविज्ञान एक बहुत ही विकसित विज्ञान का रूप धारण कर चुका है। आधुनिक समाज में व्यावहारिक मनोविज्ञान की भूमिका और लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसका प्रयोग समाज के विभिन्न क्षेत्रों में देखने को मिलता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान तथा सामान्य विज्ञान दोनो ही मानव व्यवहार का अध्ययन करते है। व्यावहारिक मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों और नियमों का जीवन के अलग–अलग क्षेत्रों में अनुप्रयोग करता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान मानव व्यवहार के व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्धित होता हैं।

व्यावहारिक मनोविज्ञान अन्तर्गत जो क्षेत्र आते है उनमें मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों तथा

समूह के मनोवैज्ञानिक समस्याओं के समाधान में अपने कौशल एवं शोध का उपयोग करते है ताकि उन **समस्याओं का समाधान किया जा सके तथा व्यक्तियों का सही मार्गदर्शन किया जा सके।**

ये क्षेत्र निम्नलिखित है–

2.2.1.शिक्षा मनोविज्ञान – व्यावहारिक मनोविज्ञान का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में होता है। शिक्षा के क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान अधिगम से सम्बन्धित अलग–अलग तत्त्वों का अध्ययन करता और यह जानने का प्रयास करता है कि अधिगम को किस प्रकार सरल, स्थायी तथा प्रभावशाली बनाया जा सकता है। ।आजकल शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान का प्रयोग बढता ही जा रहा है यहॉ तक कि शिक्षा मनोविज्ञान एक स्वतन्त्र विषय ही बन गया है। शिक्षण की प्रक्रिया के विषय में रोज नई खोजे की जा रही है। इस तरह प्रत्यक्षीकरण, स्मृति चिन्तन तर्क आदि अनेक मानसिक प्रक्रियाओं का पूरी तरह लाभ उठाने और उनका पूरी तरह विकास करने के विषय मनोवैज्ञानिक नियमों की खोज की जा रही है। पाठ्यक्रम को बालक की रूचि, योग्यता तथा व्यक्तित्व के अनुकूल बनाने की कोशिश की जा रही है। शिक्षा मनोविज्ञान यह भी बतलाता है कि शिक्षा देने के सबसे उत्तम उपाय कौन–कौन से है, बालकों में अनुशासन किस तरह उत्पन्न किया जा सकता है, स्वास्थ्यदायक आदतें कैसे बनाई जा सकती है, बुरी आदतें कैसे छुडाई जा सकती है तथा बालक की विभिन्न योग्यताओं का सर्वोत्तम विकास किस तरह किया जा सकता है?विद्यार्थियों की अभिरूचि की परीक्षा करके मनोवैज्ञानिक उनके अध्ययन के विषयों को निश्चित करने में सहायता देते है। मनोवैज्ञानिक शिक्षा की सीमायें तथा सम्भावनायें बतलाता है और इन सम्भावनाओं को प्राप्त करने के साधन भी बतलालाता है।

मनोविज्ञान शिक्षक के लिये सबसे अधिक लाभदायक है। शिक्षा का उद्देश्य बालक का विकास करना है। बालक के विकास का अध्ययन मनोविज्ञान करता है और वही यह बतलाता है कि शिक्षक किस बालक का किस तरह विकास करें। क्लीफोर्ड टी. मार्गन के शब्दों में '' बालक के विकास का अध्ययन हमें यह जानने योग्य बताता है कि क्या पढ़ायें, कब पढ़ाये और कैसे पढ़ायें। शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें मनोविज्ञानियों की सक्रियता अधिक पायी जाती है। शिक्षा मनोविज्ञानी शैक्षिक प्रक्रिया के मनोवैज्ञानिक पहलुओं का विशेष अध्ययन करते है। सीखने के नियमों के अध्ययन के अलावा शिक्षा मनोविज्ञानी और भी कई पहलुओं पर अपना ध्यान देते है। जैसे छात्रों का शैक्षिक निष्पादन किस तरह से व्यक्तिगत विभिन्नता, व्यक्तित्व कारक तथा सामाजिक अन्तःक्रिया आदि से प्रभावित होता है। अपने शोध कार्य में कुछ विशेष चरों जैसे–शिक्षक–छात्र अन्तः

क्रिया एवं सीखने तथा छात्रों के मनोबल पर पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन किया जा सकता है।, यह कहा जा सकता है कि शिक्षा मनोविज्ञानी का संबंध मुख्य रूप से सीखने तथा अभिप्रेरण के बारे में मनोवैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग करके छात्रों में सीखने की क्षमता को बढाना है।

2.2.2. नैदानिक मनोविज्ञानः – व्यावहारिक मनोविज्ञान समायोजन, तनाव, संघर्ष, मानसिक रोग, उनके लक्षण, कारण तथा उपचार के विभिन्न उपायों का अध्ययन करता है। व्यावहारिक मनोविज्ञानी मनोचिकित्सा की विधियों का अध्ययन करता है तथा उन उपायों की खोज करता है जिनसे मानसिक स्वास्थता बनाई रखी जा सके। मानसिक रोगों का उपचार कैसे किया जाय, मनोचिकित्सक के क्या गुण होने चाहिए, मनोपचार हेतु प्रयोगशाला कैसी हो, मनोचिकित्सा हेतु क्या विधियॉ या औषधियॉ प्रयोग में लायी जायॅ आदि सभी बातो का अध्ययन व्यावहारिक मनोविज्ञान में करते है। मानसिक रोगो का इलाज करने में मनोविज्ञान का बडा महत्व है। मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक रोग सम्बन्धी खोजे की है। पहले इन रोगों का कारण भूत प्रेत आदि को समझा जाता था और इसके लिए झाडने तथा ओझा के पास ले जाकर मानसिक रोगियों पर अत्याचार होता था। नैदानिक मनोविज्ञान से व्यक्तियों के असामान्य व्यवहार से सम्बन्धित समस्याओं को समझने, उनके कारणों का पता लगाने तथा उन कारणों को दूर करके व्यक्ति के वातावरण के अनुकूल बनाने में सहायता मिलती है। इन रोगो का विश्लेषण में मनोविश्लेषणवादी खोजो ने बडी सहायता की है। बहुत से रोग ऐसे है जिनका मनोविश्लेषण द्वारा बडी सफलता से इलाज किया गया है। रोग को ठीक–ठीक पता लगाने में चिकित्सक को मनोविज्ञान से बडी सफलता मिलती है क्योंकि प्रत्येक रोग का एक मनोवैज्ञानिक पहलू भी होता है।

नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान का सबसे प्रचलित एवं बडी व्यावहारिक शाखा है। मनोविज्ञान की कुल संख्या का 43 प्रतिशत मनोवैज्ञानिक केवल नैदानिक मनोविज्ञान है। नैदानिक मनोविज्ञानियों का सबसे प्रमुख कार्य मनोवैज्ञानिक समस्या से ग्रसित लोगों को चंगा करना है ताकि वे अपने दिन–प्रतिदिन की दुनिया में ठीक ढंग से समायोजन कर सके। नैदानिक मनोविज्ञानियों द्वारा मुख्य रूप से तीन कार्य अधिक किये जाते है–

1. शोध, 2. निदान तथा 3. उपचार

मनश्चिकित्सा के विभिन्न विधियों के माध्यम से ये लोग मानसिक रोग का उपचार करते है। नैदानिक मनोविज्ञानियों द्वारा समस्याओं के निदान के लिए बहुत तरह की निदानसूचक प्रविधियों का उपयोग नैदानिक मूल्यांकन में किया जाता है।

उदाहरण – साक्षात्कार,व्यक्ति इतिहास, मनोवैज्ञानिक परीक्षण आदि। नैदानिक मनोविज्ञानी विश्वविद्यालय, उपचारगृह, मानसिक अस्पताल आदि के क्षेत्र में अधिक सक्रिय होते है।

2.2.3. औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान– उद्योग एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें मनोवैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता है। उद्योगों के क्षेत्र में मनोविज्ञान की उपयोगिता आज बहुत बढ गइ है इस कारण औद्योगिक मनोविज्ञान नाम से मनोविज्ञान की एक नई शाखा भी विकसित हो चुकी है। 1960 तक व्यापार और उद्योग वैज्ञानिक मनोविज्ञान का कम उपयोग करते थे। किन्तु आज परिस्थिति बिल्कुल भिन्न है। अब कर्मचारियों के चयन, मशीनों को डिजाइन करने, श्रमिकों तथा प्रबन्धकों के परस्पर सम्बन्धों को मधुर बनाने तथा उत्पादन वृद्धि में मनोवैज्ञानिकों की सेवाओं का बहुत अधिक उपयोग किया जा रहा है। आज बडे स्तर पर औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कर्मचारियों के चयन और समस्याओं के निदान में मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाता है।

कर्मचारियों या श्रमिकों की मानसिक दशा, वायु, प्रकाश, यन्त्र, प्रबन्ध की प्रवृत्ति आदि तत्त्वों का भी अध्ययन व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक के अन्तर्गत होता है, उत्पादन की विभिन्न परिस्थितियों में मनोवैज्ञानिक प्रभाव क्या होते है, उत्पादन को बढाने के क्या मनोवैज्ञानिक उपाय है, तथा प्रबन्धन की विभिन्न विधियों तथा नीतियों का कर्मचारियों पर क्या मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ सकता है।

औद्योगिक मनोविज्ञान में उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है तथा उनका समाधान ढूँढने का प्रयास किया जाता है। औद्योगिक मनोविज्ञान का संबंध कर्मचारियों एवं कार्यो के विभाजन, कार्मिक चयन, कार्य मूल्यांकन, कार्य मनोवृत्ति, कार्य के भौतिक वातावरण आदि के अध्ययन से होता है। कार्मिक चयन में औद्योगिक मनोविज्ञानी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों एवं साक्षात्कार का उपयोग करते हैं जो कर्मचारी के चयन एवं स्थान निर्धारण में सहायता करते है। औद्योगिक मनोविज्ञानी अपने कर्मचारियों एवं वरिष्ठ प्रबंधकों के लिए विभिन्न तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम का भी आयोजन करते है। ऐसे प्रशिक्षणों से कर्मचारियों का तकनीकी कौशल को बढाया जाता है, उनके मनोबल को बढ़ाया जाता है तथा समूह के तनाव को कम किया जाता है। औद्योगिक मनोविज्ञानी कम्पनी को एक मानव संगठन के रूप में समझते है और उसमें कुछ ऐसे परिवर्तन करना चाहते है जिनसे कम्पनी की उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है। उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में मनोविज्ञान ने बड़ी सहायता की है। उसने उद्योग और व्यापार को

वैज्ञानिक स्तर पर लाने की चेष्टा की है। मनोविज्ञान का इस क्षेत्र में कहॉ तक प्रयोग किया जाता है यह इसी बात से पता चलता है कि औद्योगिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक अलग शाखा ही बन गया है।

उदाहरण – एक कारखाने के मालिक के सामने अधिक से अधिक और अच्छी किस्म का उत्पादन करने का लक्ष्य होता है। इसके लिए उसके सामने कुछ आदमी और मशीनें होती है। कारखाने में सैकड़ों तरह के अलग–अलग काम होते है जिनके लिए अलग–अलग योग्यता के कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। अधिक से अधिक उत्पादन तभी हो सकता है जबकि प्रत्येक काम पर उसके योग्य ही कर्मचारी को रखा जाय। यह मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की सहायता से किया जा सकता है। आधुनिक औद्योगिक केन्द्र भिन्न–भिन्न कार्यो के लिए योग्य व्यक्तियों के चुनाव के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का सहारा लते है। कर्मचारियों की कार्य विधि की जॉच में तथा उनकी देख–रेख सम्बन्धी समस्याओं में भी मनोवैज्ञानिकों की सहायता ली जाती है। इसके अतिरिक्त कारखानों की बहुत सी समस्याओं जैसे काम करने की विधि, औजारो में सुधार, काम करने के घण्टे तथा विश्राम के समय का वितरण, थकावट और नीरसता दूर करने के उपाय, वेतन तथा मजदूरी का निश्चय, काम करने की स्वास्थ्यप्रद परिस्थितियॉ उत्पन्न करने आदि में भी मनोवैज्ञानिकों से बहुत सहायता मिलती है। मजदूरों और कारीगरों की हड़ताल और मिलों में तालाबन्दी की समस्यायें सुलझाने में भी मनोविज्ञान ने बड़ी सहायता दी है। दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में रोकथाम करने में भी मनोवैज्ञानिकों ने सुझाव देते है। उपभोक्ता किस तरह की चीजें चाहता है। चीजों को किस तरह बेचा जाता है, विज्ञापन के कौन से तरीके सफल हो सकते है आदि प्रश्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा सुलझाये जाते है। आधुनिक व्यापार में विज्ञापन का बहुत भारी महत्व है। इस क्षेत्र में मनोविज्ञानियों से बहुत सहायता मिली है इसको देखकर ही व्यावहारिक मनोविज्ञान के महत्व को समझा जा सकता है।

संगठनात्मक मनोविज्ञान औद्योगिक मनोविज्ञान का ही नवीनतम एवं विकसित रूप है। जिसमें कर्मचारियों एवं मशीनों के डिजाइन के बीच खास तरह के सामंजस्य पर बल डाला जाता है।

संगठनात्मक मनोविज्ञान में मनोविज्ञानियों की रूचि न केवल उद्योग में बल्कि अन्य संगठनों जैसे–स्कूल, अस्पताल, सरकारी दफ्तरों, बैंक आदि में कार्यरत कर्मचारियों की मानवीय समस्याओं का अध्ययन करने में होती है।

2.2.4. परामर्श एवं निर्देशन मनोविज्ञान– भारत में पढे लिखे लोगों में भारी बेकारी फैली हुई है। इस बेकारी का जहॉ एक बडा कारण यह है कि नौकरियॅा कम है और दूसरा कारण यह भी है कि पढे लिखे लोग व्यवसायों में जाना नहीं चाहते और नौकरियों के पीछे भागते है। उनमें अधिकतर लोग यह समझ नहीं पाते कि वे कौन सा काम कर सकते है अर्थात् उनमें कौन से काम करने की अच्छी योग्यता है। अधिकतर वे ऐसा व्यवसाय या काम चुन लेते है जो उनके लिए उपयुक्त नहीं होता है। उन्हें अपने लिए उपयुक्त व्यवसाय में जाने का उन्हें ध्यान ही नही आता है। इसके लिए व्यवसाय केन्द्रों और रोजगार के दफ्तरों में भी मनोवैज्ञानिकों की सलाह से काम लिया जाता है। इससे सही कर्मचारी को सही काम और सही काम को सही कर्मचारी मिल जाता है। भारत में भी अब धीरे–धीरे व्यवसाय चुनने में मनोविज्ञान से सहायता लेने की कोशिश की जा रही है।

व्यवसायिक निर्देशन के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक बहुत सी निजी और घरेलू समस्याओं को सुलझाने में भी मशवरा या सलाह देते है। इस तरह के मशवरे की अधिकतर व्यक्तियों को कभी न कभी आवश्यकता पड ही जाती है। किसी का बालक पढ़ने से भागता है, किसी का बालक चोरी करता है, किसी का लड़का घर से भाग जाता है, इस तरह की बहुत सी कठिनाइयों को जब माता–पिता स्वयं नहीं सुलझा पाते तो उन्हें मनोवैज्ञानिको से मशवरा लेना पडता है। बच्चे, माता–पिता तथा शिक्षको का आदर कैसे करे, पढ़ाई में क्या विषय ले, कौन–कौन से खेल खेले, सिनेमा देखे या न देखे आदि ऐसी बाते है जिनमें मनोवैज्ञानिकों की सलाह की आवश्यकता होती है। परामर्श मनोविज्ञानी का कार्य क्षेत्र नैदानिक मनोविज्ञानी के कार्यक्षेत्र से काफी मिलता जुलता है। ये मनोविज्ञानी व्यक्ति के साधारण सांवेगिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं को दूर करने का प्रयास करते है। ये सामान्य व्यक्तियों को भी अपनी समायोजन क्षमता को मजबूत करने में मदद करता है। परामर्श मनोविज्ञानी व्यक्ति की कमजोरियों एवं गुणों का पता लगाते है और इस कार्य में वे मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का भी उपयोग करते है। अधिकतर परामर्श मनोविज्ञानी छात्रों को अपनी उपलब्धियों में समायोजन करने में भी मदद करते है तथा छात्रों को अपने भविष्य के के बारे में योजना तैयार कराने में भी मदद करके सक्रिय भूमिका निभाते है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत निर्देशन के सामान्य तत्त्वं, निर्देशन के प्रकार, उनकी सामान्य विशेषताएॅ तथा निर्देशन प्रदान करने के सामान्य नियम आदि आते हैं और यह उन नियमों की भी तलाश करता है जिससे सही निर्देशन प्रदान किया जा सके। निर्देशन के क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान व्यक्ति की मनोशारीरिक विशेषताओं का पता लगाकर उन्हें आवश्यक निर्देशन प्रदान करता है।

2.2.5. सामुदायिक मनोविज्ञान– सामुदायिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जो मनोवैज्ञानिक नियमों, विचारों एवं तथ्यों का उपयोग सामाजिक समस्याओं के समाधान में करते है तथा व्यक्ति को अपने कार्य एवं समूह में समायोजन करने में मदद करते है। सामुदायिक मनोविज्ञान का संबंध उस पर्यावरण परिस्थिति से होता है। जिसमें व्यवहारात्मक क्षुब्धता या परेशानी उत्पन्न होती है या उत्पन्न हो सकती है। सामुदायिक मनोविज्ञानी किसी भी समस्या का समाघान पर्यावरण में परिवर्तन लाकर करते हैं और इसी आघार पर समस्या को दूर करने में अधिक विश्वास रखते है। ऐसे मनोवैज्ञानिक किसी भी व्यक्ति विशेष के व्यवहार में परिवर्तन नही करते हैं बल्कि सामान्य पर्यावरण में परिवर्तन करते हैं

जैसे–स्कूल के संगठन तथा प्रशासन में परिवर्तन,

कुछ सामुदायिक मनोविज्ञानी लोगों के मानसिक स्वास्थ्य के बारे में अध्ययन न करके सामुदायिक समस्याओं के अध्ययन के बारे में अधिक रूचि दिखलाते है।

2.2.6. स्कूल मनोविज्ञान – स्कूल मनोविज्ञानी मुख्य रूप से प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में कार्य करते है । स्कूल में वे मुख्य रूप से व्यावसायिक एवं शैक्षिक परीक्षण का कार्य करते है । परामर्श एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम के द्वारा वो शिक्षकों को छात्रों के साथ संगठित करने में तथा स्कूल के प्रशासन की समस्याओं से संबंधित प्रश्नों का हल ढूँढने में सहायता करते है और महत्त्वपूर्ण सेवा भी प्रदान करते है। वे छात्रों को अन्य विशेषज्ञों के पास विशेष उपचार के लिए भी भेजते है। इसके अलावा स्कूल मनोविज्ञानी परिस्थितियों के अनुसार नये प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित करते है। शिक्षकों और छात्रों के मनोबल का अध्ययन करते है। आजकल छात्रों के द्वारा गैरकानूनी औषधी का उपयोग बहुत किया जा रहा है स्कूल मनोविज्ञानी इसके कारणों का पता लगाकर उसका निदान ढूँढते है तथा औषधी उपयोग करने के पैटर्न को परिवर्तित करने के शैक्षिक कार्यक्रमों की उपयोगिता पर भी अधिक बल डालते है। मनोविज्ञानियों की कुल संख्या का लगभग 5 प्रतिशत मनोविज्ञानी स्कूल मनोविज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत है।

2.2.7. सामाजिक मनोविज्ञान – व्यावहारिक मनोविज्ञान ने केवल उद्योग और व्यवसाय, शिक्षा, मानसिक स्वास्थ्य आदि की समस्यायें सुलझाने में ही सहायता नहीं की बल्कि सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में भी सहायता की है।

उदाहरण – भारत में जाति भेद की समस्या अथवा अन्य देशों में वर्ग भेद की समस्या अथवा पश्चिमी देशों में रंग–भेद की समस्याओं का मूल आधार मनोवैज्ञानिक है और उसको सुलझाने के लिए मनोवैज्ञानिक उपायों की आवश्यकता होती है। मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षणों के

आधार पर जनता की भावना एवं रूचि का पता लगाया जाता है और इस रूचि को समझकर उसके अनुकूल सुझाव देने और सुधार करने की चेष्टा की जाती है।

2.2.8. पर्यावरणीय मनोविज्ञान : मनोविज्ञान के इस शाखा में पर्यावरण तथा उसके द्वारा व्यवहार पर पडने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। पर्यावरण के विभिन्न पहलुआ ंका व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

उदाहरण – स्कूल, घर, आवाज, प्रदुषण, मौसम, भीड़–भाड़ आदि इन प्रभावों का अध्ययन पर्यावरणी मनोविज्ञान में किया जाता है। पर्यावरण मनोविज्ञानी अपने विशेष अध्ययन तथा शोध में यह जानने की कोशिश करते है कि पर्यावरण के कीमती खजानों को कैसे बचाया जा सकता है तथा पर्यावरण के दोषपूर्ण पहलूओ से मानव को किस तरह बचाया जा सकता है और उनके जीवन के गुणों या विशेषताओं को कैसे उन्नत बनाया जा सकता है।

2.2.9. स्वास्थ्य मनोविज्ञान – मनोविज्ञान के इस क्षेत्र में शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि स्वास्थ्य मनोविज्ञान में स्वास्थ्य तथा उसें प्रभावित करने वाले चरों के बीच के संबंधों पर प्रकाश डाला जाता है।इसमे यह देखा जाता है कि किस प्रकार मानसिक परेशानियों का प्रभाव शारीरिक स्वास्थ्य पर पडता है।

जैसे तनाव, चिन्ता आदि का ह्दय रोग, कैंसर आदि की उत्पत्ति में क्या भूमिका होती है या हो सकती है, इसका अध्ययन किया जाता है। इसमें डॉक्टर–रोगी संबंध,आपसी सम्बन्ध, अस्पताल के पर्यावरण में उपलब्ध सुविधाओं तथा उनके प्रति रोगियों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

2.2.10. न्यायिक मनोविज्ञान : मनोविज्ञान तथा कानून का संबंध पुराना है। न्यायिक मनोविज्ञान में इन दोनों के संबंधों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जा सकता है कि नही, इसका निर्धारण करने में मनोवैज्ञानिक निदान की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। जेल के भीतर मनोवैज्ञानिक एक चिकित्सक, पुनर्वास विशेषज्ञ आदि के रूप में कार्य करते है। पुलिस विभाग द्वारा अक्सर मनोवैज्ञानिकों की सेवा इस उम्मीद से ली जाती है कि वे अपराधियों की इच्छाओं एवं अभिप्रेरणों को ठीक ढंग से समझने में मदद करेंगें। यह भी देखा गया है कि मनोवैज्ञानिक शोधों का उपयोग कभी–कभी जटिल न्यायिक निर्णय लेने में भी सफलतापूर्वक किया जाता है।

आधुनिक सभ्य देशों में अपराधियों को दण्ड देने की नहीं बल्कि उनको सुधारने की कोशिश की जाती है। इसमें अपराधी के व्यक्तित्व को समझना बडा आवश्यक होता है। अपराधी के मनोविज्ञान को जाने बिना सुधार करने वाले कर्मचारियों को अपराधियों को सुधारने में सफलता नहीं मिलती सकती। किशोर अपराधियों का सुधार तो लगभग पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक उपायों पर ही आधारित होता है। अपराध निरोध के अतिरिक्त न्याय करने में भी मनोविज्ञान से बड़ी सहायता मिलती है। न्याय की क्रिया में मुख्य रूप से तीन लोग कार्य करते है। न्यायाधीश, वकील एवं गवाह। सरकारी पक्ष का वकील अपराध सिद्ध करने का प्रयास करता है जबकि अभियुक्त का वकील उसको बचाने की कोशिश करता है। गवाह सच्ची, झूठी सब तरह की घटनाओं का वर्णन करता है। इसमें न्यायाधीश को सच झूठ का निश्चय करना होता है। यह निश्चय उसके कानून के ज्ञान के साथ–साथ उसकी मनोवैज्ञानिक अन्तःदृष्टि पर भी निर्भर करता है। अपराधियों को पकडने में पुलिस विभाग को भी मनोवैज्ञान से बडी सहायता मिलती है।

2.2.11. खेल–कूद का मनोविज्ञान – आधुनिक समय में खेल–कूद में भी मनोवैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता है। मनोविज्ञानी इस क्षेत्र में कुछ विशेष समस्याओं का अध्ययन करते है।

उदाहरण – खेल–कूद में अधिक अभिरूचि रखने वाले व्यक्ति खेल–कूद संबंधी जोखिम व्यवहार को क्यों करना चाहते है, खेल–खेलने वाले व्यक्ति के अभिप्रेरकों में क्या अन्तर होता है आदि–आदि । मनोविज्ञानी द्वारा इस क्षेत्र में किये गये अध्ययनों के आधार में यह पाया गया है कि खेल–कूद व्यवहार से व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमता मजबूत होती है। इस तरह के व्यवहार का उपयोग मनोविज्ञानी नैदानिक परिस्थिति तथा अस्पताल में चिकित्सीय साधन के रूप में अधिक करते है।

2.2.12. सैन्य मनोविज्ञान–मनोवैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धान्तों का उपयोग सैन्य क्षेत्रों में किया जाता है। भारत में द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद से भारतीय सैन्य बलों में मनोविज्ञान को उपयोग किया जा रहा है। इस क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों का मुख्य कार्यक्षेत्र निम्नलिखित पॉच तरह की गतिविधियों तक फैला हुआ है –

1. **रक्षा कर्मियों का चयन** – विभिन्न स्तरों पर रक्षा कर्मियों का चयन

2. **नेतृत्व गुणों का विकास**– विशेष कार्यक्रम का आयोजन करके ऐसे कर्मियों में नेतृत्व गुणों को विकसित करना।

3. **सुरक्षा कौशलों का विकास**– विशेष ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रमों को विकसित करना जिनसे कर्मियों में सुरक्षा कौशलों का विकास हो सके।

4. **मनोबल का विकास** – सैन्य बलों में मनोबल को विकसित करने के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार करना।

5. **मानसिक समस्याओं का अध्ययन करना**– कुछ विशेष सैन्य संमस्याओं जैसे अधिक ऊँचे स्थानों में उचित व्यवहार करने संबंधी सैनिकों की समस्याएँ, चिंता तथा तनाव आदि से उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन करना।

व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में मनुष्यों की सारी क्रियायें और उनके सारे अन्तर्सम्बन्ध आ जाते है। व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र लगातार बढ़ता ही जा रहा है। उद्योग, व्यापार, न्याय, कला, साहित्य, धर्म, पारिवारिक जीवन, शिक्षा, सामाजिक जीवन, कारखाने का जीवन, मजदूर, विद्यार्थी, नेता सभी के लिए और हर जगह मनोविज्ञान का उपयोग है।

अन्त में यहां यह कहना उचित होगा कि जहॉ–जहॉ मानव व्यवहार है और उसको बेहतर बनाने की सम्भावनायें है वहॉ–वहॉ व्यावहारिक मनोविज्ञान का क्षेत्र और उपयोग भी है।

2.3 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सत्य/असत्य में दीजिए

1. व्यवसायिक मनोविज्ञान का विकास अमेरिका से प्रारम्भ हुआ।
2. न्याय भी व्यावहारिक मनोविज्ञान का एक मुख्य क्षेत्र है।
3. 1940 में अमेरिका में व्यावहारिक मनोविज्ञान की एक राष्ट्रीय संस्था स्थापित हुई।
4. संगठनात्मक मनोविज्ञान नैंदानिक मनोविज्ञान का ही एक नवीन एवं विकसित रूप है।
5. स्कूल मनोवैज्ञानिक मुख्य रूप से व्यवसायिक एवं शैक्षिक परीक्षण का कार्य करते है।
6. नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की सबसे कम प्रचलित एवं छोटी व्यावहारिक शाखा है।
7. औधोगिक क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान अधिगम से सम्बन्धित अलग–अलग तत्त्वों का अध्ययन करता है।
8. स्वास्थ्य मनोविज्ञान में स्वास्थ्य तथा उसें प्रभावित करने वाले चरों के बीच के संबंधों पर प्रकाश डाला जाता है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. असत्य
6. असत्य
5. सत्य
7. असत्य
8. सत्य

2.4 सारांश :

- मानव जीवन में मनोविज्ञान का महत्त्व दिन प्रतिदिन बढता जा रहा है।
- संसार में हर एक व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है। इसी व्यक्तिगत भिन्नता के कारण समायोजन से सम्बन्धित समस्यायें उत्पन्न होती है। यहॉ व्यावहारिक मनोविज्ञान समायोजन में सहायता करता है।
- मनोविज्ञान के विकास के साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में उसका प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान के अनेक क्षेत्र है जिसमें मुख्य शिक्षा, उद्योग, मनोचिकित्सा एवं उपचार, निर्देशन एवं परामर्श, सामुदायिक ,स्कूल मनोविज्ञान आदि ।
- मनोचिकित्सा मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञानी मनोचिकित्सा की विधियों का अध्ययन करता है तथा उन उपायों की खोज करता है जिनसे मानसिक स्वास्थता बनाई रखी जा सके।
- शिक्षा के क्षेत्र में व्यावहारिक मनोविज्ञान अधिगम से सम्बन्धित अलग–अलग तत्त्वों का अध्ययन करता और यह प्रयास करता है कि अधिगम को किस प्रकार सरल, स्थायी तथा प्रभावशाली बनाया जा सकता है।
- व्यावहारिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है तथा उनका समाधान ढूँढने का प्रयास किया जाता है।

- परामर्श मनोविज्ञानी शिक्षकों को छात्रों के साथ संगठित करने में तथा स्कूल के प्रशासन की समस्याओं से संबंधित प्रश्नों का हल ढूॅढने में सहायता करते है और महत्त्वपूर्ण सेवा भी प्रदान करते है।
- पर्यावरणी मनोविज्ञानीं पर्यावरण तथा उसके द्वारा व्यवहार पर पडने वाले प्रभावों का अध्ययन करते है।
- न्यायिक मनोविज्ञान में मनोविज्ञान तथा कानून के संबंधों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।
- मनोवैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धान्तों का उपयोग सैन्य क्षेत्रों में भी किया जाता है।

2.5 निबन्धात्मक प्रश्न :

1. व्यावहारिक मनोविज्ञान को परिभाषित करिए एवं उसके मुख्य–मुख्य क्षेत्रों का वर्णन करिये।
2. व्यावहारिक मनोविज्ञान जीवन में किन–किन क्षेत्रों से सम्बन्धित है।

2.6 संन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा. रामपाल सिंह, प्रो.सत्यदेव सिंह, डा.देव दत्त शर्मा, – व्यावहारिक मनोविज्ञान
2. डा. घनश्याम दास रस्तोगी– आधुनिक व्यावहारिक मनोविज्ञान
3. Dr. Ashok Kumar - Applied Psychology
4. डा. अरूणकुमार सिंह– आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान
5. A. Husain -Applied Indian Psychology
6. hi.Wikipedia.org

इकाई–3 : व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ क्षेत्र एवं महत्व

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 व्यावहारिक मनोविज्ञान

3.4 व्यावहारिक मनोविज्ञान का इतिहास

3.5 व्यावहारिक मनोविज्ञान की भारत वर्ष में आवश्यकता

3.6 व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ

3.7 व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र

3.8 सारांश

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

3.10 बोध प्रश्न

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.1 प्रस्तावना

आधुनिक समाज में दिन प्रतिदिन की जो समस्याए आती है। उनमे मनोविज्ञान के सिद्धांत का उपयोग बढ़ रहा है। इसका उपयोग समाज के विभिन्न क्षेत्रो में बढ़ने से व्यावहारिक मनोविज्ञान की लोक प्रियता तथा महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है। यही कारण है कि इसका उद्योग में शिक्षण तथा प्रशिक्षण क्षेत्रो में चिकित्सालयों तथा कानून के क्षेत्रो में उपयोग बढ़ रहा है। प्रत्येक विषय के शोधों कार्यो में इसका व्यावहारिक स्वरूप देखा जा सकता है। इसके अलावा विद्यालयों में इसका अध्ययन व अध्यापन बढ़ता जा रहा है। और आज स्थिति यह है। कि मनोवैज्ञानिको की मांग शिक्षा जगत में, मानसिक रोग व उपचार में, उद्योग में, सेना में, सुधार केन्द्रों में बढती जा रही है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान का महत्व 1903 में प्रकाशित पुस्तक थ्योरी ऑफ़ एडवरटाइजिंग तथा 1903 में प्रकाशित पुस्तक शिक्षा मनोविज्ञान के द्वारा प्रकाश में आया

1919 में स्काट कंपनी नमक संस्था का जन्म हुआ जिसका मूल उद्देश्य उद्योगों से सम्बंधित समस्याओ के बारे में परामर्श देना था द्वितीय विश्व युद्ध के समय इसका उपयोग अत्यधिक किया गया जिससे चयन प्रक्रिया में सरलता आ गयी और इसमें अत्यधिक श्रम नहीं करना पड़ा मानसिक रोगों के उपचार व वर्गीकरण में इन परीक्षणों ने काफी सहायता प्रदान करी इसी समय परामर्श मनोविज्ञान का जन्म हुआ जिससे विभिन्न सामाजिक समस्याओ के उपचार में सहायता मिली

द्वितीय विश्व युद्ध में इसका उपयोग सैन्य सेवाओं में, असैन्य सेवाओं में, मनोचिकित्सा तथा अन्य क्षेत्रो में अत्यधिक रूप से किया गया अब कर्मचारी तथा अधिकारियो के चयन के अलावा उनके पदोन्नति के लिए इसका उपयोग होने लगा इस तरह के परीक्षण के उपयोग सैन्य क्षेत्रो में ही नहीं शिक्षा चिकित्सा के लिए भी वरदान साबित हुआ है। व्यावहारिक मनोविज्ञान के उपयोग के अवसर आधुनिक क्षेत्र में बढ़ रहे है। उपभोक्ता मनोविज्ञान ने व्यापारिक उत्पादों को बेचने में मनोवैज्ञानिक विधियों तथा विज्ञापनों का महत्व दर्शाया जिससे नयी नयी वस्तुओ को बाज़ार में लाने में मदद मिली इसी तरह उच्च तकनीकी नियंत्रण बढ़ जाने से अभियांत्रिकी मनोविज्ञान की आवश्यकता पड़ी इसके अलवा औद्योगी क उत्थान के करण बड़े बड़े कारपोरेशन तथा अनेक व्यापारिक संगठन का जन्म हुआ ।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य व्यावहारिक मनोविज्ञान के अर्थ एवं महत्व को प्रस्तुत करना है। व्यावहारिक मनोविज्ञान क्या है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है। व्यावहारिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान का व्यावहारिक पहलों है। हेप्नर के अनुसार "व्यावहारिक मनोविज्ञान का उद्धेश्य मानव कार्य उसका वर्णन नियंत्रण एवं पुर्व कथन को उस करम में प्रस्तुत करना है। जो हमारे जीवन के लिए उपयोगी हो तथा हम दूसरो के लिए उसको उपयोगी मान कर उसकी शिक्षा दे सके" इस प्रकार व्यावहारिक मनोविज्ञान को मनोविज्ञान की एक शाखा समझने की अपेक्षा सामान्य विज्ञान का पहलू समझना श्रेश्कर होगा हर विज्ञान का एक सैद्धांतिक और एक व्यावहारिक पक्ष होता है। उसी प्रकार मनोविज्ञान का भी एक व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक पहलू है।

हमारे समक्ष सामान्य विज्ञान की अनेक शाखाये है—समाज शास्त्र, रसायन विज्ञान, भौतिकी आदि उपलब्ध है। वे जीवन के व्यावहारिक पहलू का भली भांति अध्ययन करते है।

प्रयोग शाला के वातावरण में में वैज्ञानिक विशेष परिस्थिति में प्रयोग करके सामान्य सिद्धांत की खोज करता हैद्य उस सिद्धांत को प्रयोगशाली क्षेत्र से परे कोई उपादेयता नहीं होती मानव जाति का मुख्य उद्धेश्य अपनी सुदिघ्ता को संपोषित करना है। इस लिए उन्हें उन सभी व्यक्तियों वास्तु एवं वातावरण के साथ अंतर्क्रिया करनी होगी जिसकी परिधि में वह निवास करता है। अर्थात उसे अस्तित्व सह्संबंध कर एक नियम बनाना होता है। और उसकी अपनी भलाई के लिए उपयोग में लाना होता है। ।

3.3 व्यावहारिक मनोविज्ञान

यही दूसरे विज्ञानों का मौलिक स्त्रोत है। इस प्रकार विज्ञान की अन्य शाखाओ के अनुरूप मनोविज्ञान का उद्धेश्य भी पृथ्वी पर निवास करने वाले प्राणियों की भलाई करना है। उसे केवल सत्य की खिज़ ही नहीं करनी होती बल्कि मानव जीवन में ज्ञान की स्थापना भी करनी होती है। तथा उसे सिद्धांत व व्यवहार के मध्य का अंतर भी बताना होता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सैद्धांतिक विज्ञान से उद्भीत तथ्यों का व्यावहारिक जीवन में भी महत्व है। और इस महत्व के सहयोजन से व्यक्ति अपने भविष्य में वृद्धि करता है।

3.4 व्यावहारिक मनोविज्ञान का इतिहास

ऐतिहासिक चक्र में सैद्धांतिक अध्ययन व्यावहारिक अध्ययन को बढ़ावा देता है। इसी प्रकार मनोविज्ञान का प्रारंभ भी कुछ सैद्धांतिक तथ्यों की खोज के आधार पर हुआ जो व्यावहारिक प्रयोग में आये यह स्पष्ट है कि सामान्य मनोविज्ञान के बाद व्यावहारिक मनोविज्ञान एक ऐसी शाखा थी जिसका पूरी तरह विकास हुआ एप्लाइड साइकोलॉजी कम्स ऑफ़ ऐज में पेटर्सन ने इसके विकास की चार अवस्थायें बताई।

गर्भावस्था – 1882–1917 का चरण इस शाखा के लिए गर्भावस्था का काल था जिसमे गा्लटन कैटल बिने के महत्वपूर्ण योगदान को याद किया जा सकता है। और इसी समय यू. एस. ए. विश्व युद्ध में व्यस्त था

जन्म – पेटर्सन के अनुसार 1917 से 1937 के समय को विज्ञान के जन्म के रूप में देखा जाता है। इस काल में मनोविज्ञान का प्रयोग सैनिक भरती में किया गया तथा उनके चयन हेतु आर्मी अल्फ़ा एवं आर्मी बीटा आदि परीक्षणों का प्रयोग किया गया ।

शैशवावस्था – 1937 का वर्ष एक महत्वपूर्ण रूप में सामने आया क्योंकि इस समय मनोविज्ञान के राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना हुई और मनोविज्ञान का प्रयोग राष्ट्र के हित में किया जाने लगा ।

युवावस्था – इसी श्रंखला में व्यावहारिक मनोविज्ञान का प्रयोग उसकी अवस्था में हुआ इसके क्षेत्र में धीरे धीरे विस्तार होने लगा इसका कोई अंत नहीं था हर स्थान पर व्यावहारिक मनोविज्ञान का विकास दृष्टिगोचर होने लगा ।

3.5 व्यावहारिक मनोविज्ञान की भारत वर्ष में आवश्यकता

भारत एक प्रजातांत्रिक गणराज्य है। जिसमे हर व्यक्ति को स्वतंत्रता पूर्वक रहने व अभिव्यक्ति के अवसर प्राप्त है। ऐसे लोग बहुत से योग्यता व कौशलो से युक्त है। और प्रजातंत्र का भविष्य विकास एवं उन्नति इन्ही के कंधो पर है। तो यदि भारत का भविष्य उज्जवल करना है। तो यह आवश्यक होगा की जनता को उनकी आंतरिक योग्यताओं के अनुसार व्यावसायिक वातावरण भी प्रदान किया जाये जिससे वे अपनी क्षमता व कौशल का प्रयोग कर सके व्यावहारिक मनोविज्ञान की महत्ता को कोई भी नहीं नकार सकता तथा शिक्षा उद्योग अपराध नियंत्रण, चुनाव प्रचार, विज्ञापन, आदि सभी क्षेत्रो में इसका महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है।

यह एक हर्ष का विषय है कि कर्मचारी नियुक्ति के समय बड़ी से बड़ी कंपनिया मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को ही अभ्यर्थी की योग्यता का आधार मानते है। अभी भी बहुत से ऐसे क्षेत्र है। जहा पर मनोविज्ञान की व्यावहारिक शाखा का प्रवेश नहीं हुआ है। यह अत्यंत संवेदनशील क्षेत्र है। जैसे परिवार,विधालय, संस्थायें, मीडिया इन क्षेत्रो पर सुधर के लिए व्यावहारिक मनोविज्ञान का प्रवेश तो होगा परन्तु उसका प्रवेश संवेदनशील होगा

3.6 व्यावहारिक मनोविज्ञान का अर्थ

मनोविज्ञान के शेत्रो में सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान करने के लिए सिद्धांतो का निरूपण किया जाता है। उन्हें व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए तथा मानव समस्याओं को हल करने में अधिक बल प्रदान किया गया है। और मानव समस्याओ को हल करने में अधिक प्रकाश डाला गया है। इसमें से अधिकांश मनोवैज्ञानिकों का मत है। इन सिद्धांतो का कोई महत्व नहीं होता जब तक उनका सफलता पूर्वक उपयोग नहीं होता इसी

उद्धेश्य को लेकर व्यावहारिक मनोविज्ञान का जन्म हुआ मनोविज्ञान में अधिगुम तथा अभिप्रेरणा के सिद्धांतो का उपयोग कानून निर्माण, अपराधी तत्व को कम करने के लिए लगाया जाता था इससे स्पष्ट होता है कि व्यावहारिक मनोविज्ञान व मनोविज्ञान के सम्बन्ध को इस प्रकार स्पष्ट कर सकते है कि यह दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे है। इन दोनों में एक घनिष्ट सम्बन्ध है। क्योंकि सिद्धांतो के निर्माण के बिना व्यावहारिक उपयोग निरर्थक साबित होंगे और सिद्धांतो के बिना व्यावहारिक उपयोग पत्थर पर सर फोड़ने के बराबर सिद्ध होगा

3.7 व्यावहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र

मनोविज्ञान अपनी व्यावहारिक अवस्था में एक प्रकार से सैद्धांतिक विषय था लेकिन अल्प काल में इसने अपने व्यावहारिक पक्ष का निर्माण शुरू कर दिया और आज यह सर्वत्र स्वीकार किया जाता है। मनोविज्ञान न केवल सैद्धांतिक है। अपितु उसका व्यावहारिक पक्ष भी उतना ही महत्व पूर्ण है।

3.7(1) शिक्षा मनोविज्ञान – शैक्षणिक परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन ही शिक्षा मनोविज्ञान है। दूसरे शब्दों में यह जन्म से लेकर परिपक्व्तावास्था तक के विकास कर म में प्राणी के व्यवहार मां जो परिवर्तन आते है। उनकी व्याख्या करता है। जब से बालक शिक्षा का केंद्र बिंदु हो गया तब से शिक्षा मनोविज्ञान का महत्व बढ़ गया क्योंकि शिक्षा की सभी क्रियाये बालको को आधार मानकर संचालित की जाती है। आज कल शिक्षा में बालक को दंड देना अपराध घोषित किया गया है। उसके अनुशासन के लिए मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग शिक्षक करता है। सीखने के सिद्धांतो को आज कल वैज्ञानिक व सरल बना दिया गया है। शिक्षा को जीवन उपयोगी बना दिया गया है। शिक्षा जगत में यह सब परिवर्तन शिक्षा मनोविज्ञान के कारन हुए है। छात्रो का अभिप्रेरणा , व्यक्तित्व, बुद्धि,समयोगंका मापन सीखने के सिद्धांतो से किया जाता है। मनोविज्ञानिक तथ्यों क बिना शिक्षा अधुरी है।

3.7 (2) उद्योग एवं व्यवसाय – उद्योग मनोविज्ञान इस युग में सबसे महत्वपूर्ण एवं उभरती हुई शाखा के रूप में आया इससे पहले उद्योग पति तानाशाह के रूप में कार्य करते थे और श्रमिको से 12–16 घंटे काम लिया जाता था मनोविज्ञान ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया तो तो मिल मालिको के मजदूरों के प्रति व्यवहार में बदलाव आया कारखानों में प्रयोगशाला की भांति काम होने लगा कार्य की प्रगति कार्य एवं विश्राम कार्य विभाजन आदि पर अध्ययन

होने लगे मिल मालिको को अध्ययन से पता लगा की मजदूर असंतोष हरताल तालाबंदी के क्या कारन है। और इससे उत्पाद में कमी आती है। जोसफ टिफ़िन ने औद्योगी के मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए कहा "इसका सम्बन्ध गुण कर्म निर्धारण के विकास दुर्घटनाओं में कमी समस्याओं के समाधान कर्मचारी के मनोबल व विकास से है। आज भी औद्योगी क मनोविज्ञान के कार्यो में निरंतर वृद्धि हो रही है। और प्रत्येक महत्वपूर्ण एवं बड़े उद्योगों में मनोवैज्ञानिको को रखा जाता है।

3.7 (3) नैदानिक मनोविज्ञान – नैदानिक मनोविज्ञान न केवल आसामान्य मनोविज्ञान से सम्बंधित है। बल्कि यह व्यक्तित्व सिद्धांतो अधिगम सिद्धांतो और मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से भी सम्बंधित है। इसमें निदान तथा उपचार आता है। निदान को आधुनिक समय में व्यवहार प्रतिरूप कहा जाता है। रोगी के उपचार के लिए सबसे पहले रोग का निदान आवश्यक है। मानसिक रोग विविध प्रकार के होते है। और उनके लिए बहुत सी उपचार विधियों का भी प्रयोग किया जाता है। जैसे मनोशाल्य चिकित्सा, आघात चिकित्सा, पारिवारिक व सामूहिक चिकित्सा, मनोविश्लेषण, रोगी केन्द्रित चिकित्सा आदि जिनका संशिप्त वर्णन निम्न है।

3.7(4) आघात चिकत्सा – इस तरह की चिकित्सा में रोगी के मस्तिष्क में रासायनिक द्रव्यों अथवा विद्युत प्रवाह द्वारा आघात पहुचाकर उसे रोग मुक्त किया जाता है। देखा गया है कि इस तरह के आघात से रोगी अपने गत अनुभव को भूल जाता है। फलस्वरूप उसका मानसिक तनाव कम हो जाता है। तथा उसमे कुसमयोजित व्यवहार धीरे धीरे कम होने लगता है। तथा रोगी शांत एवं समायोजित नजर आता है। आघात चिकित्सा दो प्रकार से दी जाती है। इन्सुलिन आघात चिकित्सा व विद्युत आघात चिकित्सा

3.7(5) औषध चिकित्सा – इस विधि में आसामान्य व्यवहार का उपचार करने के लिए रोगी को कुछ विशेष औषध दिए जाते है। इसे रसायन चिकित्सा भी कहते है। उन्हें मनोसक्रीय औषध भी कहा जाता है। इन औषध के लगातार सेवन से रोगी धीरे धीरे ठीक हो जाता है। और कुसमयोजित व्यवहार को छोड़ देता है। इसका कारण यह है। ऐसे ओषधि के लेने से रोगी के तंत्रिका तंत्र के जैवरसायन वातावरण में परिवर्तन हो जाता है। और फिर उसकी मनोदशा चिंतन में वांछित परिवर्तन आने लगते है।

3.7(6) सामूहिक चिकित्सा – सामूहिक चिकित्सा का औपचारिक शुभारम्भ जोसफ एच प्रात्त द्वारा 1905 मई टी. वी. रोग से ग्रस्त रोगियों को मेडिकल डॉक्टर के उपचार सम्बन्धी

सुझावों के साथ सहयोग दिखने तथा उनके दबे मनोबल को उचा करने के लिए किया गया था सामूहिक चिकित्सा जैसा नाम से ही स्पष्ट है। वैसी चिकित्सा है। जिसमे एक साथ कई रोगियों का उपचार किया जाता है। इस तरह की चिकित्सा में रोगियों का उपचार समूह में किया जाता है। रोगियों का यह समूह सम्बंधित और अंतर सम्बंधित दोनों हो सकता है।

3.7(7) पारिवारिक चिकित्सा – पारिवारिक चिकित्सा एक प्रकार का समूह चिकित्सा का ही प्रकार है। जिसमे समूह के सदस्य अपरिचित न हो कर एक ही परिवार के सदस्य होते है। पारिवारिक चिकित्सा का शुभारम्भ 1950 वाले दशक में हुआ परन्तु यह गत 20 वर्षो में अधिक लोकप्रियहुआ पारिवारिक चिकित्सा की शुरुवात इस तथ्य के सामने आने से हुई की मानसिक विकृति के कई रोगियों के किसी व्यक्तिक चिकित्सा से उपचार करने के बाद उन्हें अपने परिवार में कुछ दिनों तक रहने के बाद उनके रोग के लक्षण फिर सर वापिस होते देखे गए इसका कारन परिवार के अन्य सदस्यों के साथ दोषपूर्ण अन्तः क्रिया का होना था मनोविज्ञानिक द्वारा यह कहा गया के पारिवारिक चिकित्सा द्वारा कुसमयोजित व्यवहार को दूर किया जा सकता है।

3.7(8) मानवतावादी अनुभववादी चिकित्सा – यह एक सूझ केन्द्रित चिकित्सा है। जो इस बात की पूर्व कल्पना करती है कि किसी भी आसामान्य व्यवहार का उपचार व्यक्ति की आवश्यकता तथा प्रेरणा के स्तर पर वृद्धि कर के प्राप्त किया जा सका है। इसे परिघटना चिकित्सा माडल भी कहा जाता है।

3.7(9) क्लाइंट केन्द्रित चिकित्सा – इस चिकित्सकीय माडल का प्रतिपादन रोज़ेर्स ने 1940 में किया रोज़ेर्स ने अपनी चिकित्सा विधि में रोगी के लिए क्लाइंट तथा चिकित्सक के लिए कोउन्सेल्लोर का प्रयोग किया इनका मत है कि चिकित्सक रोगी की समस्याओ का समाधान करता है। इनका कहना था की चिकित्सा एक प्रक्रिया होती है। न की प्रविधियो का सेट।

3.7(10) लोगो चिकित्सा – लोगो चिकित्सा का प्रतिपादन विक्टर फ्रंक्ले ने 1967 में किया लोगो चिकित्सा में लोगो का तात्पर्य अर्थ से होता है। इसे अर्थ पर आधारित चिकित्सा कहते है। इसमें व्यक्ति की जीवन की अर्थहीन चीजों को समाप्त करने का प्रयास किया जाता है।

3.7 (11) मनोगात्यात्मक चिकित्सा – यह मनोचिकित्सा का सबसे लोकप्रिय तथा पुराना प्रारूप है। इस चिकित्सा का प्रतिपादन फ्रायड ने किया मनोगात्यात्मक चिकित्सा से तात्पर्य एक ऐसे मनोवैज्ञानिक उपचार से होता है। जिसमे रोगी के व्यक्तित्व की गतिकी पर

म्नोविश्लेश्नात्मक परिपेक्ष से बल डाला जाता है। यह एक दीर्घ कालिक विधि है। जिसमे दमित इच्छाओ, डर, चिंताओं, एवं मानसिक संघर्ष के कारणों का पता लगाया जाता है। इसमें रोगी में सूझ उत्पन्न की जाती है।

3.8 सारांश

3.8 (1)– आधुनिक सामाजिक जीवन में अनेक समस्याए आती है। जिनसे मानव को लगातार झूझना पड़ता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान की समस्या मानव को उत्तम समस्याओ से मुक्ति पाने में सहायता करती है।

3.8 (2) व्यावहारिक मनोविज्ञान का उद्देश्य मानव कार्य उसका वर्णन एवं नियंत्रण को इस रूप में प्रस्तुत करता है। जो उसके लिए उपयोगी है। तथा व्यक्ति उसकी सहायता से दूसरो का कल्याण करता है।

3.8 (3)– व्यावहारिक मनोविज्ञान के विकास की चार अवस्थाये है। ग्रभावास्ता, जन्म, शैस्ववास्था, युवावस्था ।

3.8 (4)– व्यावहारिक मनोविज्ञान का भारत में बहुत महत्व है। क्योंकि कर्मचारी चयन, उद्योग, विद्यालय तथा मानव जीवन, की स्थापना के ऐसे क्षेत्र में इसकी अनिवार्यता है।

3.8 (5)– व्यावहारिक मनोविज्ञान के अनेक क्षेत्र हैं जैसे शिक्षा मनोविज्ञान, उद्योग मनोविज्ञान, एवं नैदानिक मनोविज्ञान आघात चिकित्सा, ओषधि चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा, पारिवारिक चिकित्सा, पारिवारिक चिकित्सा, मानवतावादी अनुभव वादी चिकत्सा, लोगो चिकित्सा, मनोगात्यात्मक चिकित्सा

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

3.9 (1) व्यावहारिक मनोविज्ञान– व्यावहारिक मनोविज्ञान ज्ञान की वह शाखा है। जो व्यक्ति को सभी क्षेत्रो में मानव कार्य व्यवहार एवं पूर्व कथन को प्रस्तुत करता है।

3.9 (2)– आघात– आघात एक ऐसी प्रक्रिया है। मस्तिष्क में विद्युत तरंगो द्वारा प्रवाह डाला जाता है।

3.9 (3)– क्लाइंट– रोजेर्स द्वारा प्रदत्त एक ऐसा पद जो रोगी के लिए प्रयुक्त होता है।

3.9 (4)– काउंसलर– रोजेर्स द्वारा प्रदत्त एक ऐसा पद जिसका प्रयोग चिकित्सक क लिए होता है।

3.10 बोध प्रश्न

3.10 (1)– आपके पास के विद्यालय में जाकर विद्यार्थियों की समस्या को सुने तथा उनका उपचार करे ।

3.10 (2)– आपके नजदीकी औद्योगिक संसथान में जाये तथा वहा अधिकारियो को कर्मचारी चयन में मनोविज्ञान की उपयोगिता बतलाये ।

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.11 (1)– व्यावहारिक मनोविज्ञान क्या है ? उसके इतिहास का वर्णन कीजिये?

3.11 (2)– व्यावहारिक मनोविज्ञान क्या है? उसमे प्रयुक्त् चिकित्सा विधि का वर्णन करें ?

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.12 (1) सिंह ऐ. के. औद्योगी क मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी

3.12 (2) सिंह ऐ. के. नैदानिक मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, पटना

ईकाई–4 : निर्देशन का अर्थ, स्वरुप, आवश्यकयता एवं निर्देशन के प्रकार

4.0 उद्देश्य–

4.1 प्रस्तावना

4.2 निर्देशन का अर्थ

4.2.1 निर्देशन की परिभाशा

4.2.2 निर्देशन की विशेषतायें

4.3 निर्देशन का स्वरूप

4.3.1 निर्देशन का सम्प्रत्यात्मक स्वरूप

4.3.2 निर्देशन का प्रकार्यात्कम स्वरूप

4.3.3 निर्देशन का दार्शनिक पक्ष

4.3.4 निर्देशन का शैक्षिक पक्ष

4.4 निर्देशन की आवश्कयता

4.4.1 निर्देशन का समाजशास्त्रीय आधार

4.4.2 निर्देशन का मनोवैज्ञानिक आधार

4.5 निर्देशन को प्रकार

4.5.1 प्रॉक्टर का वर्गीकरण

4.5.2 ब्रिवर का वर्गीकरण

4.5.3 पैटरसन का वर्गीकरण

4.5.4 मेयर्स का वर्गीकरण

4.5.5 शैक्षिक वर्गीकरण

4.5.6 व्यावसायिक वर्गीकरण

4.5.7 व्यक्तिगत वर्गीकरण

4.6 सारांश

4.7 निबंधात्मक प्रश्न

4.8 संदर्भ सूची

4.0 उद्देश्य एवं लक्ष्य (objectine and Aims)

1.0 प्रस्तुत ईकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ पायेंगे

1. निर्देशन का अर्थ एवं परिभाशा
2. निर्देशन का स्वरूप
3. निर्देशन की आवश्यकता
4. निर्देशन के प्रकार

4.1 प्रस्तावना

निर्देशन समाज की आवश्यकता है प्राचीन समय से आधुनिक युग तक दृष्टिकोण डालें तो अनुभव होता है कि समाज एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें मानव के समक्ष विभिन्न प्रकार के विकल्प हैं समाज के किस कार्य में उसकी रूचि है कहाँ नही, उसकी कार्यक्षमता कितनी है अथवा कितनी नही, यह जानना व्यक्ति विशेष तथा समूह के लिए भी मुश्किल होता है ऐसी परिस्थिति मे उसे सलाह मशवरा आदि की आवश्यकता होती है वैसे तो जन्म से लेकर मृत्यु तक समय–समय पर परिवार से, समाज के वरिष्ठ नागरिकों से, संगी साथियों आदि से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष में निर्देशन अथवा सलाह व मशवरा मिल ही जाता है परन्तु यह एक परिपूर्ण निर्देशन होगा यह कहना मुश्किल होता है अतः यहाँ यह कहना आवश्यक है कि निर्देशन एवं परामर्शन के लिए प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों की भूमिका विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में सर्वत्र होनी चाहिए ताकि राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय स्तर पर नागरिकों को निर्देशित कर एक बेहतर समाज की संकल्पना को पूर्ण किया जा सके।

4.2 निर्देशन का अर्थ (Meaning of Guidanice)

निर्देशन का अर्थ है निर्देश देना, यह आदेश से भिन्न है। आदेश में अधिकार होता है और निर्देशन में सलाह, अतः निर्देशन के संदर्भ में कहा जा सकता है कि निर्देशन किसी व्यक्ति को दी जाने वाली सलाह या सहायता है। यह सहायता नैतिक आध्यात्मिक तथा व्यवसायिक क्षेत्र में बडो द्वारा छोटी को दी जाती है।

अपने प्रारम्भिक चरण में निर्देशन मात्र व्यवसायपरक समस्याओं से सम्बन्धित थे चूँकि

उस समय उसका मूल उद्देश्य युवकों को रोजगार से सम्बन्धित करने का था क्योंकि स्कूल एवं कालेजो में पढ़ने वाले छात्रो के पास अपने खाली समय को व्यतीत करने का कोई उचित कार्यक्रम नही होता था किस कारण उनमें अपराध व बालअपराध जैसे गुण पनप रहे थे अतः इस खाली समय के लिए व्यतीत करने के लिए व्यवसाय के रूप मे निर्देशन का प्रचार किया गया लेकिन वर्तमान में निर्देशन में मात्र व्यवसाय से सम्बन्धित न रह कर जीवन के विभिन्न क्षेत्रो में जैसे– परिवारिक व्यक्तिगत, संवेगात्मक सामाजिक आर्थिक आदि क्षेत्रों में अपना प्रमुख स्थान बनाये है। निर्देशन के द्वारा व्यक्ति, व्यकितगत रूप से सन्तुष्टिपूर्ण एवं सामाजिक रूप से प्रभाव पूर्ण जीवन के उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है।

आर० एच० मैथ्यूसन ने निर्देशन के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– "निर्देशन एक व्यवस्थित निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो छात्रों की विशेष आवश्यकताओं एवं विद्यालय में प्रगति सम्बन्धित समस्याओं के समाधान एवं उनकी वैयक्तिक सामाजिक सम्बन्धो तथा शैक्षणिक व्यवसायिक रूद्दानो के विकास में सहायक होता है।"

4.2.1 निर्देशन की परिभाषा (Definition of Guidace) :–

1. **जे० एम ब्रिवर**– निर्देशन एक ऐसा प्रक्रम (process) है जो व्यक्ति में अपनी समस्याओं को हल करने में स्वयं निर्देशन की क्षमता का विकास करत है।

2. **लीफिमर, टसेल व विट्जिल**– ''निर्देशन एक शैक्षिक सेवा है जो विद्यालय में प्राप्त दीक्षा का अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली उपयोग करने में विद्यार्थियों की सहायता प्रदान करने के लिए आयोजित की जाती है।''

3. **क्रो एवं क्रो**– "guidance is assistance made available by personally qualified and adequately trained men or women to an individual of any age to help him manage his own life activities, develop his own points of view, make his own decisions, and carry his own burdens."

"निर्देशन व्यक्तिगत रूप में योग्य एवं पर्याप्त प्रशिक्षित पुरूष या महिला द्वारा किसी भी आयु वर्ग के किसी दूसरे व्यक्ति को अपने निजी जीवन के कार्यकलापों का प्रबंधन करने, अपने निजी दृष्टिकोण विकसित करने, अपने निर्णय लेने और अपने व्यक्तिगत कार्य–भार का निर्वहन करने में सहायता करने हेतु दिया गया सहयोग है।"

4. **आर्थर जे0 जोन्स** – choices and adjustments and in solving problems. Guidance aims at aiding the recipient to grow in his independence and

anility to be responsible for himself. It is a service that is universal-not confined to the school or the family. It is in social life, in hospitals and in prisions; indeed it is present wherever there are people who need help and wherever there are people who can help.”

अर्थात, "निर्देशन एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को चयन एवं समायोजन करने तथा समस्याओं का समाधान करने के लिए दी जाने वाली सहायता है। निर्देशन का उद्देश्य प्राप्तकर्त्ता को स्वयं के लिए जिम्मेदार बनाने हेतु उसकी स्वतन्त्रता और क्षमता को विकसित करना होता है। यह जीवन के सभी क्षेत्रों– घर में, उद्योग एवं व्यापार में, शासन में, सामाजिक जीवन में, अस्पताल में और जेल में; वस्तुतः जहाँ कहीं भी कोई सहायता चाहने वाले लोग और जहाँ कहीं भी सहायता देने वाले लोग हैं वहाँ उपस्थित है।"

5. **डेविड वी. रिडमैन**– "निर्देशन का लक्ष्य लोगों को उद्देश्यपूर्ण बनने में, न कि केवल उद्देश्यपूर्ण क्रिया में, सहायता देना है।" दूसरे शब्दों में व्यक्ति को ऐसा निर्देशन दिया जाय कि वह अपने जीवन के लक्ष्य और उद्देश्य को भली–भाँति समझ सके और फिर उन लक्ष्यों और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करे।

6. **स्टीफेलरी तथा स्टीवार्ड**– ने निर्देशन की विस्तृत परिभाशा दी है– "निर्देशन समस्या समाधान हेतु चयन एवं समायोजन निर्धारण हेतु, एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को दी मयी सहायता है। निर्देशन का लक्ष्य ग्रहणकर्त्ता में अपनी स्वतन्त्रता तथा अपने प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास है। यह एक सार्वभौमिक सेवा है जो कि केवल शिक्षालय या परिवार तक सीमित नहीं है। यह जीवन के सभी पक्षों –धर, व्यापार, उधोग, शासन, सामाजिक जीवन, चिकित्सालय, कारागार में व्याप्त है, तास्तव में इसका अथ्तित्व उन सभी स्थानों में है जहाँ व्यक्ति हैं जो कि सहायता चाहते हैं और जहाँ ऐसे लोग हैं जो सहायता दे सकते हैं।"

निर्देशन की यह परिभाशा अत्यन्त महत्त्वपुर्ण है। व्यक्ति अपनी निहित शक्तियों का विकास करके अपने वास्तविक स्वरूप से, जो कि यथार्थ में आध्यात्मिक है, परिचित हो। आत्म–सिद्धि के इस कार्य को सम्भव तथा सुगम बनाना निर्देशन का वास्तविक कार्य है।

उपरोक्त परिभाशाओं से स्पश्ट है कि निर्देशन मानव जीवन को विकसित करने वाली प्रक्रिया है वह जहाँ जीवन के राह को सरल व सहज बनाती है वही व्यक्ति को सर्वागीण विकास की ओर उन्मुख करती है अतः कह सकते हैं कि निर्देशन व्यक्तित्व विकास की एक प्रक्रिया है।

4.2.2 निर्देशन की विशेषताये (Caractersticsn of Guidance)– निर्देशन की परिभाशाओं सें उसकी कुछ विशेषताये परिभाशित होती है जो निम्न हैं–

1. निर्देशन एक सहायता है जो उस व्यक्ति को दी जाती है जो उसे चाहता है।

2. निर्देशन स्वाभाविक रूप से समर्थ एवं योग्य व प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा प्रदान दिया जाता है।

3. निर्देशन जीवन के किसी भी क्षेत्र एवं किसी भी आयु में दिया जा सकता है।

4. निर्देशन व्यक्ति की गरिमा (dignity) योग्यता, स्वतंत्रता तथा अधिकारों का सम्मान करता है।

5. निर्देशन का उद्देश्य है कि व्यक्ति को अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, रूचियों व अमिवृत्तियों की जानकारी प्राप्त करने में सहायता पहुँचाना ताकि वह अपने सम्मुख आने वाली समस्याओं का समाधान करने में समर्थ बन सके।

6. निर्देशन की प्रक्रिया में विभिन्न सिद्धान्तो (principles) मान्यताओं (assumption) एवं अभिमत (presupasition) का प्रयोग किया जाता है।

7. निर्देशन सतत प्रदाय सुगठित एवं शैक्षिक प्रक्रिया है।

8. सभी निर्देशन शिक्षा के विशिष्ठ रूप हैं लेकिन शिक्षा के अधिक व्यापक प्रक्रिया है शिक्षा के सभी पक्ष निर्देश न नहीं होते।

9. निर्देशन नियन्त्रण (control) एंव पर्यवेक्षण (supervision) से भिन्न है।

उपरोक्त विशेषताओं से स्पष्ट है कि निर्देशन एक ऐसी प्रणाली है जो एक दक्ष योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा किसी व्यक्ति को प्रदान की जाने वाली सहायता एवं सहयोग है जो मांगने पर अथवा कोई विकल्प न होने पर देय होता है। तथा जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों व अवस्थाओं में व्यक्ति को अपने लक्ष्यों के चयन में, परिवेश के संदर्भ में तथा स्वंय के बारे में समक्ष विकसित करने में सहायता प्रदान करता है ताकि अपनी क्षमताओं के साथ एक बेहतर व्यक्तित्व विकसित हो और प्रभावशाली समाज का निर्माण हो सके।

4.3 निर्देशन का स्वरूप (Nature of Guidance)

निर्देशन के स्वरूप एवं प्रकृति की जब बात की जाती है तो यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि न तो यह सरल है और न ही आसानी से समझे जाने योग्य है अतः निर्देशन को परिभाषित करने से पूर्व इसके सम्प्रत्यात्मक प्रकायोत्मक, दार्शनिक एवं शैक्षिक पक्ष पर

विचार करना उपयुक्त होगा तत्पश्चात ही निदेशन की एक व्यवस्थित रूप में समझ पाना सम्भव होगा।

4.3.1. निर्देशन का सम्प्रयात्मक पक्षः– निर्देशन किसी व्यक्ति द्वारा मांगे जाने पर अथवा व्यक्ति की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर न मांगे जाने पर भी स्वतः उपलब्ध करायी जाने वाली सहायता होती जो व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की समस्याओं के निदान हेतु समर्थ बनाती है । अर्थात निर्देशन के संदर्भ में हम कह सकते है कि निर्देशन किसी व्यक्ति को दी जाने वाली वह सहायता है जो उसे स्वंय के मार्गदर्शन में सहायता प्रदान करता है।

निर्देशन किसी आयु विशेश में बधा हुआ सम्प्रतय नही है निर्देशन की आवश्यकता मनुश्य को जीवन पर्यन्त हो सकती है प्रत्येक अवस्था में निर्देशन उस विशेश अवस्था की समस्याओं के समाधान में सहायक सिद्व होता है साथ ही अगली अवस्था में प्रवेश के साथ ही सम्भावित अवस्था की तैयारी हेतु सहायता प्रदान करता है।

निर्देशन प्रदान करने का कार्य विद्यालय स्तर पर, औद्योगिक स्तर पर सामुदायिक, सांगढनिक स्तर पर अथवा व्यवसायिक स्तर पर होना चाहिए ताकि व्यक्ति अपने समस्याओं का समाधान करते हुए बेहतर समायोजन कर सकें।

4.3.2 निर्देशन का प्रकार्यात्मक पक्ष (Guidance of Functional Aspect):– निर्देशन के प्रक्रार्यात्मक स्वरूप से तात्पर्य है कि जब किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञानार्जन के लिए, व्यवसायिक कार्य कुशलता के लिए सांवेगिक उपयुक्ता बनाये रखने के लिए अथवा सामाजिक समायोजन एवं सन्तुश्टि बनाये रखने के लि सहायता प्रदान की जाती है तो उसे निर्देशन के प्रकार्यात्मक (Functional) रूप में देखा जा सकता है।

मुख्यतः निर्देशन के तीन प्रकार्य (Functional) माने जाते हैः–

1. पूर्वभिमुखीकरणात्मक (Orientational):- निर्देशनका पहला प्रकार्य यह है कि शिक्षा एवं व्यवसाय के प्रति लोगों में पूर्वअभिमुखीकरण प्रदान करना अर्थात, शिक्षा एवं व्यवसाय सम्बन्धी तक्ष्यों का निर्धारण करना, उनकी योजना बनाना साथ ही दीर्घकालिक व्यक्तिगत लक्ष्यों और मूल्यों की दिशा में व्यक्ति का उन्मुख व प्रेरित होना इसी प्रक्रिया का अंग है।

किसी भी व्यक्ति के लिए अपने परिवेश की विशेशओं का ज्ञान एवं जानकारी महत्वपूर्ण होती है परिवेशीय जानकारी व्यक्ति के व्यवाहर का दिशा निर्देशित करने में मदद करती है। **जैसेः–** यदि किसी अमेरिकन को भारतीय संस्कृति का पूर्व ज्ञान है तो उसे भारत में अपेक्षित व्यवहार करने में मदद मिलेगी।

2. **विकासात्मक प्रकार्य (Developmental Fuctional):-** निर्देशन का दूसरा प्रकार्य विकासात्मक है। यदि व्यक्ति को व्यक्तित्व के विकास के लिए उचित निर्देशन दिया जाये जिससे व्यक्ति अपनी क्षमताओ एवं विशेशताओं को विकसित करने में सक्षम हो जाय तो ऐसी स्थिति में वह अपनी आने वाली अवस्थाओं में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का सामना करने में सक्षम हो जाता है विकासात्मक निर्देशन का ध्येय मात्र समस्याओं का समाधान व त्रृटियों का परिहास तक ही सीमित नही होता वरन् व्यक्ति का व्यक्तित्व का संपूर्ण या अधिकतम विकास करना होता है।

3. **समायोजनात्मक प्रकार्य (Adjustmental Fanction):-** समायोजन की समस्या जीवन के विभिन्न क्षेत्रो जैसे, घर, परिवार, विद्यालय पास पडौस, संवेगात्मक, शैक्षिक, मनोंरंजन व वैवाहिक आदि में हो सकती है इसी के साथ बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रोढ़ावस्था एवं वृद्वावस्था आदि में कभी भी उत्पन्न हो सकती है अतः समायोजन हेतु निर्देशन आवश्यक माना जाता है। अतः निर्देशन का समायोजनात्मक प्रकार्य मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों एवं विभन्न अवस्थाओं में उत्पन्न समायोजन समस्या के निराकरण में सहायता प्रदान करता है।

यहाँ यह बता देना भी समीचीन होगा कि प्रत्येक व्यक्ति की समायेजन की समस्या भी अलग–अलग होती है और उनका समाधान भी नितान्त वैयक्तिक स्वरूप का होता है। इसलिए प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों द्वारा ही इन सेवाओं को प्रदान किया जाना महत्वपूर्ण होगा।

निर्देशन के उद्देश्य (Goods of Guidance):- निर्देशन के प्रकार्यात्मक पक्ष को सिद्वकरने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसके उद्देश्यों का उल्लेख यहाँ प्रस्तुत करें।

क्रिब्बन (Cribbin) ने निर्देशन के उद्देश्यो को दो वर्गो मे बॉटा हैः–

1. निर्देशन के परम उद्देश्य (Ultimte Aims of Guidance)

   (i) व्यक्ति का सर्वोत्तम विकास (Best development of the individual)

   (ii) व्यक्ति का पूर्णतः परिष्कृत विकास (Well rounded development)

   (iii) अधिकतम सम्भव विकास (Optimum development)

   (iv) पूर्ण एवं सन्तुलित विकास

   (v) शारीरिक, बौद्विक, सांवेगिक, सामाजिक और नैतिक विकास

(vi) विस्तृत विकास (Broad gauged development)

(vii) आत्म–निर्देशनात्मक विकास और वैयक्तिक परिपक्वता का विकास

(viii) व्यक्ति को आत्मावलम्बी, आत्म–संयमी, आत्म निर्देशित और आन्तरिक संसाधनों से परिपूर्ण बनाना।

(ix) वैयक्तिक प्रसन्नता और सामाजिक निपुणता (individual happiness and social efficiency) तथा

(x) व्यक्ति को बेहतर जीवन जीना सिखाना।

2. निर्देशन के समीपस्थ उद्देश्य (Proximate Aims of Guidance) निर्देशन के परम उद्देश्यों की प्राप्ति अनेक समीपस्थ उद्देश्यों की प्राप्ति की सफलता पर निर्भर होती है। उक्त समीपस्थ उद्देश्यों को क्रिब्बिन ने निम्नवत गिनाया हैः–

(i) छात्रों में पहल शक्ति, जिम्मेदारी, आत्म दिशा निर्देशन एवं आत्म–निर्देशन का विकास करना।

(ii) छात्रों में अपने लक्ष्यों का बुद्धिमतापूर्ण ढ़ंग से चयन करने की क्षमता का विकास करना।

(iii) छात्रों में स्वयं अपने विशय में एवं विद्यालय के बारे में अभिज्ञान का विकास करना तथा इस योग्य बनाना कि विद्यालय में छात्र अपनी उपलब्धियों आदि के कारण जाना जाय।

(iv) छात्रों में जीवन में आने वाले संकटों का पूर्वानुमान करने, उनका परिहार करने तथा उनसे बचाव करने की योग्यता का विकास करना।

(v) छात्रों को विद्यालय तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में समायोजन स्थापित करने हेतु सहायता प्रदान करना।

(vi) छात्रों की अपनी समस्याओं की पहचान करने, समस्याओं को समझने तथा उनका समाधान करने की प्रक्रिया में सहायता करना।

(vii) जीवन की संकटकालीन परिस्थितयों में विवेकपूर्ण चयन (Choice) करने, योजना बनाने तथा परिस्थितियों की व्याख्या करने मे छात्र को सहयोग देना।

(viii) छात्रों के भावी जीवन में समुत्पन्न होने वाली विविध समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक अन्तदृष्टि एवं तकनीकी सामर्थ्य अर्जित करने के लिए सहयोग प्रदान करना।

(ix) अध्यापकों को अधिक प्रभावी शिक्षण सम्पन्न करने हेतु सहयोग प्रदान करना।

(x) विद्यालय के समग्र कार्यक्रमों के प्रति अपना अधिकतम योगदान सम्भव बनाने हेतु विद्यालय प्रबन्धकों को अधिक दक्षतापूर्ण प्रशासन सम्पादित करने के लिए सहायता देना।

(xi) नागरिकों को जीवन की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने एवं उसके प्रति अपने योगदान हेतु विकसित करना।

(xii) निर्देशन के अन्य विवध समीपस्थ लक्ष्यों के अन्तर्गत परिवारों की सहातया करना, नैतिक चरित्र के विकास में समुदायों की सहायता करना, बेहतर मानवीय सम्बन्धों का प्रोत्साहन एवं पोशण करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझदारी के विकास को सम्मिलित किया जाता है।

4.3.3 निर्देशन का दार्शनिक पक्ष (Guidance: Philosophy):- निर्देशन का मूलाधार दर्शन है निर्देशन कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित है निर्देशन की प्रक्रिया, लक्ष्य एवं उद्देश्य मानव व्यवहार के संदर्भ में कुछ मान्यताओं (Assamption) और अभिग्रहों (Prosupposition) पर आधारित है।

क्रिब्बन (Cribbin) ने 1935 से 1950 के मध्य निर्देशन साहित्य के सर्वेक्षण द्वारा पन्द्रह महत्वपूर्ण मान्यताओं को सूचीबद्वकिया है इन अभिमतों में बाद के दशकों में भी कोई परिवर्तन नहीं किया गया, कुछ अन्य महत्वपूर्ण अभिमतों व मान्यताओं को उसी सूची में जोड़ा गया।

1. निर्देशन के सामान्य सिद्वान्त या मूलभूत अभिगृह (Common Priciples or Assumption in Guidance):-

1. निर्देशन व्यक्ति की गरिमा (Dignity) और योग्यता/लालकियत (Worth) के आधार पर एवं आवश्यकता के क्षणों में व्यक्गित सहयोग प्राप्त करने के अधिकार के आधार पर प्रदान किया जाता है।

2. निर्देशन विद्यार्थी–केन्द्रित होता है । यह छात्र के अधिकतम विकास से जुडा होता है और अन्तर्निहित सामर्थ्यों के व्यक्तिगत एवं सामाजिक हितों हेतु पूर्णतम सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है।

3. निर्देशन उत्ना ही अच्छा और प्राचीन है जितनी की शिक्षा, लेकिन इसकी दृष्टि आधुनिक है, विशेषकर (i) विद्यार्थी के जीवन के उन क्षेत्रों के संदर्भ में जिनका विकास विद्यालय की जिम्मेदारी मानी जाती है (ii) विद्यार्थियों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं की दृष्टि से (iii) तथा इन लक्ष्यों की संप्राप्ति हेतु प्रयुक्त की जाने वाली तकनीकों की दृष्टि से।

4. निर्देशन सतत् (continuous) एवं अनुक्रमिक (sequential) शैक्षिक प्रक्रिया है। निर्देशन शिक्षा का समाविश्ट अंग (integral part) है। इसे शिक्षा का परिधीय संलग्न नहीं माना जाना चाहिए।

5. निर्देशन व्यक्ति और समाज दोनों के प्रति जिम्मेदार होता है।

6. निर्देशन द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं पर सभी विद्यार्थियों का अधिकार होता है। निर्देशन द्वारा विद्यार्थियों के इस अधिकार का सम्मान किया जाना चाहिए।

7. निर्देशन की उन्मुखता सहयोग (cooperation) की ओर होती है, बाध्यता (compulsion) की ओर नहीं। इस प्रकार निर्देशन का स्वरूप प्रबोधक (monitory) होता है जिसमें जोर–जबरदस्ती के लिए कोई स्थान नहीं होता है।

8. यद्यपि निर्देशन सतत् प्रक्रिया है किन्तु जीवन के कुछ क्षण नाजुक होते है जिनमें निर्देशन विवेकपूर्ण निर्णय लेने, नियोजन, व्याख्या और समायोजन स्थापित करने हेतु छात्रों को सहयोग प्रदान करता है।

9. निर्देशन की स्वाभाविक मॉग होती है कि सामाजिक– सांस्कृतिक सन्दर्भो में व्यक्ति का आधुनिक मनोवैज्ञानिक तकनीको की सहायता से व्यापक मूल्यांकन किया जाय। सहायता प्रदान करने से पूर्व व्यक्ति को भली प्रकार समझना महत्वपूर्ण है।

10. निर्देशन की जिम्मेदारी ऐसे लोगो को सौपीं जानी चाहिए जो स्वाभाविक रूप में ऐसे कार्य हेतु प्रतिभा सम्पन्न है तथा जिनके पास इसका आवश्यक प्रशिक्षण और अनुभव उपलब्ध है।

11. निर्देशन प्रदान करना विशेषज्ञों के किसी विशेष गुट का एकाधिकार नहीं है। इस कार्य हेतु सभी का सहयोग वांछित है, सभी सम्बन्धित व्यक्ति अपनी–अपनी जिम्मेदारी के क्षेत्र में अपनी निपुणता के स्तर पर कार्य करते हैं।

12. निर्देशन का केन्द्र बिन्दु विद्यार्थियों को अपने सर्वोत्तम की सिद्धि और स्व–आत्मीकरण (actualization) प्राप्त करने हेतु सहायता प्रदान करना होता है। व्यक्ति विशेष या विद्यालय की किसी एकल समस्या का समाधान करने की दिशा में मुख्य ध्यान केन्द्रित नहीं किया जाता है।

13. निर्देशन छात्रों और शिक्षा पुंज के बीच की मध्यस्थताकरी एजेंसी है।

14. निर्देशन शिक्षा का वैयक्तिकीरण, व्यक्तिकरण और सामाजीकरण तत्व है।

15. निर्देशन कार्यक्रम का प्रभावशीलता की दृष्टि से सतत् वैज्ञानिक मूल्यांकन होना चाहिए।

कार्लटन ई.बेक (Cartton E. Back 1963) ने निर्देशन के दार्शनिक पक्ष विशयक साहित्य का अध्ययन व क्रिब्बन के डाक्टर उपाधि के लिए किये गये अध्ययन के द्वारा कुछ दार्शनिक अभिमत को रेखाकिंत किया है। इन दार्शनिक मतों के माध्यम से निर्देशन को प्रदान करने वाला व्यक्ति परिस्थितयों तथा समस्याओं का मूल्यॅाकन करते हुए निरीक्षण एवं कार्यो का भी मूल्याँकन करता है बेक ने इक्कीस अभिमता को रेखाकिंत किया जो निम्न हैः–

1. भौतिक वास्तविकता क एक ऐसे वस्तुनिश्ठ स्वरूप का अस्तित्व होता है जो ज्ञाता के संज्ञानात्मक प्रक्रम से अप्रभावित एवं स्वतंत्र होता है।

2. भौतिक वस्तुओं और मानवीय क्रियाओं दोनों में कारणात्मकता (causality) एवं नियमितता (regularity) पायी जाती है।

3. मानव प्राणी में सामथ्यों का संगठित रूप पाया जाता है जो कि जीवन पर्यन्त अपेक्षाकृत स्थायी होता है। इसमें परिवर्तन की जगह मजबूती, कमजोरी या विशिष्टीकरण घटित होता है।

4. मनुष्य केवल वही सब कुछ जान सकता है जो उसके क्षेत्र में होता है, उसके निष्कर्श भी इसी संगठन के माध्यम से विकसित होते है।

5. किसी क्लायंट की सेवा से पूर्व उसे समझना आवश्यक है।

6. सांस्कृतिक एवं आनुभाविक समानता के कारण विभिन्न तत्वों को अर्थ प्रदान किया जाना संभव है और इस प्रकार परानुभूति (empathy) संभव है।

7. प्रकृति को समझने के लिए मनुष्य का वर्तमान ढांचा निर्धारणवाद (determinism) का है।

8. प्रत्येक व्यक्ति को अंततः निजी चयन प्राप्त करना होगा और उसे अपने चयन के प्रति जिम्मेदार होना चाहिए।

9. प्रत्येक व्यक्ति में अपने जीवन की समस्याओं के समाधान हेतु सामर्थ्य विद्यमान होती है। यदि उसका ध्यान स्पश्ट दृष्टि के मार्ग में व्याप्त बाधाओं की ओर आकर्शित किया जा सके तो व्यक्ति समस्याओं के समाधान का मार्ग खोज सकता है।

10. व्यक्ति की गरिमा (dignity), लायकियत (worth) तथा निजी जीवन शैली का

अधिकार मूलभूत रूप से मान्य है। लोतांत्रिक शासन प्रणाजी को निर्देशन के अभिमतों के साथ सर्वाधिक सुसंगत प्रणाजी माना जाता है।

11. प्रत्येक व्यक्ति की अंतनिर्हित सामर्थ्यो के सर्वाधिक विकास के साथ निर्देशन का संबंध होता है।

12. प्रत्येक प्राणी अपने पूर्ण रूप में प्रतिक्रिया करता है अतः निर्देशन एवं परामर्शन हेतु व्यक्ति के समग्र जीवन क्षेत्र पर ध्यान देना चाहिए।

13. परिवर्तन को अभिमत के रूप में स्वीकार नही किया जा सकता है किन्तु जीवन क्षेत्र के पुनर्गठन के माध्यम से गत्यात्म्क संक्रमण को निर्देशन में स्वीकार किया जाता है।

14. सत्य का निकटस्थ सादृश्य योग्य अवलाकनकत्ताओं के बीच आम सहमति है। यह सम्प्रत्यय कठिन किन्तु आवश्कय हैं

15. विगत अनुभवों के आधार पर तैयार किये गये निष्कर्श नियमबद्ध सृष्टि में पूर्वकथन करने के लिए उपयोगी उपकरण की रचना करते है।

16. अनुमान/निष्कर्श (inference) ज्ञान का एक मात्र स्त्रोत है।

17. अन्तर्बोध (intution) प्रक्रम अभिमान्य (presupposed) है।

18. व्यक्ति की आवश्यकताएँ उसके दृश्य प्रपंचीय क्षेत्र के पोषण और उन्नयन हेतु आवश्यक क्रियाओं का प्रतिनिधित्व करती है।

19. दृश्य प्रपंचीय प्रणाली व्यक्ति के क्षेत्र का पुनर्गठन प्रस्तावित करती है जिससे कि व्यक्ति के अनुभवों, अभिवृत्तियों और अर्थबोधों का भावी समस्याओं के समाधान हेतु विकास हों।

20. व्यक्ति को समझने और सहयोग देने की कोई प्रणाली जो लक्ष्य प्राप्ति में सहायक हो, मान्य है बशर्ते कि ऐसा पुनर्गठन व्यक्ति की दृष्टि में किसी और भी महत्वपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक न हो।

21. व्यवहार करने की ऐसी अनेक उत्कृष्ट पद्धतियॉ है जो व्यक्ति और समाज को सुरक्षित रखती है यदि किसी व्यक्ति को घटनाओ के वस्तुनिष्ठ अवलोकन के मार्ग में विद्यमान बाधाओं से मुक्त कर दिया जाय तो व्यक्ति ऐसी व्यवहर प्रणालियों को जान जायेगा और उन्हे स्वतः स्वीकार कर लेगा।

4.3.4. निर्देशन का शैक्षिक पक्ष (Guidance Educatione Aspect):– समस्त प्राणियों में मनुष्य को सबसे बुद्धिमान प्राणी माना गया है परन्तु यह भी सत्य है समस्त

प्राणियों में मानव शिशु सबसे कम विकसित होता है अतः लम्बे समय तक पारिवारिक व सामाजिक वातावरण में उसका संरक्षण आवश्यक है जटिल भौतिक व सामाजिक परिवेश में व्यक्ति की मांगों की पूर्ति हे सके इसके लिए शिक्षा प्रक्रिया आवश्यक है ताकि व्यक्ति में ज्ञान, आदत, कौशल एवं सूचना जैसे भण्डार का समुचित विकास हो सके। इस संदर्भ मे शिक्षा को तीन धाराओं में विभाजित किया गया है।

1. **शिक्षा व्यक्तिगत विकास की एक प्रक्रिया (Education as the process of Individual development):-** शिक्षा व्यक्तिगत विकास की एक प्रक्रिया है शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में परिवर्तन उत्पन्न होते है जन्म के समय शिशु पशुओं की भॉति असहाय होता है उसे अपने भौतिक व सामाजिक परिवेश के साथ बहुत कुछ सीखना पड़ता है शिक्षा वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति में ज्ञान, कौशल व सूचनाओं को अर्जित करने में सक्षम बनाती है।

जोन्स (Jones) के अनुसारः– शिक्षा पूर्णतः वैयक्तिक प्रक्रिया है शिक्षा व्यक्ति के क्रिया कलापो के फलस्वरूप व्यक्ति में उत्पन्न होने वाला परिवर्तन है शिक्षा व्यक्ति की चेतना एवं अनुभूति में संसार की रचना है।

2. **शिक्षा अनुदेश के रूप में (Education as Instraction) :-** शिक्षा का अधिकांश भाग कक्षा में अनुदेशात्मक रूप में होता है जहाँ सफल शिक्षण के लिए विभिन्न उद्दीपकों की स्थापना की जाती है ताकि विद्यार्थी उन द्दीपकों के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया कर सके इस दौरान क ऐसे परिवेश का निर्माण किया जाता है जो विद्यार्थी को स्वंय के बारे में व परिवेश के बारे में समझ विकसति करने में तथा सीखने में मदद करता है।

3. **शिक्षा समाजीकरण के रूप में (Education as Socialization):-** शिक्षा व समाजीकरण की प्रक्रिया एक दूसरे के पूरक है शिक्षा के द्वारा समाज का विकास व समाज के अनुरूप शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाया जाता है शिक्षा के माध्यम से समाज यह प्रयास करता है कि व्यक्ति को उसके अनुकूल विकास एवं अपने में परिवर्तन करने में सहातयता प्राप्त हो सके ताकि समाज के व्यक्ति शिक्षित व सामाजिक बन सके।

4.4 निर्देशन की आवश्यकता (Need of Guidance):-

समाज के बेहत्तर निर्माण के लिए तथा समस्त व्यक्तियो के समुचित विकास के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है वैसे तो शिक्षा निर्देशन का प्रमुख स्तम्भ है दिशान की प्रगति पर बदलती तकनीक, संस्कृति व्यवसाय व धर्म के बदलते मापदण्ड के मध्येनजिर सामजिक

एवं व्यैक्तिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक अनुभव की जा रही है वर्तमान समय निर्देशन की आवश्यकता को दो दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है

1. निर्देशन का समाजशास्त्रीय आधार
2. निर्देशन का मनोवैज्ञानिक आधार

4.4.1 निर्देशन का समाजशास्त्रीय आधार (Sociological Basis of Guidance):-

निर्देशन का समाज शास्त्रीय आधार निम्न बिन्दुओं पर प्रकाश डालता है

I. व्यक्ति के मौलिक महत्व की स्वीकृति (The Acceptance of fundamentaql worth of the individual) प्रत्येक समाज की प्रगति उस यदि समाज के व्यक्तियों को समान अवसर व सुविधाायें प्राप्त हो तो व्यक्तित्व एवं समाज दोनो में प्रगति होती परन्तु यदि समाज के व्यक्तियों को समान व उचित अवसर उपलब्ध नहीं कराये जाने पर व्यक्ति व समाज उन्नति की दौड़ में पिछड जाता है ऐसी स्थिति में निर्देशन की आवश्यकता होती है।

II. मानवीय क्षमता के समुचित उपयोग में निर्देशन की आवश्यकता (Proper Utilization of Human Capacity and its Conservation):- आर्थिक रुप से पिछड़े देशो की अगर बात करें तो लगता है कि वहाँ मानवीय क्षमताओं का समुचित उपयोग नहीं हो पाया है इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि निर्देशन के द्वारा व्यक्ति की क्षमताओं का समुचित उपयोग किया जाय जिससे समाज की उन्नति में अधिक से अधिक योगदान दिया जा सकता है

III. कार्य एवं सेवाओं में विशिश्ठीकरण की बढ़ती सामाजिक प्रवृत्ति (The Tendency of Specialization of Function and Services)

परिवर्तन के इस दौर में व्यक्तियों में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के प्रति विशेषीकरण (specialization) की प्रवृति बढ़ रही है चाहे वह शिक्षा हो या व्यवसाय, उत्पाद हो अथवा वितरण आदि तमाम क्षेत्रों में विशेषीकरण पर जोर भी दिया जाता है जैसे– पहले एक दर्जी सभी प्रकार के कपड़े सिल देता था परन्तु वर्तमान में कमीज, पैर, कुर्ता, आदि सभी क्षोत्रों में निदेंशन की आवश्यकता होती है।

IV. **औद्योगीकरण के विकास में निर्देशन की आवश्यकता** :– वर्तमान युग मशीनी युग है जीवन के हर क्षेत्र में मशीनों का प्रयोग हो रहा है जिसके फलस्व रुप उसे अवकाश का

समय ज्यादा मिल रहा है इस अवकाश के समय का बेहतर उपयोग कैसे हो इसके लिए निदेशन की आवश्यक्ता पड़ती है यहाँ यह बताना भी जरुरी है उद्योगो में हो रहे नये–नये परिवर्तन नई विधियों व तकनीको से व्यक्ति को निरन्तर सम्बन्धित रहना पड़ता है इसके लिए भी उसे निर्देशन की आवश्यक्ता पड़ती है।

V. महिलाओं की सामाजिक स्थिति में हो रहे परिवर्तन में निर्देशन की आवश्यकताः– वर्तमान समय में स्त्रियों के सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में परिवर्तन आ रहा है वह रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों में अपने अस्तित्व को बनाये रखने में संघर्शरत है ऐसी स्थिति में पारिवारिक व आर्थिक क्षेत्रों में सामजस्य बनाये रखने के लिए उसे निर्देशन की आवश्यकता है साथ ही व्यवसायिक, राजनैतिक, आर्थिक आादि विभिन्न क्षेत्रों में अपने स्थिति सुदृढ़ करने व आत्मनिर्भर होने में भी निर्देशन सहायक सिद्ध हो सकता है।

VI. शिक्षा संस्थानों में विद्यार्थी की बढ़ती हुई संख्या में निर्देशन की आवश्यकता– शिक्षा संस्थनों में विद्याथियों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन करना तथा निर्देशित करना एक अहम कार्य है चूकिं पहले की अपेक्षा अब पाठ्यक्रमों एवं प्रशिक्षण का चुनावा ज्यादा कठिन है तो यहाँ भी निर्देशन की जरूरत होती है ताकि छात्र–छात्रायें अपनी रूचि एवं क्षमताओं के अनुसार कार्य कर सकें।

राष्ट्रीय विकास में निर्देशन की आवश्यकता–

निर्देशन के द्वारा यह पता लगाया जा सकता है कि राष्ट्रीय विकास के लिए मानव ऊर्जा का प्रयोग किन क्षेत्रों एवं स्त्रोंतो मे किया जाए अगर रोजगार में असंतुलन हो रहा है तो कैसे रोजगार के संसाधनों को बढ़ाया जाए, साथ ही मानवीय क्षमता को बढ़ाने के लिए उन्हें कैसे शिक्षित एवं प्रशिक्षित किया जाए ताकि राष्ट्र को समाजिक, आर्थिक रूप से उन्नत व विकसित किया जा सके।

4.2 निर्देशन का मनोवज्ञैनिक आधार (Psychological Basis of Gaudiance):- प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में पर्यावरण तथा आनुवंशिकता दोनों का योगदान होता है यदि पर्यावरण में किसी प्रकार का परिवर्तन कर दिया जाए तो व्यक्तित्व में परिवर्तन होने लगता है ऐसी स्थिति में व्यक्ति के आपेक्षित विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसकी मनोवैज्ञनिक आवश्यकताओं को समझकर कैसा परिवेश आवश्यक है इस संदर्भ में

व्यक्ति को निर्देशित किया जाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकताओं के निम्न कारण है–

1. **व्यक्ति की भावनात्मक समस्यायें (The Emotional Problem of the individual)**:– जब व्यक्ति के सम्मुख भावात्मक समस्यायें उत्पन्न हो जाती है तो उसके जीवन में असन्तुलन पैदा होने लगता है या तों कहें कि समायोजन गड़बड़ाने लगता है व्यक्ति के व्यवहार में समुचित सन्ततुलन लाने के लिए निर्देशक उसकी कठिनाईयों को समझकर उन कठिनाईयों का हल खोजने में व्यक्ति की सहायता कर सकता है।

2. **वैयक्तिक भिन्नता का महत्व (The Importance of Individual Difference):-** वैयक्तिक भिन्नता से तात्पर्य है कि कोई भी दो व्यक्ति पूर्णतः समान नही होते, शारीरिक भिन्नता के अलावा बुद्धि, रूचियाँ दृष्टिकोण एवं मानसिक विकास में भी अन्तर होता है इसलिए व्यक्ति विशेष की परिस्थितियों, स्वभाव एवं क्षमताओं के अनुरूप शौक्षिक एवं वयवसायिक क्षेत्रों में समायोजन के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है।

2. **व्यक्ति विशेष की विषयगत तथा क्षेत्रों में प्रगति सम्बन्धी भिन्नता**– निर्देशन परीक्षणों एवं मूल्यांकनों से यह अन्तर स्पष्टतः दिखाई देता है कि एक व्यक्ति अगर मनोविज्ञान में अच्छा है परन्तु भूगोल में रूचि कम प्रदर्शित करता है इसी प्रकार दूसरा व्यक्ति खेल में ज्यादा रूचि प्रदर्शित करता है और पढ़ाई में कम। इस प्रकार की भिन्नता को देखते हुए निर्देशन व्यक्ति विशेश के शैक्षिक एवं व्यवसायिक चयन में सहायता प्रदान करता है।

3. **कमजोर छात्रो को विशेष सहायता द्वारा पहचायन दिलवाना (Identifying the Weak Student in Need of Special Help):**– वे छात्र–छात्राये जो आर्थिक व समाजिक रूप से पिछड़े है या विकलांग है निर्देशन उन्हें विशेष सहायता प्रदान कर कालेज एवं विश्वविद्यालयों में विभिन्न सुविघायें मुहैया करा कर पहचान बनाने में मदद करता है।

4. **व्यक्तित्व के उचित विकास की आवश्यकता (The Need for Proper Development of Personality):**– व्यक्ति का व्यक्तित्व मानसिक एवं शारीरिक गुणों का योग है जिसमें आनुवंशिकता एवं पर्यावरण महत्वपूर्ण योगदान देते है उचित व्यक्तित्व का विकास समुचित शिक्षा एवं परिवेश द्वारा हो सकता है साथ आनुवंशिकता द्वारा प्राप्त गुणों पर प्रकाश डालने तथा प्रभावशाली व्यवहार विकसित करने में निर्देशन की आवश्यकता होती है।

अतः स्पष्ट है कि निर्देशन की आवश्यकता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होती है।

4.5.1 निर्देशन के प्रकार (Type of Guidance):- निर्देशन के प्रकारो या वर्गीकरण के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत दिये है

1. प्रॉक्टर का वर्गीकरण (proctor's classification) डब्ल्यू. एम. प्रॉंक्टर ने अपनी पुस्तक Eudcational and vocational guidance में निर्देशन के छः प्रकारों का वर्णन किया है।

- शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance)
- व्यवसायिक निर्देशन (Vocational Gudiance)
- अवकाश के उत्तम उपयोग के लिए निर्देशन (Guidance in worthly use of Leisure Activities)

1. शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance), 2. व्यवसायिक निर्देशन (Vocational Gudiance) 3. समाजाजिक एवं नागरिक कार्यों में निर्देशन (Guidance in Social and Civil Activities), 4. स्वास्थ्य एवं शारीरिक समस्याओं से सम्बन्धित निर्देशन (Guidance in Health and Physical Activities), 5. अवकाश के उत्तम उपयोग के लिए निर्देशन (Guidance in worthly use of Leisure Time), 6. चरित्र–निर्माण के कार्यों में निर्देशन (Guidance in Character Builiding Activities)

प्रॉक्टर द्वारा बताये गये निर्देशन के वर्गीकरण का विश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन तो बहुस्वीकृत निर्देशन हैं, किन्तु उनके द्वारा सुझाये गये अन्य प्रकार के निर्देशन के सम्बन्ध में मतवैभिन्य है। शेश चार प्रकारों को ध्यान से देखें तो स्वास्थ्य, चरित्र–निर्माण एवं अवकाश के समय का उत्तम उपयोग निर्देशन के ऐसे प्रकार हैं जिन्हें व्यक्तिगत निर्देशन की परिधि में लाया जा सकता है। सामाजिक एवं नागरिक कार्यों सम्बन्धी निर्देशन को सामाजिक निर्देशन के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

4.5.2 ब्रिवर का वर्गीकरण (Brewer's Classification)

जान एम ब्रिवर ने अपनी पुस्तक 'एजूकेशन एण्ड गाइडेन्स' निर्देशन के अग्रलिखित 10 प्रकारों का उल्लेख किया है–

1. शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance)
2. व्यवसायिक निर्देशन (Vocational Guidance)
3. धार्मिक निर्देशन (Religious Guidence)
4. घरेलू सम्बन्धों में निर्देशन (Guidence for Home Relations)
5. नागरिकता के लिए निर्देशन (Guidence for Citizenship)

6. अवकाश एवं मनोरंजन के लिए निर्देशन (Guidence for Leisure and Recreation)

7. वैयत्तिक उन्नति संबंधी निर्देशन (Guidance inPersonal Well being)

8. उचित कार्य करने के लिए निर्देशन (Guidence in Right Doing)

9. सहयोग एवं विचार संबंधी निर्देशन (Guidence in Co-operation and Thoughtfulness)

10. सांस्कृतिक कार्यो सं संबंद्ध निर्देशन (Guidence in Wholesome and Culture Activities)।

ब्रिवर द्वारा किये गये वर्गीकरण में निर्देशन के 10 प्रकारों का अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के अतिरिक्त निर्देशन के अन्य प्रकारों को व्यक्ति के निजी एवं सामाजिक जीवान से सम्बद्ध किया जा सकता है। नागरिकता, अवकाश के उपयोग सम्बन्धित निर्देशन, वैयक्तिक उत्रति सम्बन्धी निर्देशन, अचित कार्य करने, सहयोग एवं विचार सम्बन्धी निर्देशन तथा सांस्कृतिक कार्यों से सम्बद्ध निर्देशन को वैयक्तिक एवं सामाजिक निर्देशन की परिधि में सुविधापूर्वक रखा जा सकता है। इस प्रकार ब्रिवर द्वारा उल्लिखित निर्देशन के भेदों को चार प्रकारों के अन्तर्गत रखा जा सकता है–शैक्षिक, व्यावसयिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक।

पैटरसन के निर्देशन प्रकारों से सम्बन्धित विचार (Paterson: On Kinds Of Guidance)

पैटरसन ने निर्देशन के पाँच प्रकारों का उल्लेख किया है।

1. शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance)
2. व्यवसायिक निर्देशन (Vocational Gudiance)
3. व्यक्तिगत निर्देशन(जिसमें सामाजिक, मनोवेगात्मक एवं अवकाश सम्बन्धी निर्देशन समाहित है) (Personal Guidance)
4. स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देशन (Health Guidance)
5. आर्थिक निर्देशन (Economic Guidance)

इस वर्गीकरण में सामाजिक, मनोवेगात्मक (Emotional) एवं अवकाश सम्बन्धी निर्देशन को व्यक्तिगत निर्देशन में समेट लिया गया है किन्तु स्वास्थ्य एवं आर्थिक समस्याओं से सम्बद्ध निर्देशन को अलग से स्थान दिया गया है।

मेयर का वर्गीकरण (Myer's Classification)

मेयर ने निर्देशन के आठ प्रकार बताये।

I. शैक्षिक निर्देशन (Educational guidance)

II. व्यवसायिक निर्देशन (Vocational guidance)

III. स्वास्थ्य निर्देशन (Health guidance)

IV. समाजिक एवं नैतिक निर्देशन (Social and Moral Guidance)

V. निर्देशन (Civil guidance)

VI. सामुदायिक सेवा निर्देशन (Community Service guidance)

VII. मनांरेजन सम्बन्धी निर्देशन (Recreational guidance)

VIII. नेतृत्व के लिए निर्देशन (Leadership guidance)

उपरोक्त मनोवैज्ञानिक के निर्देशन के वर्गीकरण को मुख्यतः तीन वर्गो में विभाजित किया जाता है ।

1. शैक्षिक निर्देशन
2. व्यवसायिक निर्देशन
3. व्यक्तिगत निर्देशन

4.5.5 शैक्षिक निर्देशन (Educational guidance)- निर्देशन के शैक्षिक प्रकार को सभी विद्वानों ने एकमत से स्वीकार किया है किन्तु शैक्षिक निर्देशन के अर्थ–निश्चयीकरण में विद्वानों ने शैक्षिक निर्देशन एवं शिक्षा दोनों को एक कर दिया है। वस्तुतः शैक्षिक निर्देशन एवं शिक्षा, अर्थ एवं क्षेत्र की व्यापकता की दृष्टि से मौलिक अन्तर रखते है। शैक्षिक निर्देशन को समझाते हुए बताया है कि शैक्षिक निर्देशन एक प्रक्रिया (Process) है, विधि या विधियों का समूह नहीं है। यह व्यक्ति को अपनी शिक्षा के लिए उपयुक्त परिवेश या सेटिंग चुनने में सहायता करता है। शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्ति की मानसिक एवं क्षमतागत सीमाओं एवं उपलब्ध विकल्पों में व्यक्ति के लिए उपयुक्त शिक्षा की योजना बनाने में निर्देशन प्रक्रम सहायक होता है। तार्त्पय यह है कि शैक्षिक निर्देशन के द्वारा छात्र की मानसिक योग्यता और शैक्षिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक निर्देशन प्रदान करना चाहिए।

इस प्रकार हम कह सकते है कि शैक्षिक निर्देशन एक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के शैक्षिक कार्यक्रम को विचारपूर्ण ढ़ग से नियोजित करने में सहायक होती है और समाज एवं व्यक्ति के लाभार्थ उस क्रम को सफलतापूर्वक पूर्ण करने में व्यक्ति की साहयता करता है।

4.5.6 व्यावसायिक निर्देशन (VOCATIONAL GUIDANCE)

निर्देशन का एक अन्य महत्वूपर्ण एवं प्राथमिक प्रकार है– व्यावसायिक निर्देशन। 1932 ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका में हाइट हाउस में 'बाल स्वास्थ्य एवं सुरक्षा' विशय पर आयोजित विचारगोश्ठी में व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति को व्यवसाय के चुनाव, उसके लिए तैयार होने, उसमें लगने एवं उत्रति करने में सहायता करने वाला प्रक्रम है।

व्यावसायिक निर्देशन व व्यावसायिक शिक्षा में अन्तर बताते हुए इन्होनों कहा है व्यावसायिक शिक्षा किसी विशिश्ट व्यवसाय में कार्य करने की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों की दीक्षा देने का कार्य करती है। व्यावसायिक निर्देशन किसी व्यवसाय के चुनाव एवं उसके उपरान्त होने वाली दीक्षा से सम्बन्धित सूचनाएँ एवं सहायता प्रदान करता है।

वृत्तिक निर्देशन (Carreer Guidance)

व्यावसायिक निर्देशन का एक प्रमुख पक्ष वृत्तिक (Career) निर्देशन है। प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होती है कि वह ऐसी शिक्षा प्राप्त करे जो उसे किसी रोजगार में कुशलता प्रदान करना सम्भव बनायें। व्यवसायिक निर्देशन और वृत्तिक निर्देशन एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

4.5.7 व्यक्तिगत निर्देशन (PERSONAL GUIDANCE)

निर्देशन का तीसरा महत्वपूर्ण प्रारूप व्यक्तिगत निर्देशन जिसके अन्तर्गत पैटरसन ने सामाजिक, मनोवेगात्मक तथा अवकाश सम्बन्धी निर्देशन को सम्मिलित किया है। वास्तव में व्यक्तिगत निर्देशन के क्षत्र में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ, मनोवेगात्मक ामरसरेजल, सामाजिक समायोजन तथा अवकाश एवं मनोंरजन की समस्रूाओं को ग्रहण किया जाना चाहिए। जीवन के चरित्र सम्बन्धी एवं आध्यात्मिक पहलू को भी व्यक्तिगत निर्देशन में रखा जा सकता है। अभ्रिप्राय यह है कि शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में जिन समस्याओं को स्थान नहीं दिया जा सकता उन्हें व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत सुविधापूर्वक लाया जा सकता है।

निर्देशन के तीनों प्रकारों का सम्बन्धी जीवन की विभन्न समस्याओं से है निर्देशन का मुख्य दायित्व भी यह है कि समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर व्यक्ति की रूचि एवं क्षमतानुसार व्यक्ति के विकास में सहायक होना। व्यक्तिगत निर्देशन एक महत्वपूर्ण एवं व्यापक विधी है क्योंकि इसमें व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन आ जाता है चूकि समाज व्यक्तियों से

बना है सो सामाजिक व वैयक्तिक दोनों पक्ष व्यक्तिगत निर्देशन के क्षेत्र की परिधि में आ जाते है जनसेवा, चरित्र एवं नागरिकता जहाँ सामाजिक पहलू के क्षेत्र है वहीं भावात्मक समायोजन स्वास्थ्य, मनोरंजन व्यक्ति के व्यक्तिगत पहलू से सम्बन्धित है अतः दोनों ही पहलू को व्यक्तिगत निर्देशन में महत्ता दी जाती है। इस प्रकार शैक्षिक, व्यवसायिक एवं व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन एवं सर्वोत्तम विकास में सहायक होते है।

4.6 सारांश–

निर्देशन मानवीय विकास की एक आवश्कयता है जो व्यक्ति में अपनी समस्याओं के समाधान के प्रति दृश्टिकोण एवं क्षमता विकसित करता है।

जे. एम. ब्रिवर ने माना है कि निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति में अपनी समस्याओं में स्वयं निर्देशन का विकास करती है अतः निर्देशन के संदर्भ में कहा जा सकता है कि निर्देशन व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए लाभप्रद है। निर्देशन के स्वरूप के समझने के लिए उसके सम्प्रत्यात्मक, प्रकार्यात्म्क, दार्शनिक एवं शैक्षिक स्वरूप को समझना होगा।

व्यक्ति, समाज एवं राश्ट्र की उन्नति में निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है जिसे समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक आधार पर समझा जा सकता है, निर्देशन के वर्गीकरण को अगर बात करें तो देखते है कि विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने जिनमें प्रॉक्टर, मेयर्स, पैअरसन व ब्रिवर आदि है ने अपना–अपना वर्गीकरण दिया है जिस मनोवैज्ञानिकों ने शैक्षिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत प्रकारों में विभक्त किया है अतः संक्षेप में कह सकते है कि निर्देशन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो मानव समाज की भलाई में अग्रणी सहायता प्रदान करती है।

4.7 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. निर्देशन से आप क्या समझते है? इसकी परिभाशा देते हुए इसके स्वरूप को समझाईये?
2. वर्तमान में समाज को निर्देशन की आवश्यकता है स्पश्ट कीजिये ?
3. निर्देशन के वर्गीकरण में विभिन्न मनोवैज्ञानिकी के सहयोग पर प्रकाश डालिये ?
4. निर्देशन से क्या अभिप्राय है ? शैक्षिक, व्यवसायिक एवं व्यक्तिगत निर्देशन का महत्व समझाईये ?
5. निर्देशन की प्रकृति समझाते हुए शिक्षा एंव निर्देशन के सम्बन्ध पर प्रकाश डालिये ?

4.8 संदर्भ सूची

डा. सीताराम जायसवाल – शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, अग्रवाल पब्लिकेशन्स

डा. अमरनाथ राम एवं मधु अस्थाना – निर्देशन एवं परामर्शन मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली

डा. आर. ए. शर्मा – फन्डामेन्टलस आफ गाईडैन्स एण्ड काउन्सलिंग आर० लालबुक डिपो, मेरठ।

डा. एस. सी. ओवराय– ”शैक्षिक तथा व्यवसयिक निर्देशन एवं परामर्श इण्टरनेशनल पब्लिसिंग हाउस मेरठ।

ईकाई–5 : माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 शैक्षिक निर्देशन

5.3 शैक्षिक निर्देशन का अर्थ एवं परिभाशायें

5.3.1 शैक्षिक निर्देशन की विशेशतायें

5.4 शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता

5.5 माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन

5.6 व्यवसायिक निर्देशन

5.7 व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ एवं परिभाशायें

5.7.1 व्यवसायिक निर्देशन की विशेशतायें

5.8 व्यवसायिक निर्देशन के उद्देश्य

5.9 व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता

5.10 माध्यमिक एव उच्च माध्यमिक स्कूल में व्यवसायिक निर्देशन

5.11 सारांश

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.13 संदर्भ सूची

5.0 उद्देश्य (Aims):-

प्रस्तुत इकाई को पढने के पश्चात् आप–

1. शैक्षिक निर्देशन उसकी परिभाशाओं एवं विशेशताओं का ज्ञान प्राप्त करेंगें।
2. शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता समझ पायेंगे।
3. माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के कार्यो को जान पायेंगे।

4. व्यवसायिक निर्देशन का अर्थ, परिभाशायें विशेशतायें व उद्देश्यों को जान पायेगें।
5. व्यवसायिक निर्देश की आवश्यकता क्यो है समझ पायेगें।
6. उच्च माध्यमिक व माध्यमिक स्तर पर व्यवसायिक निर्देशन के महत्व को जान पायेगें।

5.1 प्रस्तावना

शैक्षिक निर्देशन मानव विकास का महत्वपूर्ण स्तम्भ है विघाथिर्यों एवं व्यक्तियों के विभिन्न गुणों एवं विकास के अवसरों को पहचानने एवं स्वंय के विकास में शैक्षिक निर्देशन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, मानव विकास के विभिन्न चरणों में हमें शिक्षा के द्वारा भाशा शैली सभ्यता व व्यवहार के विभिन्न मापदण्डों का निर्देशन शैक्षिक निर्देशन द्वारा प्राप्त होता है, शैक्षिक निर्देशन मात्र शिक्षा तक सीमित नही होता वरन् व्यवसायिक एवं व्यक्तिगत निर्देशन को भी प्रभावित करता है।

व्यक्ति की रूचि, कार्यक्षमता के अनुसार व्यवसाय को चुनने के लिए अभिप्रेरित करता है अथवा व्यक्ति की कार्यक्षमता एवं रूचि के अनुसार व्यवसाय के चुनाव में मदद करना, विभिन्न व्यवसायों की जानकारी देना तथा व्यवसाय में बेहतर सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता प्रदान करने में निर्देशन की अहम भूमिका होती है निर्देशन की विभिन्न भूमिकाओं को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम शैक्षिक व व्यवसायिक निर्देशन पर चर्चा करें।

5.2 शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidence)

शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध उन सब समस्याओं से होता है जिसका अनुभव विद्यार्थी शैक्षिक परिवेश में करते है, निर्देशन उन तमाम समस्याओं को दूर करने में व्यक्ति अथवा विद्याथियों की समझ विकसित करने में सहायक होता है ताकि व्यक्ति अथवा विद्यार्थियों का सर्वागीण विकास हो सके और वो अपने जीवन के विभिन्न पहलूओं में बेहतर समायोजन के साथ जीवन व्यतीत कर सके, शैक्षिक निर्देशन को समझने के लिए उसकी परिभाशा एवं प्रकृति पर ध्यान केन्द्रित करना होगा।

5.3 शैक्षिक निर्देशन की परिभाषा (Definition of Educational Guidence)

i. **आर्थर जे. जोन्स (Arthur J. Jones):-** “ शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध छात्रों को प्रदान की जाने वाली उस सहायता से है, जो उन्हें विद्यालयों पाठ्यक्रमों एवं शिक्षालय के जीवन से सम्बद्ध चुनावों एवं समायोजनों के लिए अपेक्षित है”

Educational Guidance is concerned with assistance given to pupils in their choice and adjustment with retation to scholl, curriculum, coruses and school life. Authur J. Jones (1945)

ii. **जी. ई. मेयर्स (G.E. Meyers):-** "शैक्षिक निर्देशन छात्र के विकास या शिक्षा के हेतु अनुकूल परिस्थितयाँ उत्पन्न करने के लिए छात्र के विभिन्न गुणों एवं विकास के अवसरों के विभिन्न समूहों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने वाला प्रक्रम है"

Educational guidance is the process concernecl with bringing about berween in indiuidual pupil with his distinction characteristics on the one hand and differing group on the other, a favourable setting for the indinidual's development on education." G.E. Meuers

iii. **ब्रीवर– के अनुसारः–** "शैक्षिक निर्देशन व्यक्ति की बुद्विके लिए प्रदान की जाने वाली सहायता के लिए चेतना वश किया गया प्रयास है।"

Education guidance may be defined as the conscious effort to assist in the intellectual grouth of an indinidual." Brewer

iv. **रूथ स्ट्रैंगः–** ने शैक्षिक निर्देशन की परिभाशा देते हुए कहा है– "शैक्षिक निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति को उचित कार्यक्रमों के वरण एवं उसकी प्रगति करने में सहायता देना है,"

"Education guidance is intended to aid the indinidual is choosing making progress in it." Ruth strong

v. **हैमरिन और एरिक्सनः–** निर्देशन व्यक्तिगत विद्यार्थियों को योग्यताओं, रूचियाँ, प्रश्ठभूमि और आवश्यकताओं को ज्ञात करने की विधियाँ प्रस्तुत करता है।

" It offers methods diagnosing the abilities, interest, back ground and needs of individual students," "Hamrin and Erickson"

vi. **कार्टर गुडः–** ने शैक्षिक निर्देशन की परिभाशा इस प्रकार दी है, "शैक्षिक निर्देशन सिद्धांन रूप से स्कूल, कोर्स, पाठ्यक्रम एवं स्कूली जीवन से सम्बन्धित विशयों से जुड़ा हुआ है, न कि व्यवसाय, सामाजिक या व्यक्गित विशयों से।"

"education guidance is concerned principally with matters relating to schools, courses, curriculums & school life, rater than vocational, social or personal matters." "Cartergood"

उपरोक्त परिभाशाओं से स्पश्ट है कि शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थियों को प्रदान की जाने वाली ऐसी प्रक्रिया है जो छात्रों के अर्न्तनिहित गुणों को उभारने उनके विकास के लिए प्राप्त अवसरों में समन्वय स्थापित करने, उचित कार्यक्रमों का चयन एवं उनकी प्रगति में सहायता देना है ताकि वो शैक्षिक विकास में सहायक तथा समाज के लिए उपयोगी बन सके।

5.3.1 **शैक्षिक निर्देशक की विशेषताये (Charaterstics of Guidance):-** शैक्षिक निर्देशक की परिभाशाओं के विश्लेशण से शैक्षिक निर्देशक की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्न विशेशताये दी गई हैं।

(1) शैक्षिक निर्देशक एक व्यापक प्रक्रिया है।

(2) शैक्षिक निर्देशक को विभिन्न प्रकार की शैक्षिक समस्याओं पर विचार किया जाता है जैसे–अध्ययन कैसे किया जाय। स्कूल में नियमित उपस्थिति का होना, दिये गये कार्यो को करना, बोलना विभिन्न प्रकार का समोयोजन करना सीखना तथा निर्णय लेने की क्षमता आदि,

(3) विद्यार्थियों की प्रगति में बाधक बन रहे तत्वों का विश्लेशण कर शैक्षिक निर्देशक इन्हें सहायता देने की प्रक्रिया है।

(4) विभिन्न संस्थाओं में प्रवेश के समय आने वाली समायोजन सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करने की एक प्रक्रिया ही शैक्षिक निर्देशक है।

(5) शैक्षिक निर्देशक विद्यार्थियों की रूचि एवं क्षमतानुसार पाठ्यक्रमों एवं विषयों के चयन में, एवं विभिन्न विशयों के समायोजन में सहायता पहुँचाने की प्रक्रिया है।

5.4 शैक्षिक निर्देशक की आवश्यकता (Needs of Educational Guidance)

मनुश्य के विकास में जैविक व समाजिक दोनो प्रक्रिया का योग होता है सामाजिक विकास की प्रक्रिया के लिए उसे विभिन्न प्रकार के निर्देशन की आवश्यकता होती है, शैक्षिक निर्देशन उनमें एक महत्वपूर्ण विधि है जिसके द्वारा समाज में आ रहे परिवर्तनों परम्पराओं, मूल्यों तथा आवश्यकताओं के अनुसार विद्यार्थियों को निर्देशन किया जा सकता है

आधुनिक युग में इस बात पर बल दिया जा रहा है कि शिक्षा विद्यार्थियों की रूचि क्षमता तथा अभिरूचि के अनुसार या दी जाय, लेकिन व्यावहारिक तौर में अगर हम देखे तो इस प्रकार की शिक्षा देने में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है अतः ऐसी स्थिति में शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता होती है शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता विभिन्न कारकों द्वारा होती है।

(1) शिक्षा में उपस्थिति बरकरार रखने के लिए:– हमारे देश में बच्चे स्कूलों में प्रवेश तो लेते है परन्तु कुछ समय पश्चात अपनी आर्थिक कठिनाइयों एवं घरेलू कार्यो के लिए माता–पिता उन्हें स्कूलों से हटा देते है ऐसी स्थिति में उन्हें शैक्षिक निर्देशक की आवश्यकता होती है ताकि स्कूलों में विद्यार्थियों की उपस्थिति बरकरार रहे।

(2) अनावरोधन के लिए:– भारत में स्कूलों में अवरोधन (stagnation) की समस्या गम्भीर है विद्यार्थी एक ही कक्षा में कई वर्शो तक रह जाते है या विद्यार्थियों द्वारा एक ही स्तर पर आवश्यकता से अधिक समया लगा देना। इसके कारण कई है–माता पिता का अशिक्षित होना, कमजोर आर्थिक स्थिति, घर का कलह पूर्ण वातावरण, विघालय का अनुकूल वातावरण न होना आदि। वैसे भारतीय संविधान में 6 से 14 वर्श के बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था है तथा छात्राओं के वर्श लिए 19 वर्श या कक्षा 12 तक मुफ्त शिक्षा देने का प्रावधान है लेकिन फिर भी सभी छात्र–छात्राओं में अवरोधन के लक्ष्य पूरा नहीं किया जा रहा है अतः अवरोधन के कारणों को जानकर, विश्लेशण कर तथा उपचार के लिए शैक्षिक निर्देशक की सेवाओं का योगदान लिये जाने की आवश्यकता होती है

(3) पाठ्क्रम के चयन के लिए (For appropriate selection of subject):– प्रत्येक व्यक्ति अथवा विद्यार्थी बौद्धिक स्तर, रूचियों एवं अभिरूचियों (Aptitude) में समान नहीं होता है अगर पाठयक्रम तथा विशयों का चयन विघार्थी की रूचि एवं क्षमतानुसार नहीं होता है तो वह उतनी सफलता प्राप्त नही कर योग्यता जितनी की कर सकता है।

कई बार विद्यार्थियों को यह भी ज्ञात नहीं होता है कि वह किन विशयों का चयन करें या उनकी रूचि किन विशयों का चयन में है ऐसी परिस्थिति में शैक्षिक निर्देशन अंधेरे में दीपक जलाने का कार्य करता है, विशयों के चयन सम्बन्धी निर्देशन से बहुत सी प्रतिभायें प्राप्त होती है अतः यहां निर्देशन की परम आवश्यकता होती है

(4) स्कूल में बेहतर समायोजन के लिए (Better Adjiustment in School):– समायोजन की समस्या एक गभीर समस्या है जब बच्चा स्कूलों में प्रवेश लेता है तो उसे समायोजन की समस्या का सामना करना पड़ता है ग्रामीण इलाके के छात्र के लिए शहरी स्कूलों में प्रवेश पर समायोजन की समस्या आती है इसी प्रकार हिन्दी माध्यम से पढ़े बच्चे के लिए अंग्रेजी माध्यम में तथा अंग्रेजी मध्यम के बच्चे के लिए हिन्दी माध्यम में आने पर समायोजन की समस्या आदि का सामना करना पड़ता है इसी प्रकार व्यक्तिगत, संवेगात्मक व सामाजिक समस्याओं का सामना भी विद्यार्थियों के सम्मुख आती है।

इन समस्याओं के जानना, उनका विश्लेशण करना तथा इन समस्याओं के समाधान के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है।

(5) भावी शैक्षिक जानकारियों के लिए (For Information):– शिक्षा के एक स्तर से दूसरे स्तर पर जाने पर विद्यार्थियों को उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है आधुनिक समय में माता–पिता भी इस संदर्भ में जागरूक हो रहे हैं वो भी चाहते हैं कि उनके बच्चों को उचित मार्गदर्शक मिले ताकि वो भावी शिक्षा में प्रवेश के लिए उचित तैयारी कर सके यह स्थिति मुख्यतः हाईस्कूल तथा इण्टरमीडियेट के पश्चात आती है जहां विद्यार्थी इस द्वन्द में रहते है कि वो अगामी कक्षा में प्रवेश लें अथवा व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त करे ऐसी अनिर्णयात्मक स्थिति में उन्हें निर्देशन की आवश्यकता होती है।

(6) विभिन्न योजनाओं की जानकारी देने के लिए:– विद्यार्थियों के उज्जवल भविश्य के लिए विभिन्न शिक्षण एवं प्रशिक्षण की योजनायें लगातार बनती हैं–यदि योजनाओं का प्रसार–प्रचार न हो तो विद्यार्थियों को इसका लाभ नहीं मिल पायेगा। भारत जैसे देश में कई बार विद्यार्थियों के विभिन्न शैक्षिक एवं व्यवसायिक कार्यक्रमों की जानकारी नहीं होती है जिस कारण वो परम्परागत शिक्षा ही प्राप्त करते है जिससे बेरोजगारी की समस्या भी बढ़ती जाती है अतः शैक्षिक निर्देशन के द्वारा इन अवसरों की जानकारी देना एक बेहतर समाज के लिए आवश्यक है।

(7) बाल अपराधियों की संस्था के कारण:– आज समाज में बाल अपराधियों की संख्या बढ़ रही है वो चोरी करना, हत्या लूट व तस्करी आदि मामलों में लिप्त पाये जा रहे हैं इस अपराधियों का जिम्मेदार समाज ही है जो उन्हे उचित समय पर निर्देशित न कर सका अतः बाल अपराध को रोकने के लिए तथा उन्हें शिक्षित करने व रोजगार दिलवाने के लिए भी शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता होती है।

(8) शिक्षण व्यवस्था एवं शिक्षा विधि में परिवर्तन के लिए:– शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान के प्रसार के साथ ही साथ बहुत परिवर्तन हो रहे शिक्षण संस्थाओं में संगठन प्रशासन की दृश्टि से परिवर्तन हो रहे है साथ ही शिक्षण विधि को बाल केन्द्रित (Child Centred) किया जा रहा है, ताकि व्यक्तिगत विभिन्नता को जानकर उसका विश्लेशण कर शैक्षिक मार्गदर्शन दिया जा सके।

5.5 माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन (Education at guidance at Secondary and higher Secondary Level):– निर्देशन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो सार्वभौमिक सर्वकालिक, एवं विविधपक्षीय है विभिन्न अवस्थाओं में

हमेशा इसका महत्व बना रहता है। शैक्षिक क्षेत्र में इसकी आवश्यकता और भी अधिक है क्यों छात्र जीवन से ही व्यक्ति अपने जीवन की रूपरेखा तैयार करता है विद्यार्थियों की समुचित प्रगति के लिए विघालय के विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक निर्देशन दिया जाता है

मध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर शिक्षा का वह स्तर है जहाँ विधार्थी किशोरावस्था का पदापर्ण करता है या किशोरवय होता है। इस स्तर पर बच्चा प्राईमरी स्तर से निकलकर माध्यमिक स्तर में प्रवेश पाता है इस आयु में बच्चों की मित्रता बढ़ती है, सोचने विचारने की शक्ति विकसित होती है नये विशयो से उनका सम्बन्ध बढ़ने लगता है अध्यापको के प्रति दृश्टिकोण (Attitudes) बनने लगते हैं नई रूचियाँ विकसित होने लगती है कई बार लगाव एवं अलगाव (likes and dislikes) भी दिखाई देता है, बुद्धि एवं योग्यताओं का विकास संभव होने लगता है इन सभी कारणों से व्यक्ति के व्यक्तित्व में सथायित्व की शुरूवात होने लगती है इन सभी कारणों के प्रभाव से विधार्थी अपने आस–पास के वातावरण से विशेश सम्बन्ध (unique relationship) स्थापित करता है अधिकांशतः देखा गया है कि यदि प्राईमरी स्तर पर ठीक से शैक्षिक निर्देशन प्राप्त नहीं हुआ तो माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर निर्देशन कठिन हो जाता है इसलिए शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर सुसंगठित निर्देशन कार्यक्रम का होना अति आवश्यक है। माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के कार्य निम्न है।

(1) विद्यार्थियों को शैक्षिक उद्देश्यों की तरफ प्रेरित करने में सहायक होनाः– शिक्षा का उद्देश्य ''बेहत्तर एवं कुशल'' जीवन है विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वह स्वंय को अपनी पढ़ाई के अनुसार समायोजित कर सकें। माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थियों को यह समझाने में सहायक होता है कि उनका क्षमता एवं रूचि के अनुसार किस क्षेत्र में जाना चाहिए क्योंकि इस स्तर के पश्चात ही विद्यार्थी विभिन्न व्यवसायिक पाठ्यक्रमों की ओर उन्मुख होते है इसलिए इस स्तर पर शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थियों को शैक्षिक उद्देश्यों की तरफ प्रेरित करने में सहायक होता है।

(2) पाठ्यक्रम के चयन में मदद करनाः– माध्यमिक स्तर पर यह समस्या आती है कि विभिन्न पाठ्यक्रम जैसे कला, वाणिज्य, विज्ञान, आदि में से छात्र–छात्राये किन विकल्पों का चयन करें, अधिकत्तर स्कूलों में देखा जाता है छात्र एक विकल्प लेने के कुछ समय पश्चात दूसरा विकल्प चुनते है विशयो के चयन के सन्दर्भ में उनमें असमंजस बना रहता है।

शैक्षिक निर्देशन ऐसे विद्यार्थियों के लिए मुख्यता दो बातो का ध्यान रखता है।

a) विद्यार्थी ऐसे व्यवसाय का चुनाव करें जो उनकी रूचि के अनुरूप हो

b) कालेज में प्रवेश के लिए, भावी अध्ययन के लिए तथा व्यवसाय के लिए उसे योग्यता प्रदान करें।

विद्यार्थियों की शैक्षिक क्षमताओं के संदर्भ में माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक कार्य है क्यों कि इन सूचनाओं के अथवा विभिन्न पाठ्यक्रमों के चयन के विभिन्न पहलूओं से अनिवार्य रूप से अवगत कराना चाहिए जैसे–

a) विद्यार्थियों को उच्च माध्यमिक विद्यालायों के पाठ्यक्रमों की प्रकृति एवं उद्देश्य से अवगत कराना चाहिए।

b) पाठ्यक्रमों के व्यवसायिक महत्व को समझाना

c) उन्हें (विद्यार्थियो) को अपनी योग्यताओं, रूचियों अभिरूचियों (Aptitude) तथा कौशलो (skills) का मूल्याकंन करने में सहायता प्रदान करना।

d) विद्यार्थियों को उन तमाम विद्यालयों की सूचना देना जो विशिश्ठ प्रकार के पाठ्यक्रम चलाने हो ताकि अगर विद्यार्थी की रूचि उन पाठ्यक्रमों में हो तो उसे ज्वाईन कर सके।

e) उच्च माध्यमिक शिक्षा के पश्चात उन्हें विश्वविद्यालयी शिक्षा तकनीकी शिक्षा (इंजीनियंरिग, पौलीटैक्नीक आदि) तथा अन्य व्यवसायों की सूचना प्रदान करना आदि।

(3) विद्यार्थियों में अध्ययन की उत्तम आदतो का विकास करना तथा विषयगत कठिनाईयों को दूर करते हुए शैक्षिक प्रगति में योगयदान देना:– शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थियों में अध्ययन की अच्छी आदतों का विकास करता है। कई बार छात्रों को कुछ विशयों में कठिनाई उत्पन्न होने पर अरूचि होने लगती है और वो पढ़ाई से दूर रहने की कोशिश करने लगते है ऐसी स्थिति में निर्देशन उनकी विशयगत कठिनाईयों को दूर कर शैक्षिक प्रगति में सहयोग करते है आजकल विद्यालयों में विद्यार्थियों की सभी तरह (व्यक्तिगत, सांवेगिक, शैक्षिक आदि) समस्याओं को दूर करने के लिए मनोवैज्ञानिकों एवं परामर्शदाओं को भी नियुक्ति की जाती है ताकि वो शैक्षिक प्रगति में उत्पन्न अवरोध को दूर करने में सहयोग कर सके।

(4) समुचित अध्ययन के लिए विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करना:– विद्यार्थियों के समुचित अध्ययन के लिए अभिप्रेरणा का विकास आवश्यक है अध्ययन में बच्चों की रूचि कैसे विकसित हो इसके लिए अभिप्रेरणा (motivation) की विधियों का विकास स्वंय

स्कूलो को करना चाहिए शैक्षिक निर्देशन मात्र विशयगत समस्याओं का समाधान नहीं करता वरन् अध्ययन के लिए छात्र–छात्राओं को प्रेरित भी करता है इस स्तर पर छात्र–छात्राओं की रूचियों एवं कार्य करने के ढ़ग में परिपक्वता भी दृश्टिगोचर होती है।

वैसे तो सभी शैक्षिक क्रियायें, निर्देशन क्रियाओं के अन्तर्गत आती है, परन्तु कुछ अन्य क्रियाओं के निर्देशन के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए।

a) संचित अभिलेख (Commulative Record) अवश्य रखा जाना चाहिए।

b) छात्रों की रूचियों का क्रमबद्ध विकास।

c) विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का क्रमबद्ध विकास।

d) विद्यार्थी में उपयुक्त व्यवसायिक प्रेरको (motivesd) का क्रमबद्ध विकास।

e) विशिश्ट समस्यात्मक व्यवहार एवं पिछड़े विद्यार्थियोंको उपचार एवं परामर्श की सुविधा प्रदान करना आदि।

5.6 व्यवसायिक निर्देशन (Vocational Guidance)

आधुनिक युग विज्ञान व तकनीकी का युग है विज्ञान के नये आविश्कारों ने विविध रोजगार के साधनों को विकसित किया है पहले जहाँ लोग परम्परागत व्यवसाय चुनना पसन्द करते थे क्यों कि व्यवसाय कम व जीवन सरल था परन्तु इसे भौतिकता वाद की देने ही कहेंगे की आज प्रत्येक मानव जीवन भी सुख समृद्धि के साथ जीना चाहता है सो विभिन्न व्यवसायों की ओर अग्रसर होता है, इस व्यवसायों में कौन सा व्यवसाय व्यक्ति विशेश के लिए उपयुक्त रहेगा यह एक समस्या उत्पन्न करता है।

निर्देशन का प्रारम्भ ''व्यवसायिक निर्देशन से ही हुआ है सर्वप्रथम फ्रैंक पारसन्स'' ने इस शब्द का प्रयोग किया तत्पश्चात अन्य मनोवैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र पर प्रकाश डाला।

5.7 व्यवसायिक निर्देशन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and definition of Vocational Guidance)

किसी व्यक्ति विशेश के लिए उचित कार्य का चुनाव ही व्यवसायिक निर्देशन है''

व्यावहारिक रूप से यह कहना कठिन होता है कि किसी व्यकित विशेश की योग्यता व क्षमतानुसार कार्य मिले क्यों कि भारत जैसे विकासशील देश में व्यक्तियों के अनुपात में व्यवसाय का अनुपात होना मुश्किल है। फिर भी व्यवसायिक निर्देशन एक महत्वपूर्ण विशय है जिस पर हम चर्चा करेंगे।

नेशनल वेकिशनल गाईडैन्स एसोशियेसन (अमेरिका) द्वारा प्रस्तुत की गयी परिभाशा (1937) के अनुसार''व्यावसायिक निर्देशन एक व्यवसाय को चुनने, इसके लिए तैयारी करने, प्रविश्ट होने तथा इसमें प्रगति करने हेतु एक व्यक्ति को दी जाने वाली सहायता की प्रक्रिया है।''

(Vocational guidance is a process of assisting the individual to choose an occupation, prepare for it, enter upon and progess in it.)

National Vocational Guidance Association, USA, 1937.

अन्तर्राश्ट्रीय श्रम सम्मेलन (1949) के अनुसार, व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति की विशेशताओं और व्यावसाहयक अवसरों के साथ उसके सम्बन्ध को समुचित रूप में ध्यान रखते हुए व्यावसायिक चयन व प्रगति सम्बन्धी व्यक्ति की समस्याओं का समाधन करने हेतु दी जाने वाली सहायता है।

(Vocational guidance is "assistance given to an individual in solving problems related to occupational choice and progress with due regard to the indidvidual's characteristics and their relation to occupational opportunity".)

International Labour Conference (1949)

डोनाल्ड सुपर–निर्देशन के क्षेत्र में कार्य करने वाले एक विद्वान, सुपर ने व्यावसायिक निर्देशन की परिभाशा इन शब्दों में की है, ''किसी व्यक्ति को अपना (स्वयं का) एवं व्यवसाय जगत के बीच अपनी भूमिका एव संपर्याप्त (एडीक्वेट) चित्र बनाने एवं उसे स्वीकार करने, वास्तविक स्थिति के बीच इस अवधारणा की जाँच करने एवं उसे स्वयं के सन्तोश तथा समाज के लाभ हेतु वास्तविकता में बदलने की सहायता प्रदान करने के प्रक्रम को व्यावसायिक निर्देशन कहते हैं।''

Donald Super:-"Vocational guidance is the process of helping a person to develop and accept an intergrated and adequate picture of his self and of his role in the world of work, to test this concept agains reality with satisfaction to himself and benefit to society."

उपरोक्त परिभाशाओ से स्पश्ट है कि व्यक्तायिक निर्देशन का कार्य व्यक्तियों को कैरियर बनाने, भविश्य की योजना बनाने, व्यवसायिक क्षेत्र का चुनाव करने तथा सन्तोशजनक व्यवसायिक समायोजन स्थापित करने के लिए सहायता देना है।

5.7.1 व्यवसायिक निर्देशन की विशेषता (characteristics of vocational guidance):-

5.7.1 व्यवसायिक निर्देशन की विशेषता (characteristics of vocational guidance):- विभिन्न परिभाशाओ के विश्लेशण से व्यवसायिक निर्देशन की निम्न विर्शेशताये परिलक्षित होती है

1. व्यवसायिक निर्देशन का प्रमुख कार्य व्यक्ति की रूचियों, योग्यताओं एवं क्षमता के अनुसार व्यवसाय चुनने में सहायता करना है।,

1 व्यवयायिक निर्देशन व्यवसाय में प्रवेश के साथ उसकी प्रगति में भी सहायता करता है।

2 व्यवसायिक निर्देशन एक व्यापक प्रक्रिया है।

3 प्रत्येक व्यवसाय के लिए भिन्न योग्यता एवं क्षमता की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति व्यवसायिक निर्देशन द्वारा ही की जा सकती है।

4 व्यवसायिक निर्देशन वह प्रक्रिया है जो व्यक्ति की संभावनाओ को अनुकूलतम स्तर तक विकसित करने में सहायता देती है।

5 व्यवसायिक निर्देशन व्यक्ति में वह दृश्टिकोण विकसित करता है कि व्यक्ति सफल व्यवसायिक समायोजन के लिए स्वंय की रूचियाँ , योग्यताओ व अभिरूचि का मूल्यांकन कर सके।

6 व्यवसायिक निर्देशन व्यक्ति को अपने लक्ष्य प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है और लक्ष्य प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति को सन्तोश प्रदान करती है।

7 व्यवसायिक निर्देशन के तहत उन व्यक्तियों के संदर्भ में भी सूचना एकत्र की जाती है जो विभिन्न व्यवसायो मे कार्यरत है।

5.8 व्यवसायिक निर्देशन के उद्देश्य (aims of vocational guidance)

व्यावसायिक निर्देशन के भी कुछ लक्ष्य एवं उद्देश्य होते हैं। इनके बिना यह प्रक्रिया दिशा विहीन होगी। ये लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

2.1 स्कूलों में विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायों से परिचित कराकर उनका व्यक्तिगत एवं समाजिक महत्व बताना।

2.2 विद्यार्थियों को व्यवसायिक से परिचित कराकर उनमें एक व्यवसाय के प्रति जागरूकता एवं आदर्श भावना पैदा करना।

2.3 विद्यार्थियों में व्यवसाओं सम्बन्धी सूचनाओं का विश्लेशण करने की क्षमता एवं योग्यता का विकास करना।

2.4 विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थाओं से विद्यार्थियों को परिचित कराना।

2.5 निर्धन विद्यार्थियों को व्यावसायिक सूचनाएँ प्रदान करके उनकी आवश्यकताओं को पूरा करना।

2.6 विद्यार्थियों को इस बात से परिचित कराना कि किस व्यवसाय के लिये किस प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता होती है तथा किस प्रकार के व्यक्ति के लिये कौन सा व्यवसाय उपयुक्त रहता है।

2.7 व्यवसाय को चुनने के पश्चात् व्यक्ति को उचित परिस्थितियाँ विकसित करने में सहायता प्रदान करना।

2.8 विभिन्न व्यवसायों के निरीक्षण के लिये सुविधा प्रदान करनी।

2.9 व्यक्तियों में यह विश्वास पैदा करना कि ईमानदारी से किया गया कार्य सदा उत्तम होता है।

2.10 विद्यार्थियों में कार्य या व्यवसाय के प्रति एक आदर्श भावना का विकास करना।

2.11 विद्यार्थियों में रूचियों को व्यापक बनाने के लिये विद्यार्थियों को विभिन्न अवसर प्रदान करने।

2.12 विद्यार्थियों को बताना कि व्यवसाय द्वारा वे किस प्रकार समाज सेवा कर सकते हैं तथा व्यक्तिगत संतुश्टि अर्जित कर सकते हैं।

5.9 व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता (Need for Vocational Guidance)

आधुनिक युग में व्यवसाय का चुनाव एक जटिल प्रक्रिया है विज्ञान, तकनीको व औ़द्योगीकरण के विकास ने व्यवसायो को व्यापक बना दिया है या यों कहे कि विस्तार ला दिया है। ऐसी स्थिति मे व्यक्ति के सम्मुख असमंजस रहती हे कि वह किस प्रकार के व्यवसाय का चयन करें या उसकी रूचि, योग्यता एवं क्षमता के अनुरूप कौन सा व्यवसाय ठीक रहेगा।

इस द्वन्दात्मक एवं असंमजस की स्थिति से निपटने के लिए व्यक्ति को व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता होती है मुख्यतः व्यवसायिक निर्देशन के कारक निम्न है–

1. **वैयक्तिक भिन्नता (Individual Difference):-** सभी मनौवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक इस बात पर सहमत है कि कोई भी दो व्यक्ति समान नही होते है। प्रत्येक व्यक्ति की रूचि,

योग्यता, क्षमता एवं दृश्टिकोणों मे अन्तर पाया जाता हैं। इसी भिन्नता के कारण व्यक्तियो को व्यवसायिक चुनाव मे भिन्नता दिखाई देती है। व्यवसायिक निर्देशन कार्यक्रम लगभग समान विशेशताओ एवं रूचियो वाले व्यक्तियों को एक व्यवसाय की तरफ निर्देशित करने मे सहायता प्रदान करता है और इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति की रूचि के आधार पर व्यवसायिक जानकारी उपलब्ध कराने मे मदद करता है।

2. **व्यवसायो में विभिन्नता (Variety of Vocations):-** वर्तमान समय में व्यवसायिक क्षेत्रो में काफी प्रगति हुई है विभिन्न प्रकार के व्यवसायों के चलते व्यक्ति के लिए उनमें चुनाव करना मुश्किल है सो व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता विभिन्न व्यवसायिक क्षेत्रो की जानकारी देने व उनमें व्यक्ति की योग्यतानुसार चुनाव करने में सहायता करना है।

3. **व्यवसायिक प्रगति के लिए (For Vocational Guidance):-** किसी भी व्यक्ति के लिए व्यवसाय में प्रवेश पाना ही महत्वपूर्ण नही है वरन् उस व्यवसाय में निरन्तर प्रगति ही उसे सफलतम व्यवसायिक की श्रेणी में रखते है जो व्यक्ति को संतोश प्रदान करती है व्यवसायिक प्रगति के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति को विभिन्न शिक्षण प्रशिक्षण केन्द्रो की जानकारी हो यह उसे व्यवसायिक निर्देशन के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं।

4. **आर्थिक दृष्टिकोण से व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता**:– अगर व्यक्ति बिना सोचे समझे व्यवसाय का चयन करता है और उसे आर्थिक हानि का सामना करता पड़ता है ऐसी स्थिति में व्यक्ति में व्यवसाय के सम्बन्ध में निराशा व अरूचि होने लगती है इन दोनों को (व्यवसाय चयन व आर्थिक हानि) नियन्त्रित करने के लिए व्यक्ति को व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता होती है ताकि व्यवासायिक दक्षता भी मिल सके व आर्थिक लाभ भी प्राप्त हो सके।

5 **स्वास्थ्य की दृष्टि से** :– यदि व्यवसाय में रहते हुए स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है और व्यक्ति उस व्यवसाय मैं खुद को असहज महसूस कर रहा है इसका अर्थ वह व्यवसाय व्यक्ति की रूचि एवं क्षमता के अनुसार नही है अतः स्वास्थ्य की दृश्टि से भी व्यवसायिक निर्देशन आवश्यक है।

6. **मानवीय शक्ति का सही प्रयोग (Proper Utilization of Human Potentialities):-** व्यवसायिक निर्देशन द्वारा व्यक्ति में प्राप्त क्षमताओं एवं शक्तियों को ज्ञात किया जाना आवश्यक है ताकि उनकी क्षमताओं का सही उपयोग हो और वो समाज के लिए उपयोग सिद्वहो।

समाज में व्याप्त भश्ट्राचार, सिफारिश एवं रिश्वत से कई बार अकुशल व्यक्ति अग्रणी पंक्ति में और कुशल व्यक्ति पीछे रह जाते हैं जिससे समाज भी असन्तुलित होता है अतः अनिवार्य है कि व्यवसायिक निर्देशन दिया जाय।

7. पारिवारिक व व्यवसायिक जीवन में तालमेल बनाये रखने के लिए व्यक्ति के व्यवसायिक जीवन का प्रभाव पारिवारिक जीवन पर पडता है और पारिवारिक जीवन का प्रभाव व्यवसायिक जीवन पर पड़ता है अतः दोनो में सामजस्य बनाये रखने के लिए भी निर्देशन आवश्यक है।

उपरोक्त कारको से स्पश्ट है कि वर्तमान समय के वैज्ञानिक एवं औद्योगिक युग मे व्यवसायिक निर्देशन एक आवश्यकता है।

5.10 माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर व्यवसायिक निर्देशन के कार्य (Function of Vocational guidance at secondary and senior Secondary school)

व्यवसायिक निर्देशन की दृश्टि से माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालय महत्वपूर्ण माने गये हैं क्योंकि विद्यार्थियों को इस आयु से सही निर्देशन मिलने लगें तो वो आगे चल कर सही व्यवसाय का चुनाव करते है जो उनके सर्वागीण विकास में सहायता होता है। मध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर व्यवसायिक निर्देशन के निम्न लिखित कार्य कर सकता है–

1. **विद्यार्थियों को अपनी क्षमता एवं सीमाओं को जानने में सहायता करना**– माध्यमिक स्तर में बच्चे में स्वंय के बारे में जानने की क्षमता विकसित होने लगती है यही वह उपयुक्त समय होता है जब छात्र–छात्राओं के मन में व्यवसायिक सम्प्रदायों (concept) का विकास किया जाता है व्यवसायिक निर्देशन एवं स्कूल मनोवैज्ञानिक इस संदर्भ में बच्चों की सहायता कर सकते हैं।

2. **विद्यार्थियो को विभिन्न व्यवसायों के कार्यक्षेत्र की जानकारी उपलब्ध कराना**:– बच्चो के भविश्य की विवेकपूर्ण योजना बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें विभिन्न व्यवसायों के कार्य क्षेत्रो की जानकारी उपलब्ध कराई जाय, जैसे– देश में रोजगार की स्थिति क्या है, किन–किन व्यवसायों में रोजगार कौन से साधन उपलब्ध हैं, किस व्यवसाय के लिए कितनी योगयता चाहिए आदि बातों की जानकारी व्यवसायिक निर्देशन के अन्तर्गत प्रदान की जाती है।

माध्यमिक व उच्च माध्यमिक सत्ता के बच्चों को स्कूल में समाचार पत्र एवं विज्ञापन के द्वारा नई जानकारी प्रेशित की जानी चाहिए जिससे उन्हें वास्तविकता का ज्ञान हो तथा

स्कूल छोडने पर वो अपनी वर्तमान भावी योजनाओं के साथ समायोजन कर सके इस तरह के निर्देशन से छात्रों एवं समाज दोनों को लाभ प्राप्त होता है।

3. **विद्यार्थी को सही विकल्प चुनने में मदद करनाः–** माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थि अपने भविश्य के विशय में सोचना प्रारम्भ कर देते हैं ऐसी स्थिति में विद्यार्थी को उपयुक्त परामर्श (Proper counselling) तथा व्यक्तिगत निर्देशन के द्वारा सही व्यवसाय के चयन के लिए व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता होती है इस समय कैरियर मास्टर उन्हें सही निर्णय लेने में मदद कर सकते हैं।

4. **चयनित व्यवसाय में प्रवेश (Entry) की तैयारी में सहायता प्रदान करनाः–** समय में प्रत्येक व्यवसाय में विशेशीकरण (Spacializtion) का महत्व बढता जा रहा है विभिन्न व्यवसायें में चयन से पूर्व प्रशिक्षण एवं प्रतियोगो परिक्षाओं का चलन है, कई प्रतियोगी परीक्षायें अपने छात्रों को आर्थिक सहायता भी प्रदान करती है अतः माध्यमिक व उच्च माध्यमिक छात्र–छात्राओं को प्रशिक्षण सम्बन्धी जानकारी एवं सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानो द्वारा दी जाने वालो आर्थिक सहायता के संदर्भ में जानकारी उपलब्ध कराना भी प्रमुख कार्य है।

5. **विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयी शिक्षा अपनाने अथवा व्यवसाय अपनाने की ओर प्रेरित करनाः–** व्यवसायिक निर्देशन का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि उच्च माध्यमिक स्वर पर विद्यार्थियों द्वारा स्कूल छोड़े जाने पर उन्हें उनकी मानसिक योग्यता एवं रूचि के अनुसार व्यवसाय अथवा कालेज शिक्षा के लिए प्रेरित किया जाय।

यहाँ इस बात पर चर्चा करना भी आवश्यक है कि अधिकांश छात्र मानसिक योग्यता कम होने के बाद भी कालेज में प्रवेश ले लेते है तथा बेहत्तर शैक्षणिक परिणाम न निकलने के पश्चात बेराजगारी एवं कुंठा से ग्रस्त रहते है जो श्रम व धन दोनो का अपव्यय है अतः माध्यमिक स्तर पर व्यवसायिक निर्देशन विद्यार्थियों को सही मार्गदर्शन देता है जो राश्ट्र व व्यक्ति दोनो के लिए उपयुक्त है।

अन्त में यह कहना समचिनि होगा व्यवसायिक निर्देशन माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियो की प्रतिभा का समुचित विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

5.11 सारांश

व्यक्तित्व के विकास में शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध उन सभी समस्याओं से होता है जिसका अनुभव विद्यार्थी शैक्षिक

परिवेश में करते हैं निर्देशन इन समसयाओं को दूर करने में विद्यार्थियों की मदद या सहायता करता शैक्षिक निर्देशन का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि व़िद्यार्थी की स्वंय के संदर्भ में समझ विकसित को सके वह अपनी रूचियों योग्यताओं एवं क्षमताओं को समक्ष सके जिससे भावी जीवन की रूपरेखा तैयार करने में उसे मदद मिल सके शपरन्तु इस लक्ष्य में प्रप्त करने के लिए जो व्यवसायिक निर्देशन की भी आवश्यकता होती है क्योंकि उसके लिए यह जानना आवश्यक है कि उनके जीवन के लिए कौन सी नौकरी या व्यवसाय उपयुक्त रहेगा अतः व्यवसायिक निर्देशन किसी व्यक्ति के चुनाव, तैयारी, प्रवेश व उसकी प्रगति में मदद करने की प्रक्रिया है।

वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में विशेशीकरण व व्यवसाय में अनेकरूपता (Variaty) पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है अतः दोनो क्षेत्रों में निर्देशन की आवश्यकता है, शैक्षिक निर्देशन में विद्यार्थियों की उपस्थिति बरकरार रखने के लिए, पाठ्यक्रम के चयन के लिए, भावी शैक्षिक जानकारियों के लिए, बाल अपराधियों की संख्या कम करने के लिए, शिक्षण व्यवस्था एवं शिक्षण विधी में परिर्वतन के लिए आदि अवश्यकताओं पर चर्चा की है, साथ ही इस बात पर बल दिया गया है वैयक्तिक विभिन्नता के कारण, व्यवसायिक चुनाव, व्यवसायिक प्रगति तथा व्यवसाय में अनेकरूपता के कारण व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता है।

स्कूल के विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक निर्देशन व व्यवसायिक निर्देशन बिना विद्यालयों के सहयोग से असम्भव है, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को शिक्षा की ओर प्रेरित करने, पाठ्यक्रम में मदद देने, विभिन्न क्षेत्रो के अध्ययन में, अच्छी आदतों को विकसित करने में, व्यवसायो के संदर्भ में उचित जानकारी देने, चुने हुए व्यवसाय की तैयारी करने में सहायता आदि कार्य विद्यालायों के सहयोग से ही सम्भव है।

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न–1– शैक्षिक निर्देशन किसे कहते हैं? शैक्षिक निर्देशन की परिभाषा लिखते हुए उसकी विशेशताओं पर प्रकाश डालिये?

प्रश्न–2– निर्देशन समय की आवश्यकता है स्पश्ट कीजिये?

प्रश्न–3– माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक निर्देशन के कार्यो का वर्णन कीजिए?

प्रश्न–4–व्यवसायिक निर्देशन का अर्थ समझाते हुए उसके उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये?

प्रश्न–5– टिप्पणी लिखिये

(अ) व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता

(ब) माध्यमिक स्तर पर व्यवसायिक निर्देशन

5.13 संदर्भ सूची

1. डा. अमरनाथ राय एवं निर्देशन एवं परामर्श मोतीलाल एवं बनारसीदात्त दिल्ली।

डा. मधु अस्थाना

2. डा. सीताराम जायसवाल – शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।

3. डा. एस. ओवराय – शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन एवं परामर्श इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस मेरठ।

4. Prof. R.N. Sharma – Fundamentals of guidance and counseling R. Lal Book Depot Meerut. (u.p)

इकाई–6 : परामर्शन का अर्थ, स्वरुप एवं क्षेत्र विस्तार
Meaning , Nature And Scope Of Counseling

इकाई की संरचना

6.0 लक्ष्य एवं उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 परामर्शन का अर्थ

6.3 परामर्शन का स्वरूप

6.4 मनोचिकित्सा एवं परामर्शन

6.5 निर्देशन एवं परामर्शन

6.6 परामर्शन का क्षेत्र विस्तार

6.6.1 परिवार

6.6.2 शैक्षिक संस्थान

6.6.3 कार्य स्थल

6.6.4 प्राथमिक उपचार केन्द्र

6.6.5 आवासीय संरक्षण केन्द्र

6.6.6 सामुदायिक केन्द्र

6.6.7 मनोशैक्षिक निर्देशन एवं उपचार केन्द्र

6.6.8 स्वयंसेवी संस्थाएँ

6.7 सारांश

6.8 मूल्यांकन प्रश्न

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0 लक्ष्य एवं उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- परामर्शन किसे कहते हैं व इसका क्या अर्थ है इसे बता पाने में सक्षम होंगे।

- परामर्शन का स्वरूप कैसा होता है यह बता पायेंगे।
- परामर्शन किन–किन क्षेत्रों में उपयोगी है इसे भी समझ सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

मानव एक विवकेशील प्राणी है । इस विवकेशीलता के कारण वह अन्य प्राणियों से भिन्न है। मानव अपने बुद्धिबल के आधार पर अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक पक्षों के विकास के प्रति सचेत रहा है। तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह अपने पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील रहा है। वह अपनी सीमाओं से अवगत होते हुए पर्यावरण के साथ समन्वय स्थापित करके आज वह अन्य प्राणियों को पीछे छोड़ते हुए स्वयं प्रकृति का विलक्षण प्राणी बन गया है। इस प्रयास में उसको अनेक कठिनाइयों एवं समस्याओं से जूझना पड़ा है। इन कठिनाइयों पर विजय पाने के लिये वह बुजुर्गों के परामर्श पर निर्भर रहा है। इससे स्पश्ट है कि यह प्रक्रिया आदि काल से चली आ रही है। हम परामर्शन के अर्थ को निम्न प्रकार समझ सकते हैं।

6.2 परामर्श का अर्थ (Meaning of Counseling)

मनुष्य सभ्य समाज का प्राणी है । युगों से मानव स्वभाव की उन्मुखता पीड़ित व्यक्तियों की सहायता करने की दिशा में रही है। आधुनिक वैज्ञानिक विधाओं के विकास से पहले धर्मगुरू, झाड़–फूँक विशेशज्ञ, अल्प शिक्षित एवं प्रशिक्षित योग चिन्तित, भयभीत, मनोरोगग्रस्त व्यक्तियों की सहायता करते आए हैं। फ्रायड द्वारा मनोविश्लेशणात्मक सिद्धान्त और तकनीक के विकास के पश्चात इस क्षेत्र में क्रान्ति आयी। मानव व्यवहार की गहराई, इसकी मनोगत्यात्मकता तथा व्यवहार के अचेतन निर्धारकों के बारे में मानवीय बोध में वृद्धि आने के फलस्वरूप लोगों के व्यक्तित्व एवं व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु, व्यक्तित्व के विकास के लिए, जीवन में उपयुक्त लक्ष्यों के चयन और सिद्धि के लिए अन्य व्यक्तियों के माध्यम से सहायता दिया जाना एक संगठित प्रक्रिया में रूपान्तरित हो गया। बीसवीं शताब्दी में असामान्य मनोविज्ञान, मनोरोगशास्त्र , नैदानिक मनोविज्ञान, स्वास्थ्य मनोविज्ञान, मनोचिकित्सा, निर्देशन एवं परामर्शन मनोविज्ञान के रूपों में मनोविज्ञान की अनेक शाखाओं का विकास हुआ है।

कई आधुनिक मनोविज्ञान की शाखाओं को तरह परामर्शन मनोविज्ञान भी द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद परिणित हुआ' द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यु.एस. सैन्य विभाग को व्यवसायिक नियुक्ति का प्रशिक्षण की तीव्र आवश्यकता महसूस हुई 1940 से 1950 में प्रबुद्ध

प्रशिक्षुकों ने एक विशेशज्ञता का निर्माण किया जिसे परामर्शन मनोविज्ञान और डिविजन 17 कहा जो कि वर्तमान में ए.पी.ए. द्वारा गठित परामर्शन मनोविज्ञान समिति के रूप में जाना जाता है। बीसवीं शताब्दी के मध्य में कार्ल रॉजर्स के व्यक्तित्व , मनोचिकित्सा एवं परामर्शन सम्बन्धी सिद्धान्त और तकनीक के विकास के पश्चात् इस क्षेत्र में एक नई क्रान्ति आयी। अधिगम, संज्ञान एवं अनुभूति के क्षेत्र में शोध कार्यों और अस्तित्ववादी, मानवतावादी एवं दृश्य प्रपंची चिन्तन के प्रभाव में मनोचिकित्सा एवं परामर्शन की अनेक प्रविधियों और उपागमों का विकास हुआ।

परामर्शन मनोविज्ञान और मनोचिकित्सा दोनों ही क्षेत्रों का व्यक्तित्व के विभिन्न सिद्धान्तों से गहरा सम्बन्ध है। परामर्शन और मनोचिकित्सा के लक्ष्यों, प्रणालियों एवं प्रक्रियाओं में समानताएँ अधिक है, अन्तर सूक्ष्म प्रकार के हैं। दोनों ही क्षेत्र व्यावसायिक /वृत्तियात्मक (health profession) के साथ बहुत गहराई के साथ जुड़े हुए हैं। परामर्शन मनोविज्ञान का निर्देशन के मनोविज्ञान (Psychologhy of guidance) और मनोचिकित्सा (Psychotherapy) एवं नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical psychology) के साथ घनिश्ठ सम्बन्ध है। परामर्शन एक सेवा के रूप में निर्देशन से सम्बन्धित अनेक सेवाओं में से एक घटक हैं। परामर्शन सेवा व्यक्ति को अपनी विविध समस्याओं का अपने स्तर पर समाधान करने हेतु समर्थ बनाती है। परामर्शन व्यक्ति के आत्मबोध (Self-understanding), आत्म –निर्देशन (Self-actualization) में सहायक होता है। परामर्शन कार्य अनेक प्रशिक्षित, अल्प प्रशिक्षित, अप्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकार की दशाओं में अपनी वृत्ति में सहायक घटक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। व्यावसायिक रूप में संगठित परामर्शन विद्यालय, परिवार, समुदाय, उद्योग, चिकित्सालय, विशिश्ठ प्रशिक्षण केन्द्र, पुनर्वास योजना आदि अनेक परिस्थितियों में सक्रिय पाया जा सकता है। परामर्शन कार्य कर रहा व्यक्ति अनेक समस्याओं के समाधान के लिए उपचारात्मक प्रणाली अपनाता है और मनोचिकित्सक अनेक रूपों में परामर्शन कार्य सम्पन्न करता है। इसलिए अनेक व्यावसायिक वृत्ति के मनोवैज्ञानिक एवं लेखक परामर्शन और मनोचिकित्सा को समानार्थक रूप में प्रयुक्त करते हैं। परामर्शन मनोविज्ञान कई प्रकार की समस्याओं से ग्रसित व्यक्तियों को चिकित्सकीय उपचार उपलब्ध कराने में अपना ध्यान केन्द्रित करता है। यह मनोविज्ञान का एक प्रमुख विशेशता प्राप्त क्षेत्र है।

परामर्शन मनोविज्ञान समिति परामर्शन मनोविज्ञान के क्षेत्र को एक विशेशज्ञ के रूप में मानती है जो कि व्यक्ति के वैयक्तिक जीवनपर्यन्त वैयक्तिक अर्न्तवैयक्तिक कार्यप्रणाली को

उसके संवेगात्मक, सामाजिक व्यवसायिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी विकासात्मक संगठन पर केन्द्रित रहती है।

परामर्शन मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक व्यावहारिक शाखा है जो व्यक्ति के जीवन पर्यन्त वैयक्तिक व अन्तर्वैयक्तिक कार्यप्रणाली पर केन्द्रित है। परामर्शन मनोविज्ञान व्यक्ति के सामाजिक जीवन व उसके अपने पर्यावरण के साथ समायोजन की क्षमता की महत्ता पर जोर देता है।

परामर्शन मनोविज्ञान के विभिन्न पक्ष है जो कि निर्देशन सेवाओं के अंग के रूप में प्रस्तुत करने के अतिरिक्त व्यक्तित्व विकास एवं सामान्य जीवन की ऐसी समस्याओं के समाधान के रूप में कार्य करते हैं जो कि मनोरोगों की श्रेणी में नहीं आते हैं। परामर्शन के उपागम एवं प्रविधियाँ नैदानिक मनोविज्ञान व मनोचिकित्सा की प्रविधियों के समान है। परामर्शन की कुछ विशिश्ट समस्यायें भी हें । भारतवर्श में परामर्शन आन्दोलन पृथक सामाजिक सांस्कृतिक सन्दर्भ में कार्य करता है। इस क्षेत्र में भारतीय चिंतन का पृथक योगदान है।

6.3 परामर्शन का स्वरूप (Nature of Counselling)

परामर्शन की अनेक परिभाशाएँ परामर्शन के स्वरूप से सम्बन्धित विभिनन पक्षों पर बल देती हैं। आज तक परामर्शन की कोई सर्वस्वीकार्य परिभाशा नहीं दी जा सकी है जिससे यह विचार और भी अधिक मजबूत होता है कि परामर्शन एक बहुआयामी प्रक्रिया हे जिसमें अनेक उपागमों एवं प्रविधियों को प्रयुक्त करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास, समस्याओं का समाधान, व्यवहारगत/समायोजनात्मक समस्याओं के परिहार/विरोध एवं/ अथवा उपचार द्वारा व्यक्ति के जीवन को सहज, उद्देश्यपूर्ण एवं सन्तोशप्रदायी बनाने का प्रयत्न किया जाता है। व्यक्ति को प्रकार्यात्मक दृश्टि से सर्वोत्कृश्ट इकाई के रूप में विकसित होने के लिए सहयोग दिया जाता है।

परिभाषाएँ (Definitions)

Ruth Strang के अनुसार, ''परामर्शन प्रक्रिया एक संयुक्त प्रयास है। परामर्शन प्रक्रिया का सारतत्व ऐसा सम्बन्ध है जिसमें व्यक्ति, जिसका परामर्शन हो रहा है, स्वयं को पूर्णतः अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्रता का अनुभव करता है, तथा अपने लक्ष्यों, उनकी सिद्धि के बारे में स्पश्टीकरण व उनकी सिद्धि हेतु अपने सामर्थ्यों और समस्याओं के प्रकट होने पर उनके समाधान की विधियों या साधन के बारे में आत्मविश्वास अर्जित करता है''।

क्रो एवं क्रो के अनुसार, '' साक्षात्कार परामर्शन का केन्द्र बिंदु है''।

मैयर्स (1947) के अनुसर, ''वस्तुतः, परामर्शन साक्षात्कार व्यक्ति के साथ उसके शैक्षिक, व्यावसायिक, मनोरंजन सम्बन्धी या अन्य योजनाओं को प्रभावित करने वाले उसके किन्हीं व्यक्तिगत सामर्थ्यों और सीमाओं के बारे में विचार करने एवं सामर्थ्यों का विकास करने व सीमाओं को समाप्त करने की संभव विधियों की दिशा मे चिन्तन को उन्मुख करने के लिए विचार करने का अवसर प्रदान करता है।''

उपर्युक्त परिभाशाओं में परामर्शन के साक्षात्कार स्वरूप पर बल देते हुए व्यक्ति के सामर्थ्यों के विकास, आत्मविश्वास अर्जित करने और समस्याओं के समाधान की विधियों के अधिगम पर बल दिया गया है।

जबकि रॉबिन्सन (1950) समायोजनात्मक पक्ष पर बल देते हुए लिखते हैं कि ''परामर्शन का लक्ष्य व्यक्ति की समायोजनात्मक अनुभूति और न केवल तात्कालिक अपितु दीर्घकालिक परिस्थितियों में भी, उसकी समाज में सार्थकता में वृद्धि करना है।''

स्मिथ के अनुसार परामर्शन '' एक प्रक्रिया हे जिसमे ंपरामर्शदाता परामर्शी को चयन योजना से सम्बन्धित तथ्यों की व्याख्या करने या समायोजन जो उसे स्थापित करने की आवश्यकता होती है के लिए सहायता देता है।''

पैरेज (1965) तथा पेपिन्सकी एवं पेपिन्सकी (1954) इसके अन्तर्क्रियात्मक स्वरूप पर बल देते हुए देखे जा सकते हैं। पेरेज के अनुसार, ''परामर्शन एक अन्तर्क्रियात्मक प्रक्रिया है जो कि परामर्शी जिसे सहायता की आवश्यकता है और परामर्शदाता, जो कि सहायता देने के लिए शिक्षित एवं प्रशिक्षित है, को जोड़ता है।''

पेपिन्सकी एवं पेपिन्सकी के अनुसार, ''परामर्शन वह अन्तर्क्रिया है जो परामर्शी और परामर्शदाता के नाम से पुकारे जाने वाले दो व्यक्तियों के मध्य व्यावसायिक पृश्ठभूमि में घटित होता है तथा परामर्शी के व्यवहार में परिवर्तन आरम्भ करने और उसके अनुरक्षण को सहज बनाता है।

पैटर्सन (1959) की परिभाशा मनोवैज्ञानिक विधियों के उपयोग और मानसिक स्वास्थ्य के विकास पर बल देती है। पैटर्सन के अनुसार, ''परामर्शन और मनोचिकित्सा प्रक्रिया में एक या अनेक क्लायंट और चिकित्सक के मध्य अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की स्थापना होती है जिसमें चिकित्सक मानव व्यक्तित्व के बारे में व्यवस्थित ज्ञान के आधार पर क्लायंट के मानसिक स्वास्थ्य को विकसित करने हेतु मनोवैज्ञानिक विधियों की सेवा लेता है।''

गुस्टैंड (1953) की परिभाशा परामर्शन के अधिगम पक्ष की ओर विशेश रूप में ध्यान आकृश्ट करती है। गुस्टैंड के अनुसार, ''परामर्शन एक अधिगम उन्मुख, एक एवं एक के

सरल सामाजिक परिवेश में क्रियान्वित प्रक्रिया है जिसमें प्रासंगिक मनोवैज्ञानिक दक्षता और ज्ञान में निपुण परामर्शदाता परामर्शी की आवश्यकताओं और समग्र वैयक्तिक निर्देशन कार्यक्रम के सन्दर्भ में, अधिक स्पश्ट रूप में प्रत्याक्षित यथार्थपूर्णता के साथ परिभाशित लक्ष्यों के सम्बन्ध में उसे अपने अधिगम का उपयोग करने, जिससे कि व्यक्ति समाज का अधिक उत्पादक और प्रसन्न सदस्य बन सके, के लिए सहायता देने का प्रयास करता है।''

इन अनेक एवं अन्य परिभाशाओं को पीछे छोड़ते हुए कॉलिन फेल्थम (2000) परामर्शन और मनोचिकित्सा को समानार्थी रूप में स्वीकार करते हुए विस्तृत परिभाशा प्रस्तुत करते हैं लेकिन उससे पूर्णतः सन्तुश्ट न हो पाने के कारण व्याख्या के आधार रूप में उसे अंतरिम परिभाशा (tentative definition) का नाम देते हैं।

फेल्थम के अनुसार ''परामर्शन और मनोचिकित्सा, मनोदैहिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं और परिवर्तनों, जिसमें गम्भीर और दीर्घकालिक मानवीय पीड़ा, पारिस्थितिक दुविधा/असमंजस, संकट और विकासात्मक आवश्यकताएँ, और मानव सामर्थ्य की सिद्धि के लिए अभिलाशाएँ सम्मिलित हैं, के समाधान के लिए अनिवार्यतः तो नहीं, किन्तु मुख्यतः, श्रवण और बातचीत आधारित विधियाँ हैं। जैव–चिकित्सकीय उपागमों की तुलना में मनोवैज्ञानिक चिकित्सा प्रणालियाँ मुख्य रूप में औशधि या दूसरे भौतिक हस्तक्षेपों के बिना कार्य करती है और इसका सम्बन्ध मात्र मानसिक स्वास्थ्य ही नहीं अपितु व्यक्ति के जीवन के आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक और अन्य पक्षों के साथ भी हो सकता है। परामर्शन और मनोचिकित्सा के व्यावसायिक रूप औपचारिक प्रशिक्षण आधारित होते हैं जिसमें प्रासंगिक सिद्धान्त, नैदानिक और/या सूक्ष्म–दक्षताओं का विकास, व्यक्ति के विकास, प्रशिक्षु की चिकित्सा और पर्यवेक्षणाधीन पेशा/वृत्ति पर ध्यान दिया जाना सम्मिलित है।'' फेल्थम का कथन है कि इस कामचलाऊ परिभाशा में चिकित्सा पद्धतियों के विभिन्न सम्प्रदायो, परामर्शन कार्य करने की विभन्न परिस्थितियों और विभिन्न वृत्तियों (प्रोफेशन) जिनमें परामर्शन सक्रिय होता है का उल्लेख छोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त फेल्थम का कथन है कि परामर्शन और मनोचिकित्सा में समानताएँ है। इसके अतिरिक्त फेल्थम का कथन है कि परामर्शन और मनोचिकित्सा और परामर्शन और मनोचिकित्सा में समानताएँ अधिक और भिन्नताएँ अत्यन्त न्यून है अतः मनोचिकित्सा और परामर्शन को भेदपरक रूप में देखने की तुलना में एक ही प्रणाली के रूप में देखना श्रेयस्कर और लाभकारी है।

केन्द्रचेरी अप्रैल (2013) परामर्शन मनोविज्ञान का एक सबसे बड़ा उप क्षेत्र है। यह क्लाइंट को जों मानसिक बीमारी व मनोवैज्ञानिक दबाव से पीड़ित है उसे चिकित्सा व

सहायता प्रदान करने पर केन्द्रित होता है। परामर्शन मनोविज्ञान का लक्ष्य व्यक्ति के सामाजिक, संवेगात्मक, शैक्षिक, स्वास्थ्य, विकासात्मक, पारिवारिक व व्यावसायिक व कार्य सम्बन्धी घटनाओं पर केन्द्रित कर वैयक्तिक कार्यप्रणाली को सुधारना है।

उपर्युक्त परिभाशाओं, अन्य परिभाशाओं (जिनका यहाँ वर्णन नहीं किया गया है) और संलग्न टिप्पणियों से परामर्शन के स्वरूप के बारे में निम्नांकित विशेश बिंदु प्रकट होते हैंः–

1. परामर्शन एक प्रक्रिया है।

2. परामर्शन परामर्शी (क्लायंट) और परामर्शदाता के मध्य अन्तर्क्रियात्मक सम्बन्ध है

3. परामर्शन एक सतत (continuous) प्रक्रिया है जिसमें अनेक अनुक्रमिक गतिविधियाँ सम्पन्न होती हैं

4. परामर्शन प्रक्रिया में परामर्शदाता प्रशिक्षण, अनुभव और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर सहायता देता है

5. परामर्शन प्रक्रिया परामर्शी के लिए अधिगम की परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है जिनके द्वारा व्यक्ति के संज्ञान, अनुभूति, अनुक्रिया, अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों में परिवर्तन उत्पन्न करने में व्यक्ति को लोकतांत्रिक सहायता प्राप्त होती है

6. परामर्शन का कार्य घर, विद्यालय, उ़द्योग, चिकित्सालय, सामाजिक और सामुदायिक केन्द्र, पुनर्वास केन्द्र जैसी विविध परिस्थितियों में सम्पन्न किया जाता है

7. परामर्शन का स्वरूप विकासात्मक (developmental), निरोधात्मक (preventive) तथा उपचारात्मक (therapeutic) होता है

8. परामर्शन मूलतः व्यक्ति के हित की दिशा में उन्मुख होता है

9. परामर्शन में सम्बन्ध संरचना की विशेशताएँ स्नेह (warmth), स्वतः स्फूर्त रूचि (responsiveness) और बोध (under-standing) होती है

10. परामर्शन प्रक्रिया में सत्यनिश्ठा (integrity), निश्पक्षता (impartiality) और सम्मान/आदर (respect) को महत्त्व दिया जाता है।

11. परामर्शन प्रक्रिया की अनेक अवस्थाएँ– आयोजन/ तैयारी (preparatory) आरम्भिक (beginning), मध्यवर्ती (middle), समापन/अवसान (end/terminal) और अनुवर्ती (follow-up) होती हैं।

12. एक व्यवसाय/वृत्ति (profession) के रूप में परामर्शन के क्षेत्र में आचार संहिता (ethics) का पालन किया जाता है। यह आचार संहिता सदैव सामाजिक आचार–संहित (social ethics) के अनुरूप हो यह आवश्यक नहीं है।

13. परामर्शदाता परामर्शी के व्यवहार के बारे में निर्णय नहीं करता है।

14. परामर्शन परामर्शी के आत्मविश्वास, आत्म–बोध, आत्म–निर्देशन, आत्म–सिद्धि, आत्म–निर्णयन और आत्म–उन्नयन का विकास करने में सहायक होता है; परामर्शन द्वारा व्यक्ति के जीवन में सार्थकता में वृद्धि होती है

15. परामर्शन का मुख्य उद्देश्य भविश्य की समस्याओं का निरोध करने तथा भविश्य की समस्याओं के समाधान हेतु व्यक्ति को समर्थ बनाना होता है किन्तु वर्तमान समस्याओं के समाधान के लिए भी सहायक होता है

16. व्यक्ति की परामर्शन सम्बन्धी आवश्यकताओं में विविधता होती है; परामर्शी की आवश्यकताओं के अनुसार परामर्शदाता चिकित्सक, मनोचिकित्सा विधि विशेशज्ञ, अध्यापक, सामाजिक कार्यकर्त्ता, राजनेता या अन्य अनुभवी व्यक्ति हो सकते हैं किन्तु जहाँ उद्देश्य क्षेत्र संज्ञान, अनुभूति, व्यवहार से सम्बन्धित हो वहाँ मनोवैज्ञानिक ज्ञान और प्रशिक्षण प्राप्त परामर्शदाता सहायक होता है। इस प्रकार परामर्शदाता और मनोवैज्ञानिक परामर्शदाता के पृथक वर्ग है।

परामर्शन का स्वरूप समझने के लिए मनोचिकित्सा और निर्देशन के साथ परामर्शन के सम्बन्धों की व्याख्या उपयोगी होगी। अब तक की वर्णित व्याख्या से एक सुनिश्चित सीमा तक यह ज्ञात होता है कि परामर्शन क्या है किन्तु स्वरूप की उचित व्याख्या के लिए यह भी समझना महत्वपूर्ण है कि परामर्शन क्या नहीं है मनोचिकित्सा और निर्देशन के संदर्भ में इसकी सीमा और सम्बन्ध का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?

6.4 मनोचिकित्सा एवं परामर्शन (Psychotherapy and Counselling)

मनोचिकित्सा एवं परामर्शन दोनों स्वास्थ्य वृत्ति (health profession) के अंग हैं। मनोचिकित्सा द्वारा व्यक्ति का विकास, उसकी शिक्षा या पुनर्शिक्षा (विशेशतः मनोशिक्षा) आदि संभव है किन्तु मनोचिकित्सा का मुख्य सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य के विकास और मनोरोगों के उपचार के साथ है। मनोचिकित्सा के अन्तर्गत सांवेगिक स्वरूप की समस्याओं का समाधान मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा किया जाता है। व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के संज्ञानात्मक, भावात्मक, व्यवहारात्मक, अन्तर्वैयक्तिक/अन्तर्क्रियात्मक, शारीरिक

स्वास्थ्य आदि अनेक पक्ष होते हैं; अनेक आयाम/विमाएँ होती हैं। अतः व्यक्ति की पीड़ा के उपचार के लिए इन विविध विमाओं की पुनर्रचना करनी होती है। वर्णित आयामों पर समस्याग्रस्त/ पीड़ित व्यक्तियों की समस्या की तीव्रता या गहराई में भेद होता है। समस्या का स्तर चेतन या/एवं अचेतन प्रकार का हो सकता है। व्यक्तियों के जीवन में उत्पन्न समस्या का प्रभाव अलग–अलग मात्राओं में देखा जा सकता है। कुछ लोगों की समस्या ऐसी होती है कि वे सामान्य लोगों की भाँति कार्य करते हुए मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा दी गयी सहायता के आधार पर अपनी समस्या का समाधान कर सकते हैं जबकि दूसरी श्रेणी के लोगों की समस्याएँ इतनी अधिक व्यापक और तीव्र होती है कि उन्हें दीर्घकाल तक गहन सहायता की आवश्यकता होती है। समस्या के स्वरूप, व्यापकता, तीव्रता, प्रभाव जैसे तत्त्व ही मनोचिकित्सा और परामर्शन के मध्य भेद स्थापित करने में कुछ सीमा तक सहायक हो सकते हैं।

रॉबिन्सन (1950) के अनुसार, परामर्शन सामान्य व्यक्तियों को सहायता देने की प्रणाली है। सामान्य व्यक्ति परामर्शन के फलस्वरूप अपना अधिक अच्छा समायोजन स्थापित कर पाते हैं, तथा उनकी परिपक्वता, स्वतंत्रता, जिम्मेदारी और व्यक्तित्व संगठन में परामर्शन के माध्यम से वृद्धि दृश्टिगोचर होती है। **थॉर्ने (1950)** के अनुसार, परामर्शन मनोचिकित्सा का सामान्य व्यक्तियों की आवश्यकताओं के अनुरूप ऐसी समस्याओं में भावात्मक पक्ष का होना आवश्यक नहीं है। एक विद्यार्थी की पाठ्यक्रम चयन की समस्या मात्र संज्ञानात्मक प्रकार की हो ऐसी संभावना अधिक है।

मनोचिकित्सा की विधियाँ जब प्रयुक्त की जाती हैं तब समस्या का वर्तमान समय में अस्तित्व, समस्या की तीव्रता, निर्धारकों का अचेतन स्तर और व्यक्ति के जीवन पर समस्या/लक्षणों का तीव्र प्रभाव स्वीकार किया जाता है अतः रोग लक्षणों का उपचार करके मानसिक स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना और विकास का प्रयास किया जाता है । व्यक्ति का मनोचिकित्सकीय विधियों के माध्यम से शिक्षण एवं पुनर्शिक्षण का कार्य किया जाता है। व्यक्तित्व में परिमार्जन स्थापित किया जाता है। इसकी तुलना में परामर्शन भविश्योन्मुखी होता है अर्थात (i) समस्या वर्तमान समय में उपस्थित हो सकती है या भविश्य में प्रकट होना संभावित है, अतः (ii) भविश्य में समस्या उत्पन्न न हो इस लक्ष्य की दिशा में निरोधात्मक/ परिहारात्मक प्रयत्न किया जाता है, या (iii) व्यक्ति को भविश्य में संभावित समस्याओं के समाधान हेतु समर्थ बनाया जाता है। परामर्शन में भी उपचारात्मक उपागम प्रयुक्त किया जा सकता है किन्तु जिन समस्याओं का उपचार किया जाता है उनकी तीव्रता कम होती है अर्थात समस्याग्रस्त व्यक्ति का व्यक्तित्व सामान्य की श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है।

पैटर्सन (1973) के अनुसार मनोचिकित्सा की विधियाँ मनोरोगी की गम्भीर और गहराई में स्थित संवेगात्मक समस्याओं के उपचार के लिए प्रयुक्त होती है और जब रोगी की समस्याएँ अधिक तीव्र नहीं होती है, व्यक्ति की समस्याएँ सामान्य व्यक्तियों की समस्याओं जैसी होती हैं किन्तु प्रकट हुई समस्याओं के कारण व्यक्ति के सामर्थ्यों की अभिव्यक्ति या विकास में बाधा आती है तब परामर्शन कार्य करता है और परामर्शदाता मनोचिकित्सा का कार्य करता है ("…….. so called counselors practiced psychotherapy while psychotherapists practiced counselling.") । अतः परामर्शदाता का कार्य अनिवार्यतः / सदैव सामान्य व्यक्तियों की समस्याओं तक सीमित नहीं किया जा सकता है।

सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि मनोचिकित्सा की तुलना में परामर्शन अधिक भिन्नतापूर्ण परिस्थितियों में, घर, विद्यालय, चिकित्सालय आदि अनेक दशाओं में सम्पन्न किया जाता है। इसकी तुलना में मनोचिकित्सा सीमित परिस्थितियों से सम्बन्धित है किन्तु परामर्शन मनोचिकित्सा, निर्देशन, पुनर्वास, जैव / शरीर चिकित्सा, आपद हस्तक्षेप (crisis intervention) जैसे अनेक कार्यक्रमों में विविध समन्वित सेवाओं के मध्य एक घटक सेवा के रूप प्रयुक्त किया जाता है। परामर्शन मनोवैज्ञानिक और मनोचिकित्सक के अतिरिक्त सामाजिक कार्यकर्ता, परिवीक्षा अधिकारी (प्रोबेशन आफिसर), कल्याण अधिकारी, कार्मिक प्रबन्धक, निर्देशन कार्यकर्ता, वृत्ति चिकित्सक, स्पीच थिरेपिस्ट (वाणी चिकित्सक), व्यावसायिक / वृत्ति मनोवैज्ञानिक और स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिक, अध्यापक नर्स और अन्य अनेक लोग भी परामर्शन एवं मनोचिकित्सकीय दक्षता की विभिन्न मात्राओं का उपयोग करते हैं। परामर्शन कार्य करने विभिन्न पेशागत भूमिकाओं से जुड़े लोग परामर्शन दक्षता (counseling skills) का आकस्मिक, अनियमित (casual), अनौपचारिक (informal), अल्पकालिक (transiet), अप्रशिक्षित और संविदारहित रूप में उपयोग करते हैं। फेल्थम (Colin Feltham, 2000) का विचार है कि परामर्शन वृत्ति के संगठनों को नीतिपूर्ण, औपचारिक तात्पर्य यह बताना है कि परामर्शन कार्य कितनी विविधतापूर्ण परिस्थितियों में सम्पन्न किया जाता है । परामर्शन कार्य की अनेक श्रेणियाँ (degrees) होती हैं। इसीलिए पैरी (Parry,1996) (i) टाइप 'ए' : मानसिक स्वास्थ्य सेवा के घटक के रूप में मानसिक उपचार; (ii) टाइप 'बी': विभिन्न दर्शनग्राही (eclectic) मनोवैज्ञानिक चिकित्सा और परामर्शन; एवं (iii) टाइप 'सी': औपचारिक मनोचिकित्सा (formal psychotherapy) के मध्य अन्तर स्थापित करते हैं।

प्रस्तुत संदर्भ में कॉलिन फेल्थम और ईऑन हार्टन (2000) का यह विचार पुनर्उल्लेख्य है कि मनोचिकित्सा और परामर्शन के मध्य व्यापक समानताएँ है और सूक्ष्म अन्तर हैं। मनोचिकित्सा और परामर्शन के मध्य अन्तर स्थापित करने के प्रयास में संप्रत्ययात्मक और तकनीकी स्तर पर भेद करने में सफलता की प्राप्ति हो सकती है किन्तु इससे क्लायंट को कोई लाभ नहीं होने वाला है। लोगों को दोनों ही प्रकार की सेवाओं की पृथक अथवा एक साथी ही आवश्यकता होती है।

6.5 निर्देशन एवं परामर्शन (Guidance and Counselling)

निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत पुर्वाभिमुखीकरण (आरेएंटेशन), व्यक्ति मूल्यांकन, सूचना, अनुवर्तन सेवाओं के समुच्चय के मध्य में परामर्शन सेवा प्रदान की जाती है और इसे निर्देशन कार्यक्रम का सर्वाधिक मुख्य अंग माना जाता है। निर्देशन कार्यक्रम में प्राप्य अनेक लक्ष्यों में से अधिकांश की प्राप्ति परामर्शन के बिना संभव नहीं हो सकती है। शैक्षिक एवं व्यावसायिक या अन्य लक्ष्यों के चयन कार्य को परामर्शन सहज बनाता है। व्यक्तिगत निर्देशन के क्षेत्र में लक्ष्यों की प्राप्ति परामर्शन द्वारा ही संभव है। परामर्शन द्वारा परामर्शी को आत्म–बोध की प्राप्ति, समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक क्षमताओं के विकास एवं व्यक्तिगत सीमाओं / कमियों को दूर करने में सहायता मिलती है।

स्पश्ट है कि परामर्शन निर्देशन कार्यक्रम का उसी प्रकार एक घटक है कि जैसे कि मनोचिकित्सा के सोपानों का किन्तु परामर्शन को निर्देशन या मनोचिकित्सा तक सीमित नहीं किया जा सकता है। अन्य अनेक क्षेत्रों में भी परामर्शन मनोविज्ञान की भूमिका है तथापि परामर्शन मनोविज्ञान की समस्त गतिविधियाँ व्यक्ति के स्वास्थ्य, पीड़ा, तनावग्रस्तता, उसकी अन्तर्निहित सामर्थ्यो की पूर्ण सिद्धि, व्यक्ति के संपूर्णरूपेण एक प्रकार्यात्मक इकाई के रूप में कार्य करने में समुत्पन्न बाधाओं के निराकरण, वर्तमान समस्याओं के समाधान, भविश्य की समस्याओं के परिहार, व्यक्तित्त्व विकास आदि से जुड़ी होने के कारण निर्देशानात्मक अथवा / एवं मनोचिकित्सकीय माने जाने योग्य हैं।

6.6 परामर्शन का क्षेत्र विस्तार (Scope of Counselling)

परामर्शन का कार्य का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन की सभी अवस्थाओं और प्रायः सभी क्षेत्रों से है। हमें परामर्शदाता के व्यावसायिक सहयोग की आवश्यकता घर, विद्यालय, कार्य स्थल, उपचार केन्द्र व चिकित्सालय, आवासीय संरक्षण केन्द्र, सामुदायिक केन्द्र, शैक्षिक उपचार केन्द्र, स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा स्थापित बहुउद्देशीय सहायता केन्द्र जैसे विभिन्न

स्थलों पर होती है। इन समस्त केन्द्रों पर सुप्रशिक्षित या अल्प–प्रशिक्षित परामर्शदाताओं की पूर्णकालिक या अल्पकालिक सेवाएँ ली जाती है अर्थात यह कि परामर्शदाता के रूप में प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों के लिए रोजगार के अवसर ऐसे सभी स्थलों पर उपलब्ध हो सकते हैं। व्यक्ति की आयु अवस्था की दृश्टि से परामर्शन की आवश्यकता हमारे जीवन में सभी आयु अवस्थाओं में होती है। परामर्शन कार्य की विभिन्न क्षेत्र अधोवर्णित हैं।

6.6.1. परिवार (Family)

परामर्शन अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों में उत्पन्न समस्याओं के समाधन में उपयोगी उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। परिवार की जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि पारिवारिक सम्बन्ध तनावग्रस्त हो जाते हैं तो जीवन में सांवेगिक तनाव की अधिकता हो जाती है। अनेक परिवार परामर्शन के अभाव में विघटित हो जाते हैं, पति–पत्नी वैवाहिक सम्बन्धों के विच्छेद के बिंदु पर पहुँच जाते हैं। वैवाहिक परामर्शन (marital counseling) परिवार से जुड़ा महत्वपूर्ण परामर्शन है। वैवाहिक परामर्शन की तीन अवस्थायें होती हैः विवाहपूर्व परामर्शन (pre-marital counseling), अच्छे वैवाहिक सम्बन्धों के लिए परामर्शन, और तनावपूर्ण सम्बन्धों में से तनाव को घटाने के लिए परामर्शन। विवाह में यौनिक सम्बन्धों की गहरी भूमिका होती है। जब यौनिक जीवन से सम्बन्धित समस्याएँ प्रकट होती हैं तब विशिश्ट प्रकार के परामर्शन की आवश्यकता होती है। विवाहपूर्व परामर्शन उपयुक्त जीवन साथी की खोज से सम्बन्धित प्रश्नों का समाधान प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होता है। तनाव–ग्रस्त वैवाहिक सम्बन्धों में परामर्शन का स्वरूप संकटकालीन/ आपद हस्तक्षेप जैसा होता है।

वैवाहिक सम्बन्धों के अतिरिक्त बच्चों के व्यक्तित्त्व से सम्बन्धित समस्याओं, जैसे– जिद्दी एवं अनुत्तरदायित्वपूर्ण स्वभाव, के समाधान के लिए माता–पिता को परामर्शन की आवश्यकता होती है। वृद्धावस्था से सम्बन्धित संवेगात्मक और अन्य समस्याओं के निराकरण के लिए भी परामर्शन सेवा की आवश्यकता होती है । बाल्यावस्था और किशोरावस्था की समस्याओं के संदर्भ में परामर्शन का स्वरूप उपचारात्मक हो सकता है। ऐसी विशिश्टताओं के बारे में विस्तृत विवरण परामर्शन की विशिश्ट समस्याओं से सम्बन्धित अध्याय में प्राप्त किया जा सकता हैं परिवार में परामर्शन कार्य के अनेक रूप हैं जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के विकास, समायोजनात्मक समस्याओं के समाधान, संकटकालीन हस्तक्षेप और उपचार से हो सकता है।

6.6.2. शैक्षिक संस्थान (Educational Institutions)

प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय, उच्च शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थानों में शैक्षिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत निर्देशन के क्षेत्र में परामर्शन सेवा की भूमिका बच्चों और किशोरों का विकासात्मक, संवेगात्मक, समायोजनात्मक, यौनिक, व्यसनिता और अन्य अनेक समस्याओं के क्षेत्र में परामर्शन की आवश्यकता होती है।

6.6.3. कार्य स्थल (Work Place)

कार्यस्थलों पर सेवायोजक कर्मचारियों के लिए परामर्शन प्रक्रिया का विभिन्न समस्याओं और लक्ष्यों के लिए उपयोग करते हैं। सेवायोजक कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों कार्य स्थल पर तनावग्रस्तता, अल्कोहल सेवन, दुर्घटना और दुर्घटना के पश्चात उत्पन्न संकट, कर्मचारी छँटनी, कर्मचारी अनुपस्थिति जैसी समस्याओं का सामना करने के लिए परामर्शन सेवा का उपयोग करते हैं। बड़े आकार उद्यम कर्मचारियों के मानसिक एवं पेशागत स्वास्थ्य के लिए समूह परामर्शन सेवा की व्यवस्था सुनिश्चित करते हैं।

6.6.4 प्राथमिक उपचार केन्द्र (Primary Health Centers)

मनोचिकित्सा से स्पश्टतः भिन्न रूप में परामर्शन कार्य के लिए प्राथमिक उपचार केन्द्र प्रमुख स्थल होते हैं। दुर्घटना के उपरान्त परामर्शन की आवश्यकता सामान्य बात है। परिवार नियोजन के लिए और निःसन्तान माता–पिता के लिए भी प्राथमिक उपचार केन्द्रों पर परामर्शन की आवश्यकता होती है।

6.6.5. आवासीय संरक्षण केन्द्र (Residential Care Centers)

आवासीय श्रेणी के स्वास्थ्य की देखभाल करने वाले संरक्षण केन्द्रों पर उपचार के अतिरिक्त रोगी/क्लायंट की व्यापक आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है। ऐसी आवश्यकताओं के अन्तर्गत परामर्शन की आवश्यकता भी सम्मिलित होती है। कैंसर, हृदय रोग, गुर्दे की बीमारी, कुश्ठ रोग, अपंगता, गर्भ समापन, बलात्कार की पीड़ित महिलाओं , घरेलू हिंसा के शिकार बच्चों और महिलाओं , मद्यपान और औशधि व्यसन के शिकार व्यक्तियों, अपराधी / हिंसक व्यवहार वाले व्यक्तियों ओर बंधकों के चुगुल से मुक्त हुए लोगों की देखभाल में चिकित्त्सक, सामाजिक कार्यकर्ता, मनोचिकित्सक, पुनर्वास कार्यक्रम हेतु प्रशिक्षित नर्स, परामर्शदाता के सम्मिलित एवं समन्वित प्रयत्न की आवश्यकता होती है।

6.6.6. सामुदायिक केन्द्र (Community Centers)

सामुदायिक केन्द्रों के माध्यम से विद्यालय और कार्यालय परिवेश से बाहर स्थित किशोरों, युवक–युवतियों, समाज के निर्बल वर्ग के लोगों की विभिन्न प्रकार की

आवश्यकताओं की पूर्ति करने के प्रयत्न की अवधि में उनके लिए परामर्शन की आवश्यकता का भी अनुभव किया जाता है। सामुदायिक केन्द्र लोगों की मनोरंजन और शौक (हॉबी) की पूर्ति में भी सहायक होते हैं। परामर्शन सेवा उपयुक्त मनोरंजन और शौक के विकास, चयन और पूर्ति के लिए आवश्यक सहायकता प्रदान करती है।

6.6.7. मनोशैक्षिक निर्देशन एवं उपचार केन्द्र (Psycho-Educational Guidance Clinics)

पाश्चात्य समुदाय मनोविज्ञान विशय के क्षेत्र में प्राप्त ज्ञान का अधिकाधिक अनुप्रयोग करने की चेश्टा कर रहे है। मनोचिकित्सालयों में मनोपचार एवं परामर्शन के लिए मनोवैज्ञानिक विधियों का अनुप्रयोग आरम्भ हुए सौ वर्शों से अधिक समय व्यतीत हो चुका है। अब मानसिक स्वास्थ्य के प्रति रोग निरोधात्मक दृश्टिकोण अपनाने के अतिरिक्त व्यक्ति के व्यक्तित्व का सकारात्मक दिशा में विकास करने का प्रयास किया जाता है। यहाँ पर उद्देश्य लक्षणों को दूर करना नहीं, अच्छे गुणों का (जब कोई भी समस्या न हो तब भी व्यक्ति पर ध्यान देना) विकास किया जाना उद्देश्य होता है। इस श्रेणी के निर्देशन एवं उपचार केन्द्रों पर अभिभावकत्व एवं मातृत्व सें सम्बन्धित योग्यताओं एवं गुणों, सामाजिक दक्षता, तनाव प्रबंधन/प्रतिरोध, जीवनोपयोगी गुणों/दक्षताओं के विकास, शिथिलीकरण प्रशिक्षण (relaxation training), निश्चयात्मकता/ स्वाग्रहीपन प्रशिक्षण (assertiveness training), वैवाहिक सम्बन्ध समृद्धीकरण जैसी अनेक प्रशिक्षण योजनाओं के अन्तर्गत परामर्शन सेवा की आवश्यकता होती है। व्यक्ति के संज्ञान, व्यवहार और अन्तर्वैयक्तिक व्यवहारों के उन्नयन, जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए नये जीवनदर्शन और व्यवहार प्रणालियों के विकास पर बल दिया जाता है।

6.6.8. स्वयंसेवी संस्थाए (Voluntary Agencies)

अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ अल्कोहल और औशधिक सेवन,आपदा, बलात्कार, एच.आई.वी /एड्स, दंगा पीड़ित व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए समन्वित सेवाएँ प्रस्तुत करती हैं। इन सेवाओं के अन्तर्गत परामर्शन एक प्रमुख सेवा के रूप में क्लायंट को उपलब्ध करायी जाती है।

ऊपर किया गया वर्णन एक व्यवस्थित सेवा के रूप में परामर्शन के कार्यक्षेत्र का परिचय प्रस्तुत करता है। इन सभी क्षेत्रों में प्रशिक्षित परामर्शदाताओं के लिए रोजगार के अवसर भी देखे जा सकते हैं।

6.7 सारांश

रॉबिन्सन के अनुसार '' परामर्श शब्द दो व्यक्तियों के सम्पर्क की उन सभी स्थितियों का समावेश करता है जिनमें एक व्यक्ति को अपने एवं पर्यावरण के बीच प्रभावी समायोजन प्राप्त करने में सहायता की जाती है।'' परामर्शन में दो तत्व महत्वपूर्ण है। मानवीय सम्बन्ध एवं सहायता।

मनुष्य की प्रकृति के सम्बन्ध में धर्मों एवं विज्ञान ने अलग–अलग धारणाएं व्यक्त की हैं। ईसाई धर्म में पाप और उसके प्रायश्चित की स्थिति अपराध भावना की मुक्ति के लिए आवश्यक मानी गयी है। भारतीय जीवन दर्शन में जीवन को ब्रह्म (परमात्मन्) का अंश माना गया है एवं उसकी मूल प्रकृति ईश्वरीय मानी गयी है। विज्ञान धर्म की धारणाओं से अलग व्यक्ति के व्यवहार वस्तुगत अध्ययन के पक्ष में है।

धर्म और परामर्शन का सम्बन्ध प्राचीन है किन्तु परामर्श में यह समस्या उत्पन्न होती है कि धार्मिक अनुरूपता को कहाँ तक स्थान दिया जाय अथवा कहाँ तक इससे स्वतन्त्र होकर कार्य किया जाय। सभी धर्मों में पाप की किसी न किसी रूप में अवधारणा विद्यमान है एवं सामाजिक नियन्त्रण के लिये दान के फल का भय भी विकसित है। वस्तुतः व्यक्ति का स्वविवेक ही उसे कार्य, अकार्य का निश्चय करने में सहायता दे सकता है। इसे आत्मा की आवाज भी कहा गया है।

परामर्शन में लक्ष्यों के स्थान पर कई बार साधनों को अधिक महत्व दे दिया जाता है। किन्तु तकनीक या साधन को ही लक्ष्य मान बैठना भूल है। साध्य और साधन दोनों ही समान महत्व रखते हैं। साध्य कार्य के प्रारम्भ की ओर प्रेरित करता हैं। जबकि साधन लक्ष्य को प्रशस्त करते हैं। परामर्श के लक्ष्यों के निर्धारण की तीसरी मुख्य बात यह है कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में उसे सहायता करनी चाहिए। उसे अपनी दृश्टि परिधि में समग्र व्यक्तित्व को ग्रहण करना चाहिए। उसके तहत अनेक बिन्दुओं पर कार्य किया जाता है।

परामर्शन भविश्योंन्मुखी होता है और मनोचिकित्सा में वर्तमान समय में अस्तित्व, समस्या की तीव्रता अन्य लक्षणों का उपचार करके मानसिक स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना और विकास का प्रयास किया जाता है। परामर्शन आत्मबोध की प्राप्ति, समस्याओं के समाधन के लिये आवश्यक क्षमताओं के विकास एवं व्यक्तिगत कमियों को दूर करने में सहायता करता है। और निर्देश कार्यक्रम के अन्तर्गत ऑरेएंटेशन, व्यक्ति का मूल्यांकन किया जाता है।

परामर्शन के कार्य का सम्बन्ध व्यक्ति के सभी क्षेत्रों से हैं। परामर्शन की आवश्यकता घर, विद्यालय, कार्य स्थल, उपचार केन्द्र शिक्षा, आवासीय संरक्षण केन्द्र सामुदायिक केन्द्र, स्वयंसेवी संस्थानों द्वारा स्थापित बहुउद्देशीय सहायता केन्द्र जैसे विभिन्न स्थलों पर होती है।

6.8 मूल्यांकन प्रश्न

प्र01–'परामर्शन' से आप क्या समझते हैं? परामर्शन की परिभाशा देते हुए इसकी मुख्य बातों पर प्रकाश डालिये।

प्र02–परामर्श से आप क्या समझते हैं? यह निर्देशन से किस प्रकार भिन्न हैं।

लघु प्रश्न

प्र01–परामर्श की दो परिभाशायें लिखिये।

प्र02–परामर्श क्यों आवश्यक है।

प्र03–परामर्शन के क्षेत्रों को नामांकित कीजिये।

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अमरनाथ राय, मधुअस्थाना, ''निर्देशन एवं परामर्शन'' मोतीलाल बनारसीदास।

2. डा. सीता राम जायसवाल ''शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श'' अग्रवाल पब्लिकेशन्स–आगरा–2

3. डा. रामपाल सिंह, ''शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन'' अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा–2

4. एस. के. कोच्चर "Guidance and Councelling in Colleges and Universities" Starling Publishers Private Limted

इकाई–7 : परामर्श के क्षेत्र या परामर्श के प्रकार
Areas or Forms of Counselling

इकाई की संरचना

7.0 लक्ष्य एवं उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 परामर्श के क्षेत्र या परामर्श के प्रकार

7.3 परामर्श प्रविधियॉ व प्रक्रिया

7.3.1 परामर्श प्रक्रिया

7.4 परामर्श प्रक्रिया के प्रकार

7.5 व्यक्तिगत परामर्शन

7.6 पारिवारिक परामर्शन

7.7 कैरियर परामर्शन

7.8 निर्देशीय परामर्शन

7.9 अनिर्देशीय परामर्शन

7.10 सारॉश

7.11 मूल्यॉकन प्रश्न

7.12 संन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 लक्ष्य एवं उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

1. परामर्शन के क्षेत्रों के बारे में जान पायेंगे।
2. परामर्शन प्रक्रिया व प्रविधिक के बारे में बता पायेंगे।
3. व्यक्तिगत परामर्श क्या है जान पायेंगे।
4. परिवारिक परामर्शन व कैरियर परामर्शन क्या है बता पायेंगे।

5. निर्देशीय परामर्शन व अनिर्देशीय परामर्शन को समझ सकेगें।

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

बालक के व्यक्तिगत विकास को अनेक कारक प्रस्तावित करते हैं। वर्तमान औद्योगिक युग में अनेक कारक पारिवारिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, औद्योगिक एवं सॉस्कृतिक क्षेत्रों में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं व इन परिवर्तनों के कारण समस्याओं में वृद्धि हो रही है। इन समस्याओं के समुचित आकलन के आधार पर निर्देशन एवं परामर्श दिया जाता है। परामर्शन में जो प्रविधियां प्रयुक्त होती है विद्यार्थी की विशेषता और व्यक्तित्व के अनुसार होनी चाहिये। भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के परामर्शन में भिन्न–भिन्न प्रविधियां प्रयुक्त की जाती है जिनको परामर्शन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग में लाया जाता है।

परामर्श के विभिन्न कार्यक्षेत्र हैं अर्थात् यह विभिन्न प्रकार का होता है। हम्फरीस, ट्रैक्सलर और नार्थ (Humphreys, Traxler & North) ने परामर्श के निम्नलिखित चार क्षेत्रों का वर्णन किया है–

1. शैक्षिक विन्यास और निर्देशन (Educational Orientation and Guidance)
2. व्यक्तिगत ओर सामाजिक समायोजन ।
3. व्यावसायिक विन्यास और निर्देशन (vocational Orientation & Guidance)
4. स्वास्थ्य समायोजन (Health Adjustment)

इसके अतिरिक्त परामर्श के विभिन्न प्रकारों का वर्णन निम्नलिखित रूप से है–

1. शैक्षिक परामर्श (Educational Couselling)- शैक्षिक परमार्श का सम्बन्ध विद्यार्थियों को अध्ययन के लिये पाठ्यक्रम के निर्णय के बारे में सहायता प्रदान करने से है। विभिन्न अभिरूचियों, विभिन्न क्षमताओं और प्राकृतिक झुकावों या प्रवृत्तियों के कारण तथा इनके संदर्भ में विद्यार्थियों की सहायता शैक्षिक –परामर्श द्वारा की जा सकती है। संक्षेप में, यह व्यक्ति की शिक्षा संबंधी समस्याओं में सहायता करती है?

2. व्यावसायिक परामर्श (Vocational Counselling) – व्यावसायिक परामर्श वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति के उपयुक्त व्यवसाय के चयन में उसके लिये तैयारी में सहायता की जाती है। व्यवसाय सम्बन्धी निर्णय की प्रकृति बहुत गंभीर मामला होता है, अतः इसमें विशेष ध्यान देने की जरूरत है। वरना कुसमायोजन और प्रसन्नता इसके परिणाम हो सकते हैं।

3. व्यक्तित्व परामर्श (Personality counselling or Psychological

Counselling)- व्यक्तित्व या मनोवैज्ञानिक परामर्श के अन्तर्गत व्यक्तिगत और संवेगात्मक समस्याओं का समाधान 'व्यक्तित्व परामर्श' का कार्य–क्षेत्र है। उदाहरणार्थ, मित्रों का अभाव, अकेलापन, हीनता की भावनाएँ आदि। इन समस्याओं की ओर –ध्यान देना अति आवश्यक है वरना् इनका प्रभाव विद्यार्थी की स्कूल–शिक्षा पर अवश्य पड़ेगा। इस प्रकार के परामर्श के अभाव में विचलित (Disturbed), अप्रसन्न और असमायोजित मानसिक स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

'मनोवैज्ञानिक परामर्श' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम आर.डब्ल्यू. व्हाईट (R.W. White) ने किया था। मनोवैज्ञानिक परामर्श में, परामर्शदाता एक चिकित्सक के समान होता है। इसमें सामान्य बातचीत के माध्यम से परामर्शदाता प्रार्थी की उसकी दबी इच्छाओं, भावनाओं एवं संवेगों की अभिव्यक्ति में सहायता करता है।

4. मनोचिकित्सात्मक परामर्श (Psychotherapeutic Counselling)- स्नाईडर (Snyder) ने मनोचिकित्सा को इस प्रकार परिभाशित किया है, ''मनोचिकित्सा वह प्रत्यक्ष सम्बन्ध है जिसमें मनोवैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के सामाजिक कुसमायोजन वाले भावात्मक दृष्टिकोणों में सुधार के लिये शाब्दिक माध्यम से सचेत रूप से प्रयास करता रहता है तथा जिसमें प्रार्थी सापेक्ष रूप में स्वयं के व्यक्तित्व के पुनः गठन से परिचित रहता है, जिसमें से वह गुजर रहा है।''

(Psychotherapeutic counselling is the face to face relationship in which a psychologically trained individual is consciously attempting by verbal means to assist another person or persons to modify emotional attitude that are socially maladjusted and in which the subject is relatively aware of the personality re-organisation through which he is going) -W.V. Snyder

मनोचिकित्सा तथा परामर्श के सम्बन्ध के बारे में रूथ स्ट्रैंग (Ruth Strang) का कहना है कि ये दोनों ही आपस में सम्बद्ध (Related) हैं। आज यह माना जाने लगा है कि परामर्श में चिकित्सात्मक प्रकृति है। सामाजिक कुसमायोजन को समाप्त करने की दृष्टि से मनोचिकित्सात्मक परामर्श बहुत ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है?

5. नैदानिक परामर्श (Clinical Counselling)- नैदानिक परामर्श (Clinical Counselling) शब्द का प्रयोग एच.बी. पेपिंस्की (H.B. Pepinski) ने किया। उसके

अनुसार नैदानिक परामर्श का एक प्रारूप है। नैदानिक परामर्श (Clinical Counselling) का उद्देश्य है–

a) छोटी कार्य से सम्बन्धित कुसमायोजनों का निदान और उपचार (Diagnosis and treatment of minor functional maladjustments)

b) परामर्शदाता और प्राथी के बीच मुख्य रूप से वैयक्तिक और आमने–सामने का सम्बन्ध (A Relationship primarily individual and face to face between counselor & client)

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि नैदानिक परामर्श की सम्बन्ध व्यक्ति के सामान्य कार्य–व्यापार से सम्बद्ध कुसमायोजनों से है। इसके अन्तर्गत परामर्शदाता और प्रार्थी का प्रत्यक्ष सम्बन्ध निहित होता है।

नैदानिक परामर्श की प्रक्रिया में समस्या का विश्लेषण करने तथा समस्या का उपचार सुझाने के प्रयास किये जाते हैं। नैदानिक मनोविज्ञान (Clincial Psychology) मनोविज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा भी है। नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत ऐसे प्रार्थी की जिसमें सुसमायोजन एवं आत्म–अभिव्यक्ति के क्रम में कोई अनुचित व्यवहार विकसित हो जाता है, सहायता करने में व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक ज्ञान एवं अभ्यास से सम्बद्ध होती है। इसमें निदान (Diagnosis), उपचार (Treatment) एवं प्रतिरोधन (Prevention) और ज्ञान के विस्तार के लिये की जाने वाली शोध हेतु प्रशिक्षण तथा वास्तविक अभ्यास को आत्मसात किया जाता है। नैदानिक परामर्श (Clinical Counselling) और नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) में अत्यधिक समानता है।

6. वैवाहिक परामर्श (Marriage Counselling) – आजकल वैवाहिक परामर्श की परम्परा भी चल पड़ी है। इसके अन्तर्गत उपयुक्त जीवन साथी चुनने के सुझाव दिये जाते हैं और व्यक्ति की यथासंभव सहायता की जाती है। विवाहित प्राथी (Client) की वैवाहिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिये परामर्श दिया जाता है। ऐसी वैवाहिक समस्याओं के विभिन्न कारण हो सकते हैं जैसे औद्योगीकरण, नगरीकरण (Urbanisation), आदि। इन कारणों से परिवार विघटित हो रहे हैं। उन्हें परामर्श की आवश्यकता है।

7. स्थानन परामर्श (Placement Counselling)- स्थानन परामर्श से अभिप्राय प्रार्थी की अभिरूचियों, दृष्टिकोणों तथा योग्यताओं के अनुरूप व्यवसाय चयन में सहायता करना है अर्थात् प्रार्थी जिस प्रकार के पद या कार्य के अनुसार योग्यता रखता है तथा जिससे व्यक्ति

को कार्य–संतोष (Job-Satisfaction) – प्राप्त होता हो, उस प्रकार के व्यवसाय या कार्य में नियुक्ति प्राप्त करने में प्रार्थी की सहायता की जाती है।

परामर्श के इन विभिन्न प्रकारों से हमें यह पता चलता है कि इन क्षेत्रों में व्यक्ति–समस्याओं का सामना करता है। समस्या की प्रकृति पर ही परामर्श का प्रकार निर्भर करता है। लेकिन समस्या के क्षेत्रों को यही तक सीमित नहीं किया जा सकता। परामर्शदाता को सभी प्रकार की समस्याओं को सुलझाने या उनका सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिए।

7.3 परामर्श प्रविधियाँ व प्रक्रिया (Techniques of Counselling and Process)

7.3.1 परामर्शन प्रक्रिया (Counselling Process)

परामर्शन की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति के संज्ञान, व्यवहार, अनुभूति, कल्पना/बिम्ब और अन्तर्वैक्तिक व्यवहार कारकों के क्षेत्र में हस्तक्षेप करके उसका विकास संगति, स्व आत्मीकरण आत्मसिद्धि सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में सुनिश्चित किया जाता है। समूची प्रक्रिया परामर्शदाता और परामर्शी के मध्य साक्षात्कार प्रणाली के रूप में कार्य करती है।

परामर्शन सम्बन्ध एवं परामर्शन परिवेश (Counselling Relationship and Counselling Climate) रॉजर्स (1942) के अनुसार ''सफल परामर्शन में ऐसे सुसंरचित अभिव्यक्तिपूर्ण सम्बन्ध की आवश्यकता होती है जो क्लायंट को अपने बारे में एक सीमा तक समझ अर्जित करने में सहायता देती है जिससे कि वह अपनी नवीन अभिमुखता के प्रकाश में सकारात्मक पहल करने के लिए सक्षम हो पाता है।''

क्लाक्रसन (1995) के अनुसार, ''परामर्शदाता और परामर्शी के मध्य व्यक्ति से व्यक्ति का सम्बन्ध'' रूप ही परामर्शन की धुरी है।''

रॉजर्स ने परामर्शन का उद्‌देश्य व्यक्ति की किसी विशेष समस्या का समाधान करने के स्थान पर क्लायंट के ऐसे विकास के रूप में स्थापित किया जो व्यक्ति की समायोजनात्मक एवं समस्या समाधान क्षमता के विकास में सहायक सिद्ध होता है तथा जिसकी उपयोगिता व्यक्ति के पूरे जीवन में होती है।

परामर्शन परिवेश की विशेषताएँ (Characteristics of the Counselling Climate) सफल परामर्शन के लिए परामर्शदाता और परामर्शी के मध्य उपयुक्त संबंधों के

माध्यम से जिस परिवेश को विकसित किये जाने की आवश्यकता होती है उसकी विशेषताओं का वर्णन रॉजर्स (1959) ने निम्न बिन्दुओं के रूप में किया है।

1. दो व्यक्ति (परामर्शदाता और क्लायंट) सम्पर्क में हैं।

2. क्लायंट विसंगति की अवस्था में है, वह असुरक्षित या चिंतित है।

3. परामर्शदाता या मनोचिकित्सक संगति की अवस्था में है।

4. परामर्शदाता क्लायंट के लिए अप्रतिबंधित (बिना शर्त) सकारात्मक सम्मान का अनुभव कर रहा है।

5. परामर्शदाता को क्लायंट की आन्तरिक संदर्भ संरचना के बारे में परानुभूतिपूर्ण समझ (empathic understanding) की अनूभूति प्राप्त हो रही है।

6. क्लायंट को परामर्शदाता की अनुभूतियों सकारात्मक सम्मान और परानुभूतिपूर्ण समझ की एक न्यूनतम मात्रा में अवश्य ही अनुभूति हो रही है।

परामर्शन परिवेश का सृजन

परामर्शन परिवेश की उपर्युक्त वर्णित विशेषताओं में से परामर्शदाता की संगति, क्लायंट के लिए परामर्शदाता की बिना शर्त सम्मान और परानुभूतिपूर्ण समझ का विकास करना किसी भी परामर्शदाता के लिए चुनौतिपूर्ण कार्य होता है। परामर्शन परिवेश की इन तीन विशेषताओं को परामर्शन का सारभाग या मर्म बताया जाता है। इन तीन मर्म दशाओं में से संगति को अधिक केन्द्रीय विशेषता बताया है।

संगति (Congruence)

परामर्शदाता की संगति की दशा का अर्थ यह होता है कि पामर्शदाता जो अनुभव कर रहा है और क्लायंट को अपना जो कुछ अनुभव संप्रेषित कर रहा है उसमें कोई द्वन्द नहीं है, कोई अन्तराल व्याप्त नहीं है अथवा इनकी मात्रा न्यूनतम है। इसके लिए परामर्शदाता में गहन आत्मबोध (self-awareness) की आवश्यकता होती है। यह भी आवश्यक होता है कि परामर्शदाता क्लायंट को अपने आत्मबोध में भागीदार बनाये।

अप्रतिबन्धित सकारात्मक सम्मान (Unconditional Positive Regard)

रॉजर्स क्लायंट के लिये परामर्शदाता के अप्रतिबन्धित सम्मान ऐसा आदर जिसकी कोई शर्त नहीं है, मुक्त स्वीकार्यता और मूल्य को परामर्शन परिवेश की पूर्व शर्त या अनिवार्य आवश्यकता मानते हैं। अप्रतिबन्धित सम्मान के माध्यम से परामर्शदाता क्लायंट के अनुभवों

में संगति के विकास की प्रक्रिया को सहज बनाता है। क्लायंट को किन्हीं मानकों, लक्ष्यों की पूर्ति के शर्त का सामना नहीं करना पड़ता है।

परानुभूति (Empathy)-

परामर्शदाता के समक्ष चुनौती यह होती है कि वह क्लायंट के ''वास्तविक के प्रत्यक्षण ' पर पूरा ध्यान केन्द्रित करे अपने प्रत्यक्षण और अनुभव को नियन्त्रित कर ले, पीछे छोड़ दे। परामर्शी के समक्ष मात्र यह अभिव्यक्त होना चाहिए कि विचारणीय तथ्य या तत्व उसके तथ्य या तत्व हैं । क्लायंट को समझने के लिये उसे स्वयं को विलुप्त होने देता है।

परामर्शन प्रक्रिया की संरचना– प्रमुख चरण एवं अवस्थाएँ–

साधारणतया परामर्शन प्रक्रिया के आठ प्रमुख चरण बताये जाते हैं – 1. क्लायंट के साथ समय सत्र की नियुक्ति / निर्धारण 2. पूर्व परामर्श सत्र 3. परामर्शन सम्बन्ध का विकास 4. परामर्शन के विशिष्ट लक्ष्यों की पहचान 5. लक्ष्य सिद्धि के लिये कार्य योजना का विकास और क्रियान्वयन 6. परामर्शन सम्बन्धों का समापन 7. परामर्शन के परिणामों का मूल्यांकन और 8. अनुवर्ती कार्य।

उपयुक्त चरणों को बहुधा पाँच अवस्थाओं में विभाजित किया जाता है।

1. तैयारी अवस्था 2. आरम्भिक अवस्था 3. मध्यवर्ती अवस्था 4. सत्रान्त अवस्था और 5. अनुवर्तन अवस्था (Follow-up- phase)

परामर्श द्वारा प्रयुक्त प्रविधियाँ विद्यार्थी की विशेषता (Uniqueness) और व्यक्तित्व के अनुसार होनी चाहिए। विलियमसन ने परामर्श–प्रविधियों को निम्नलिखित पाँच शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित किया है–

1. मधुर सम्बन्ध स्थापित करना (Establishing Rapport) – जब पहली बार प्रार्थी परामर्शदाता के पास आता है तो परामर्शदाता का सबसे पहला कार्य होता है कि उसके साथ स्वागतपूर्ण पेश आना चाहिए। उसे आरामदेह स्थिति में लाकर प्रार्थी को विश्वास में ले लेना चाहिए। मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का मुख्य आधार होता है– परामर्शदाता की योग्यता की ख्याति, व्यक्तिगतता (Individuality) का सम्मान तथा साक्षात्कार से पहले विश्वास (Confidence) और विद्यार्थी के साथ सम्बन्धों को विकसित करना।

2. स्वयं बोध उत्पन्न करना (Cultivating Self-understanding)- विद्यार्थी या प्रार्थी (Counsellee) को स्वयं की योग्यताओं और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट ज्ञान एवं समझ होनी चाहिए। इन सबकी समझ प्रार्थी को इन योग्यताओं और उत्तरदायित्वों के प्रयोग से पहले ही

हो जानी चाहिए। इसके लिये परामर्शदाता को परीक्षण–संचालन (Test Administration) और परीक्षण अंकों की व्याख्या का अनुभव होना आवश्यक है। परीक्षण–अंक (Test Scores) निदान और पूर्व अनुमान (Diagnosis & Prognosis) का परामर्श प्रक्रिया में ठोस आधार प्रदान करते हैं।

3. क्रिया के लिये कार्यक्रम का नियोजन और सुझाव (Advising and Planning a programme of action)- परामर्शदाता प्रार्थी के लक्ष्यों, उसकी अभिवृत्तियों या दृष्टिकोणों (Attitudes) आदि से प्रारम्भ करता है तथा अनुकूल और प्रतिकूल (favourable & Unfavourable) आंकड़ों या तथ्यों की ओर संकेत करता है। वह साक्षियों या प्रमाणों (Evidences) को तोलता है और वह इस तथ्य को समझता है कि वह विद्यार्थी को कोई विशेष सुझाव क्यों दे रहा है। विलियमसन का मानना हे कि परामर्शदाता को अपने दृष्टिकोण का कथन निश्चितता से करना चाहिए। उसे निर्णायक (Indecisive) की तरह नहीं दिखना चाहिए।

परामर्शदाता प्रत्यक्ष सुझाव या सलाह देने से नहीं डरता क्योंकि विद्यार्थी आंकड़ों का उपयोग नहीं समझ सकता। विलियमसन ने आंकड़े इकट्ठे करने के पश्चात् विद्यार्थी को सलाह देने की निम्न विधियाँ बताई है–

1) प्रत्यक्ष सलाह (Direct advising)- इसमें परामर्शदाता निर्भय होकर अपनी राय बता देता है। इस

प्रकार की पद्धति बड़े कठोर मस्तिष्क (Tough- minded) वाले रोगों के लिये उपयुक्त है जो किसी भी क्रिया या गतिविध का विरोध करते हैं तथा फेल होने से भी नहीं डरते।

2) अनुरोधक विधि (Persuasive Method)- यह विधि तब लाभकारी होती है जब आंकड़े स्पष्ट रूप से कोई निश्चित विकल्प की ओर संकेत करते हैं। परामर्शदाता प्रमाणों का केवल विश्लेषण करता है और विकल्पित क्रियाओं (Alternate Actions) के परिणामों को देखता है।

4. व्याख्यात्मक विधि (Explanatory Mehod)- व्याख्यात्मक विधि परामर्श में सबसे अधिक वांछित विधि है। इसमें परामर्शदाता ध्यानपूर्वक लेकिन धीरे–धीरे निदानात्मक आंकड़े (Diagnostic Data) को समझता है और उन संभावित स्थितियों की ओर संकेत करता है जिनमें विद्यार्थी की शक्तियों या क्षमताओं (Potentialities) का प्रयोग किया जा सकता हो। इसमें आंकड़ों के उपयोग को सविस्तार और ध्यानपूर्वक तर्क सहित समझाया जाता है।

इसके पश्चात् प्रार्थी के निर्णय या रूचि को जानकर साक्षात्कार इस निर्णय को लाकर करने के लिये प्रत्यक्ष सहायता प्रदान कर सकता है। इस सहायता में उपचारात्मक कार्य (Remedial Work) और शैक्षिक या शिक्षण नियोजन का कार्य सम्मिलित होते हैं।

4. अन्य कार्यकर्त्ताओं का सहयोग (Referral to other personnel Workers)- कोई भी परामर्शदाता सभी प्रकार की विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। उसे अपनी सीमाओं (Limitations) को पहिचानना चाहिए तथा उसे विशिष्टीकृत सहायता (Specialized help) के स्रोतों (Sources) का ज्ञान होना चाहिए। उसे विद्यार्थियों को अन्य उपयुक्त स्रोतों से सहायता प्राप्त करने की सलाह देनी चाहिए ।

इन उपरोक्त प्रविधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य परामर्श प्रविधियाँ भी हैं जो निम्नलिखित हैं–

1) मौन धारण (Silence) – कभी–कभी कई परिस्थितियों में मौन रहकर किसी की बात को सुनना बोलने से अधिक प्रभावशाली होता है। जब प्रार्थी अपनी समस्या का वर्णन कर रहा होता है तब परामर्शदाता मौन धारण कर लेता है। इससे प्रार्थी को यह विश्वास हो जाता है कि परामर्शदाता प्रार्थी की बात को बड़े गौर से सुन रहा है तथा उस पर गंभीरता से विचार कर रहा है।

2) स्वीकृति (Acceptance)- परामर्शदाता प्रार्थी की बात को अस्थाई स्वीकृति दे। कई बार परामर्शदाता कुछ शब्द इस प्रकार से कह देता है कि उनसे यह मालूम पड़ जाता है कि प्रार्थी जो कुछ कह रहा है उसे वह स्पष्टतः समझ रहा है। परन्तु इन शब्दों को परामर्शदाता इस तरह कहता है जिससे प्रार्थी के बोलने के धारा प्रवाह में कोई रूकावट नहीं आती। 'उदाहरणार्थ' 'ठीक है', 'बहुत अच्छा है' केवल स्वीकारात्मक ढंग से सिर ही हिला देता है।

3) स्पष्टीकरण (Clarification)- कई अवसरों पर परामर्शदाता को चाहिए कि वह प्रार्थी की बातों का या उस दिये गये वर्णन का स्पष्टीकरण करें। परामर्शदाता का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रार्थी को इस बात से परिचित करा दे कि वह उसे समझ रहा है तथा स्वीकार करता है। परन्तु कभी–कभी परामर्शदाता को यह आवश्यक हो जाता है कि वह प्रार्थी के वर्णन का स्पष्टीकरण कर दे किन्तु स्पष्टीकरण करते समय प्रार्थी को किसी प्रकार की जोर जबरदस्ती का आभास न हो।

4) पुनक्रथन (Restatement)- स्वीकृति एवं पुनरावृत्ति दोनों से ही प्रार्थी को यह बोध होता है कि परामर्शदाता उनकी बात को समझ रहा है तथा स्वीकार करता है। पुनरावृत्ति के

द्वारा परामर्शदाता उनकी बात को समझ रहा है तथा स्वीकार करता है। पुनरावृत्ति के द्वारा परामर्शदाता उसी बात को दोहराता है जिसे प्रार्थी ने वर्णित किया है परन्तु परामर्शदाता पुनक्रथन के समय किसी प्रकार का संशोधन या स्पष्टीकरण प्रार्थी के मापन में नहीं करता है।

5) मान्यता (Approval)- अपनी समस्या के बारे में प्रार्थी विभिन्न विचार व्यक्त करता है। परामर्शदाता इन विचारों में से कुछ को मान्यता प्रदान कर देता है तथा कुछ नहीं को नहीं। जिन विचारों को मान्यता प्रदान कर दी जाती है वे प्रार्थी को अत्याधिक प्रभावित करते हैं। प्रार्थी परामर्शदाता के ज्ञान एवं व्यक्तित्व से भी प्रभावित होता है। यदि परामर्शदाता बीच–बीच में प्रार्थी के विचारों को मान्यता देता रहता है तो मान्यता प्रभावहीन हो जाती है। इस ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

6) प्रश्न पूछना (Asking)- प्रार्थी को अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक विचार करने की प्रेरणा देने के लिये परामर्शदाता को कुछ प्रश्न पूछने चाहिए। ये प्रश्न प्रार्थी के वक्तव्य का अंश समाप्त होने के पश्चात् ही पूछे जाने चाहिए।

7) हास्य रस (Humour) - परामर्श के दौरान प्रार्थी के तनाव दूर करने के लिये तथा वार्तालाप को रूचिकर बनाने के लिये हास्य रस (Humour) का प्रयोग करना भी एक आवश्यकता सी बन जाता है।

8) सारांश स्पष्टीकरण (Summary Clarification)- प्रार्थी के वक्तव्य का कुछ भाग लाभकारी नहीं भी हो सकता। इसके कारण समस्या स्वयं ही प्रार्थी को अस्पष्ट दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में परामर्शदाता के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह प्रार्थी के भाषण को संक्षिप्त करे तथा उसका संगठन करे जिससे विद्यार्थी समस्या को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सके। परामर्शदाता का प्रयास यही रहना चाहिए कि वह कभी भी अपनी ओर से विचार न जोड़े।

9) विश्लेषण (Analysis)- प्रार्थी की समस्या के लिये परामर्शदाता समाधान प्रस्तुत करने की पहल कर सकता है। लेकिन परामर्शदाता प्रार्थी से उस हल पर अमल नहीं करवा सकता। परामर्शदाता प्रार्थी पर ही छोड़ देता है कि वह समाधान को स्वीकार करे या अस्वीकार करे या उसमें कुछ संशोधन करे। इस सम्बन्ध में प्रार्थी पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता।

10) व्याख्या या विवेचना (Interpretation)- परामर्शदाता को प्रार्थी के वक्तव्य की ही विवेचना या व्याख्या करने का अधिकार होना चाहिए। उसे अपनी तरफ से कुछ नहीं जोड़ना

चाहिए। परामर्शदाता व्याख्या द्वारा प्रार्थी के वक्तव्य का परिणाम निकालता है। इन निष्कर्शों को निकालने में अकेला प्रार्थी असमर्थ होता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि परामर्शदाता द्वारा निकाले गये निष्कर्श अन्य परीक्षणों द्वारा निकाले गये निष्कर्शों से मेल खा सकते हैं और नहीं भी।

11) परित्याग (Regression)- कई बार प्रार्थी जो कुछ सोचता या कहता है वह त्रुटिपूर्ण होता है । इस प्रकार की त्रुटिपूर्ण विचार धाराओं को त्यागना चाहिए। इसका परित्याग करने के लिये परामर्शदाता को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए ताकि प्रार्थी विद्रोही प्रवृत्ति का न हो जाये और इस परित्याग का प्रार्थी उल्टा अर्थ न निकाल ले।

12) आश्वासन (Assurance)- परामर्श की सबसे महत्त्वपूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष से जुड़ी प्रविधि (Technique) के रूप में 'आश्वासन' प्रदान करने से विद्यार्थी की समस्या हल होने की आशा बँध जाती है। आश्वासन द्वारा परामर्शदाता प्रार्थी के कथनों को स्वीकार भी करता है और स्वीकृति के साथ–साथ अनुमोदित (Support) या समर्थन प्रदान करता है।

आश्वासन के समान प्रभाव दिखाई देते हैं। आश्वासन को स्वीकृति से अधिक विस्तृत या व्यापक माना जाता है। अतः आश्वासन में स्वीकृति भी सम्मिलित होती है।

7.4 परामर्शन प्रक्रिया के प्रकार

परामर्श प्रक्रिया की प्रकृति को देखते हुए तथा परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए यहां पर परामर्श की पॉच प्रमुख विचारधाराओं पर प्रकाश डाला जा रहा हैं–

1. व्यक्तिगत परामर्शन
2. परिवारिक
3. कैरियर परामर्शन
4. निर्देशीय या परामर्शदाता–केन्द्रित या नियोजक–परामर्श (Directive or Cousellor centre or Prescriptive counseling)
5. अनिर्देशीय या प्रार्थी –केन्द्रित या अनुमत परामर्श (Non- Directive or Client Centred or Permissive Counseling)

7.5 व्यक्तिगत परामर्शन

व्यक्तिगत परामर्श का अर्थ– व्यक्तिगत परामर्शन जैका कि नाम से स्पष्ठ है परामर्शदाता द्वारा उनकी निजि समस्याओं के बारे में दिया हुआ परामर्श है।व्यक्तिगत

परामर्श व्यक्ति को एक डिजाइन परामर्श प्रदान करता है जिसमें उसे गोपनीय सेटिंग में अपनी वयक्तिगत सामाजिक और शैक्षणिक मामलों के बारे में मार्गदर्शन, समर्थन और एक सुरक्षा का अवसर प्रदान किया जाता है।

छात्र परामर्श का उद्देश्य– व्यक्तिगत परामर्श छात्रों की ताकत की पहचान करने और सीखने के माहौल में व्यक्तिगत विनाश और कौशल बढ़ाने के लिये डिजाइन किया गया है।

व्यक्तिगत परामर्श क्यों– अक्सर कॉलेज जीवन के साथ जुड़ी हुई समस्यायें इसका प्रमुख कारक होती हैं। सम्भावित नयी स्वतन्त्रता, रोमांचक जीवन विकल्प की मांग, विकास, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता आदि समस्याओं का मिश्रण का सामना शिक्षाविदों को करना पड़ा जिसे हल करने की चुनौती उनके सामने थी।

व्यक्तिगत परामर्श– व्यक्तिगत सफलता और सन्तुष्टि, शैक्षिक प्रगति, सामाजिक विकास,व्यक्तिगत चिन्ताओं के साथ हस्तक्षेप कर समर्थन प्रदान कर सकता है।

वैयक्तिक परामर्शन– प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में व्यक्तिगत परामर्शन विशेष महत्व है। स्वास्थ्य, परिवार मानसिक संतुलन तथा सामाजिक जीवन से संबंधित विभिन्न समस्याएं इसके अन्तर्गत आती हैं। लेट्टर डी.क्रो एण्ड क्रो के अनुसार ''व्यक्तिगत परामर्शन का तात्पर्य व्यक्ति को प्रदत्त उस सहायता से है, जो उसके जीवन के समस्त क्षेत्रों तथा अभिवृत्तियों के विकास को दृष्टि में रखकर उचित समायोजन की दिशा में निर्दिष्ट होती है।''

व्यक्तिगत परामर्शन में व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक या संवेगात्मक सम्बन्ध जो कि व्यक्ति स्वयं (Self) से विकसित कर लेता है, शामिल किया जाता है व्यक्तिगत परामर्शन में मानसिक, सामाजिक एवं भौतिक पक्षों में सामंजस्य (Balance) पैदा करना होता है व्यक्तिगत परामर्शन में निम्न प्रकार की समस्याओं का समाधान सम्भव है।

1. स्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास सम्बन्धी समस्याएँ
2. पारिवारिक जीवन एवं पारिवारिक सम्बन्धों से जुड़ी समस्याएँ
3. संवेगात्मक व्यवहार से सम्बन्धित समस्याएँ
4. यौन, प्रेम एवं विवाह सम्बन्धी समस्याएँ
5. आर्थिक समस्याएँ
6. धर्म, चरित्र, आदर्श एवं मूल्यों से सम्बन्धित समस्यायें

6. सामाजिक सम्बन्धों से जुड़ी समस्याएँ।

व्यक्तिगत परामर्शन का महत्व– बहुधा व्यक्ति अपने समस्याओं के लिये उल्टा सीधा उपाय अपने इष्ट मित्रों की सलाह बड़ों की व अपने अध्यापकों की सलाह पर लेता है। यह परामर्श व्यावहारिक रूप से कामचलाऊ होने पर भी वैज्ञानिक दृष्टि से ठीक होना कठिन है। क्योंकि ये सब अपने–अपने अनुभव के आधार पर राय देते हैं। इस सबसे कुछ सुझाव अवश्य मिल सकता है, परन्तु दूसरों के उदाहरण पर आँख बन्द करके काम करना खतरे से खाली नहीं है।

ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति विस्तृत अध्ययन और मनोवैज्ञानिक ज्ञान के द्वारा स्वयं अपनी समस्या सुलझाये या फिर इस तरह की समस्या को मनोवैज्ञानिक परामर्श की आवश्यकता है। किन्तु यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि परामर्श समस्या को पूरी तरह हल नहीं कर सकता। मनोवैज्ञानिक परामर्शन केवल सुझाव के रूप मेंहोता है यद्यपि यह सुझाव ऊँचे वैज्ञानिक स्तर का होता है। इस सुझाव का लाभ उठाने के लिये व्यक्ति में अपनी ही समझदारी, नमनीयता और कौशल की आवश्यकता है।

व्यक्तिगत परामर्शन की प्रक्रिया– व्यक्तिगत परामर्श में पहली शर्त है कि जिस व्यक्ति को परामर्शन देना है उसे पूरी तरह समझ लिया जाय। व्यक्ति को स्वयं अपना सारा जीवन वृत्त, तात्कालिक परिस्थिति, भावनायें, विचार क्रियायें तथा मुख्य–मुख्य सी बातें मनोवैज्ञानिक को विस्तार से बतला दे और इस बारे में कुछ भी छिपाने की कोशिश न करें, चाहे उसको कहने में उसे कितना भी संकोच लगता हो क्योंकि वास्तव में यह देखा गया है कि कठिनाइयों के मूल कारण बहुधा ऐसी ही बातों में होते हैं जिनसे मनुष्य भागना चाहता है, जिसको वह दूसरों को बतलाना तो क्या उनके बारे में सोचना भी नहीं चाहता। व्यक्तिगत परामर्शन में मनोवैज्ञानिक को व्यक्ति के सहयोग से तथा विभिन्न परीक्षणों की सहायता से उसके बारें में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

व्यक्तिगत परामर्शन में पाँच सोपान Steps होते हैं।

1. तथ्यों को एकत्रित करना (Gathering the Facts)
2. समस्या का निदान (Diagnosis of the Problem)
3. फलानुमान (Prognosis)
4. चिकित्सा (Therapy)
5. अनुवर्ती अध्ययन (Follow-up-Studie)

1. **तथ्यों को एकत्रित करना**– यह सबसे महत्वपूर्ण कदम है, ये दो तरह के हो सकते हैं। एक तो उस विशेष समस्या से सम्बन्धित दूसरे व्यक्ति के जीवनवृत्त से सम्बन्धित। सभी तरह की जानकारी के लिये मनोवैज्ञानिक को निरीक्षण साक्षात्कार तथा विभिन्न परीक्षणों से काम लेना पड़ता है। साक्षात्कार व्यक्ति उसके माता–पिता और अन्य निकट सम्बन्धियों तथा मित्रों से भी साक्षात्कार के द्वारा जानकारी की जाती है। साक्षात्कार में मनोवैज्ञानिक कम से कम बोले, ऐसे प्रश्न करे जिससे सही जानकारी प्राप्त की जा सके व व्यक्ति को अधिक से अधिक बोलने दे। साक्षात्कार के लिये सूचनाओं का परिपार्श्व चित्र बनाना होता है। इस परिपार्श्व चित्र में व्यक्ति के परिवार, स्कूल तथा योग्यताओं के बारे में विस्तृत जानकारी एकत्र की जाती हैं। इसमें संचित वृत्त, अभिभावक पत्री और अध्यापक पत्री के अतिरिक्त अनेक परीक्षणों के परिणाम भी सम्मिलित होते हैं।

परिपार्श्व चित्र की रूपरेखा कुछ निम्नलिखित विवरण की तरह होती है–

अ– शारीरिक विवरण

ब– पारिवारिक विवरण

स– सामाजिक विकास का इतिहास

द– विद्यालय के जीवन का इतिहास

इ– मानसिक योग्यतायें

उ– व्यक्ति के गुण

2. **समस्या का निदान (Diagnosis of the Problem)** – तथ्य एकत्रित करने के बाद अब मनोवैज्ञानिक का अपना निजी काम प्रारम्भ होता है। इन सूचनाओं में छिपे हुए प्रतिमान (Pattern) प्रकट हो जाते हैं। इन प्रतिमानों का प्रकट करना ही कारणों का निदान है। यह निदान समस्या के उपचार की पृष्ठभूमि है। जितना ही अच्छा निदान होगा उतना ही सरल उपचार किया जा सकता है।

3. **फलानुमान (Prognosis)-** फलानुमान, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है , परामर्श के फल का अनुमान लगाना है। मनोवैज्ञानिक यह अनुमान लगाता है कि वह व्यक्ति की समस्या का समाधान कहाँ तक कर सकता है अथवा उसको उस समाधान में कहाँ तक सफलता मिलने की आशा है। जैसे पिछली योग्यता को देखकर भविष्य में सफलता का अनुमान।

4. **चिकित्सा (Therapy) -** चिकित्सा में मनोवैज्ञानिक को समस्या का सन्तोषजनक

उपचार करना होता है। समस्या के बारे में एकत्रित की गई सूचनाओं के परिपार्श्व पत्र के देखकर तथा मनोवैज्ञानिक से साक्षात्कार होने के बाद परामर्शेच्छु अपनी –अपनी समस्या को बहुत कुछ स्वयं समझ जाता है और कभी–कभी समाधान भी निकाल लेता है। मनोविश्लेषणविधि में मानसिक रोगो का उपचार करने में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड यही करते थे। रोगी के अचेतन कारण को समझ लेते थे सो उसका रोग बहुत कुछ दूर हो जाता था।

5. **अनुवर्ती अध्ययन (Follow-up- Studies)-** मनोवैज्ञानिक का कार्य केवल परामर्श देना ही नहीं बल्कि यह देखना भी है कि उस परामर्श से वास्तव में कितनी सफलता होती है। व्यक्ति से बराबर सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है और इस विषय में छानबीन करनी पड़ती है कि समस्या कहाँ तक सुलझी है। इससे अनुभव भी बढ़ता है और बहुत कुछ प्रयत्न और भूल से सीखना पड़ता है।

अनुवर्ती अध्ययन में मुख्य रूप में निम्नलिखित पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है।

1. पत्रों द्वारा अनुवर्ती अध्ययन (Follow-up-through letters)
2. कार्ड फाइल विधि (Card File Method)
3. कार्ड फाइल विधि (Card File Method) इसमें दोबारा सम्पर्क स्थापित करने की तिथियां लिख ली जाती हैं। यह मनोवैज्ञानिक को पिछले परामर्शित व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने को उत्तेजित करती है।
4. टेलीफोन

व्यक्तिगत निर्देशन का एक उदाहरण – इलाहाबाद के एक स्थानीय कॉलेज का प्रोफेसर स्थानीय केन्द्रीय जेल को देखने गया। वहाँ उसने एक लड़का देखा जो कि सेंध लगाने और चोरी करने के अपराध में 6 महीने की सजा काट रहा था। प्रोफेसर ने लड़के को प्रवीक्षण (Prbation) पर छुड़वा लिया और उसको अपने साथ रख लिया। लड़के ने प्रोफेसर के साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया और अपनी चोरी करने की आदत जारी रखी।

बहुधा वह एक दो दिन के लिये गायब भी हो जाता था आखिरकार प्रोफेसर ने उस लड़के को उसके माँ –बाप को सौंप दिया जो कि कॉलेज में ही रहते थे। लड़का स्कूल भेज दिया गया जहाँ उसे छठी कक्षा में भर्ती कर लिया गया। परन्तु लड़के की प्रगति किसी भी तरह सन्तोषजनक नहीं थी। मनोवैज्ञानिक परीक्षण करने पर वह बौद्धिक शक्तियों में निश्चित रूप के औसत से कम निकला, परन्तु उसकी व्यावहारिक योग्यता औसत से थोड़ी

अच्छी थी। उसकी अन्य शक्तियाँ निश्चित रूप से हीन थी। वह स्वभावतया ही अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान न देता था। उसको सामाजिक कार्यों में बिल्कुल रूचि न थी। कभी–कभी वह खेद और अपराध (Guilt) की भावना से भर उठता परन्तु फिर दूसरे समय वह अत्यधिक आक्रामक और असामाजिक दिखाई पड़ता। इस लड़के की व्यक्तिगत निर्देशन के लिये मनोवैज्ञानिक केन्द्र में लाया गया। मनोवैज्ञानिकों ने यह राय दी कि उसके परिवेश को श्रेष्ठतर बनाने की आवश्यकता है। एक समझने वाला सहानुभूतिशील व्यक्ति उसके अनुकूलन को बहुत श्रेष्ठतर बना सकता है। उसको आगे पढ़ाने से कोई लाभ नहीं है। उसको कोई मशीन का काम सिखाना चाहिये। मनोवैज्ञानिकों ने यह भी अनुभव किया कि इस लड़के को नियमित मानसिक चिकित्सा की भी आवश्यकता है, परन्तु मनोवैज्ञानिक केन्द्र से इसका सम्बन्ध न होने के कारण ऐसा न हो सका। फिर भी मनोवैज्ञानिकों के परामर्श से लड़के के कुछ लाभ अवश्य हुआ वह अपनी कुछ कठिनाइयों को जान गया। इससे उसको अनुकूलन में सहायता मिली।

7.6 पारिवारिक परामर्शन

वर्तमान युग में औद्योगिक एवं संचार के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रगति के कारण पारिवारिक, सामाजिक , औद्योगिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं जिस कारण समस्याओं में भी वृद्धि हो रही हैं इन समस्याओं के समुचित आकलन के आधार पर निर्देशन एवं परामर्श दिया जा सकता है। बालक के व्यक्तित्व विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। इनमें परिवार का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। परिवार ही वह संस्था है जहाँ बालक के संस्कार निर्मित होते हैं। इन संस्कारों का प्रभाव बालक के भावी जीवन व व्यक्तित्व पर पड़ता है अर्थात परिवार के साँचे में व्यक्ति का जो रूप ढलता है वह व्यक्ति के जीवन भर उसके साथ–साथ चलता है। परिवार के महत्व को दृष्टिगत कर ही पारिवारिक निर्देशन की आवश्कता होती है। परिवार में जीवन की जो दीक्षा बालक को मिलती है उसी के अनुसार वह आचरण या व्यवहार करता है। परन्तु आज जीवन के सामाजिक ,आर्थिक सभी पक्षों में वैज्ञानिक प्रगति के कारण तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। परिवार भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं है। परिवार विघटन आज की ज्वलंत समस्या है। कई बार पारिवारिक प्रभाव एवं संस्कार बालक के लिए झेलना कठिनाई उपस्थित करते हैं। इन समस्याओं के समाधानार्थ निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता होती है। यह समस्याएं निम्नलिखित हैं–

1. **परिवार की संरचना में परिवर्तन**– आज संयुक्त परिवारों का स्थान एकल परिवार लेते जा रहे हैं। विवाह की संस्था पर भी धर्म, समाज व परिवारिक बंधन ढीले पड़ रहे हैं।

अन्तर्जातीय विवाह स्वीकृत होते जा रहे हैं। इस प्रकार पीढ़ीगत वैचारिक मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं, समायोजन की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है, अतः पारिवारिक निर्देशन व परामर्श की आवश्यकता होती है।

2. **स्त्रियों का नौकरी करना**– अब स्त्रियों का कार्यक्षेत्र केवल घर तक ही सीमित नहीं रहा। वे आज विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हैं। इसके कारण उनकी भूमिकाओं में परिवर्तन आ रहा है। बालकों के पालन–पोषण का भार अब या तो नौकरों पर, शिशुगृहों अथवा डे–बोर्डिंग विद्यालयों पर आ गया है।

3. **पति–पत्नी के रिश्ते में बदलती अभिवृत्ति**– आज इन संबंधों में भावात्मकता का अभाव पाया जाता है व तर्क तथा बौद्धिकता के आधार पर रिश्तों का निर्वाह करने की परम्परा विकसित हो रही है– विशेषकर शहरों में। थोड़ी सी भी असहनशीलता संबंध विच्छेद की मांग पर टिक जाती है जिसका असर बालकों पर पड़ता है।

4. **माता–पिता व बच्चे के सम्बन्धों में अभिवृत्ति परिवर्तन**– वर्तमान में बच्चों के प्रति माता–पिता की अभिवृत्ति अधिक स्वतंत्रतापूर्ण है। परन्तु कई बार आवश्यकता से अधिक स्वतंत्रता बालकों में जिद्दीपन, उग्रता, एकाधिकार आदि की भावना विकसित कर देते हैं। दूसरी तरह सत्तावादी प्रवृत्ति वाले अभिभावकों के बालकों में शर्मीलापन, अन्तर्मुखता तथा निर्णय में पर निर्भरता का भाव विकसित हो जाता है। अतः बच्चों के प्रति किस प्रकार के संबंध अपनाएं जाएं यह समस्या आती है।

इस प्रकार पारिवारिक संस्था के महत्व को देखते हुए ही आज विभिन्न कारणों से पारिवारिक निर्देशन की आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

बुद्धिमान माता–पिता बालक के लिए वरदानस्वरूप होते हैं। ज्यों ही समस्या उत्पन्न हों, परिवार का कोई व्यक्ति इस ओर ध्यान दे जिसे बालक के जीवन के पड़ावों का ज्ञान हो। यदि किसी स्थिति में माता–पिता या परिवार के सदस्य यह अनुभव करें कि उनका ज्ञान पर्याप्त नहीं है तो वे किसी विशेषज्ञ से परामर्श ले लें। सामान्यतः परिवार के सदस्य इस प्रकार अपनी भूमिका निभा सकते हैं।

1. माता–पिता वाद–विवाद की जगह बच्चे के सुधार पर अधिक ध्यान दें।

2. बालकों से यह अपेक्षा न की जाए कि वह बहुत बड़ा आदमी बने। बार–बार इस प्रकार कहने से बालक को विरक्ति हो सकती है। वरन् ऐसा वातावरण उत्पन्न करें कि बालक स्वयं प्रेरित होकर अच्छा या बड़ा व्यक्ति बनने का प्रयास करे।

3. बालकों की तुलना कभी भी किसी अन्य से न की जाए इससे उसके व्यक्तित्व को आघात पहुँच सकता है।

4. हर बात पर हस्तक्षेप न किया जाए। हर बात पर नियंत्रण व हस्तक्षेप करने से माता–पिता आदर नहीं पा सकते ।

5. बालक के सम्मुख कभी भी शिक्षकों की या स्कूल की आलोचना नहीं करनी चाहिए अन्यथा उनके प्रति बालक के मन में आदर भाव नहीं रहेगा। माता–पिता शिक्षकों की बात को ध्यान से सुनें उसकी अवहेलना न करें अन्यथा बालक को हानि पहुंचने की संभावना हो सकती है।

इस प्रकार पारिवारिक निर्देशन व परामर्श अभिभावकों को अपने बच्चों के प्रति कैसी अभिवृत्ति रखें व व्यवहार करें, इस हेतु आवश्यक है।

7.7 कैरियर परामर्शन

हमारा जीवन उपलब्धियों के महासागर में खिलकर ऐसा कमल का फूल बने कि समूचा परिवेश उससे सुवासित हो, ऊर्जस्वित हो, सुगंधित हो। इसके लिए हमें कामयाबी के अद्‌भुत तथा कंटकाकीर्ण मार्गसूत्रों का अनुसरण करना होगा। अधिक परिश्रम, योग्यता एवं कुशलता के साथ किया गया कार्य निःसंदेह प्रगति के मार्ग को प्रशस्त करता है।

जीवन विकास की यात्रा में निरंतर क्रियाशील व्यक्ति ही कामयाबी के आकाश को स्पर्श करता हैं आगे बढ़ते रहना ही सफलता की कुंजी है। प्रवाहमान पानी गंगाजल है रूका हुआ दुगंध का बसेरा। गति ही जीवन है, विकास है। ईंटों का ढेर तो इमारत नहीं कहलाता । स्पष्ट आदर्श, निश्चित लक्ष्य और दृढ़ उद्‌देश्य ही हमारी जिंदगी को सृजनशील, कुशल व खुशनुमा बनाते हैं।

कैरियर को पसंदगी, किस्मत या इक्तिफाक पर नहीं छोड़ देना चाहिए। यदि हमारे जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है तो हम जीवनरूपी महासमुद्र में वैसे ही गोते खाते रहेंगे जैसे बिना पतवार की नाव, जबकि जीवन के प्रति सुनिश्चित लक्ष्य हमारी क्षमताओं व शक्तियों को एक सूत्र में पिरो देगा व जीवन की बगिया में सफलता के सुंदर पुष्प महक उठेंगे। जीविकोपार्जन हेतु विभिन्न व्यावसायों में से उपयुक्त व्यवसाय का चयन, योग्यता अर्जन का कार्य कैरियर परामर्श द्वारा किया जाता है। व्यवसाय चयन का आधार व्यक्तित्व शैली, विकासात्मक अवस्थाएँ, तथा जीवन – भूमिकाएँ होती हैं। व्यवसाय चयन व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करता है। कार्यगत भूमिकाओं तथा जीवन चयन व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन

को प्रभावित करता है। कार्यगत भूमिकाओं तथा जीवन से संबंधित अन्य भूमिकाओं में एक अन्तर्संबंध हैं कैरियर परामर्श एक अन्तर्वैयक्तिक प्रक्रिया है जो कि कैरियर के विकास से संबंधित समस्याओं के समााधानार्थ दी जाती हैं कैरियर विकास किसी व्यवसाय का चयन या प्रवेश करने , उसमें समायोजित होने तथा प्रगति करने की प्रक्रिया है। यह जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

कैरियर परामर्श को विभिन्न नामों से जाना जाता है यथा व्यावसायिक परामर्श, व्यवसाय (Occupation) परामर्श आदि। क्राइट्स के अनुसार ' कैरियर' शब्द अधिक आधुनिक तथा विस्तृत है अपेक्षाकृत व्यवसाय परामर्श के जैसा कि हेर तथा क्रेमर (Herr and Cramer) ने परिभाषित किया है कि – "A group of similar jobs found in different industries or organizations". कैरियर परामर्शदाता को कैरियर संबंधी निर्णय लेने में प्रार्थी/ विद्यार्थी संबंधी अनेक कारकों (Factors) को ध्यान में रखना होगा।

कैरियर जीवन में घटित कई घटनाओं के फलस्वरूप विकसित कोर्स है जिनसे जीवन का निर्माण होता है। कैरियर का अस्तित्व व्यक्ति केन्द्रित (Person centred) है।

कैरियर परामर्श किसी विद्यार्थी को किसी कार्यक्षेत्र में स्वयं का सही और समेकित चित्र तथा उसकी भूमिका विकसित करने, स्वीकार करने, परीक्षण करने, अपने संतोष तथा समाज की उपयोगिता के अनुसार यथार्थ में बदलने की प्रक्रिया है।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप अनेक प्रकार के नए व्यवसायों का विकास हो रहा है लेकिन कार्य जगत में होने वाले इन परिवर्तनों के अनुरूप पाठ्यक्रमों में परिवर्तन नहीं किया जाता इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाए जो उनकी रूचि के अनुकूल हो और इन्हें एक ऐसे कैरियर के लिए तैयार करे जो उनकी प्रगति में सहायक हो।

कैरियर परामर्श का क्षेत्र व्यावसायिक चयन से लेकर व्यावसायिक सफलता तक व्याप्त है। इस क्रम में विद्यार्थी को जिस जानकारी की आवश्यकता होती है उसे विद्यालयों/शिक्षण संस्थाओं में कैरियर मास्टर्स द्वारा तथा मनोवैज्ञानिकों आदि कार्मिकों के सहयोग से प्रदान किया जाता है।

व्यवसाय का चयन एक पल में या कम अवधि में नहीं हो जाता वरन् इसके विकास की एक लम्बी प्रक्रिया होती है। शारीरिक विकास की भांति ही व्यावसायिक विकास की भी

अनेक अवस्थाएं होती हैं। इस संबंध में अनेक सैद्धान्तिक अवधारणाएं प्रचलित हैं जिनमें से प्रमुख तीन निम्नलिखित हैं–

1. शीलगुण एवं कारक सिद्धांत ।
   (Trait and factor theories)
2. विकासात्मक सिद्धांत ।
   (Developmental Theories)
3. संरचनात्मक सिद्धांत ।
   (Structural Theories)

1. शीलगुण एवं कारक सिद्धांत (Trait and factor theories)

व्यक्ति के उन शीलगुणों पर आधारित हैं जो कि उस व्यवसाय में जिसमें वह कार्यरत है, ये समरूपता रखते हैं।

अ– व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, आकांक्षाओं एवं सीमाओं की स्पष्ट समझ या इनका पूर्व ज्ञान।

ब– कार्य या व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों से संबंद्ध आवश्यकताओं, सफलता के लिए वांछित दशाओं, लाभों तथा हानियों, क्षतिपूर्ति तथा विकास के अवसरों का व्यक्ति को ज्ञान।

स– उपरोक्त दोनों तथ्यों के मध्य संबंधों की सही तर्कपूर्ण धारण का व्यक्ति में विकास।

इस प्रकार इस सिद्धांतानुसार व्यवसाय विकास को एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है जिसमें व्यक्ति किसी निर्णय पर पहुँचने से पूर्व तर्क का सहारा लेता है। इस प्रकार परामर्श का आधारभूत दायित्व विद्यार्थी में तर्क क्षमता का विकास करना है।

2. विकासात्मक सिद्धान्त (Developmental Theories)

व्यावसायिक विकास एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है जो प्रारंभिक बाल्यावस्था से लगभग 20 वर्ष की आयु तक चलती है। इन अवस्थाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है–

अ– कल्पनात्मक अवस्था (Fantasy period)- प्रारम्भ के 10 वर्ष।

ब– अंतरिम अवस्था (Tentative Period)- 11 से 17 वर्ष।

स– वास्तविक अवस्था (Reality Period)- यह अवस्था लगभग 18 वर्ष से प्रारंभ होकर

तब तक चलती रहती है जब तक कि व्यक्ति किसी व्यवसाय में लग नहीं जाता ।

3. संरचनात्मक सिद्धांत (Structural Theories)

इन सिद्धांतों का विकास इस अन्वेषण के संदर्भ में हुआ कि एक व्यक्ति विशिष्ट व्यवसाय में क्यों लग जाता है, व्यावसायिक चयन के पीछे अनतर्निहित कौन सी विशिष्टताएँ या गुण हैं जो किसी व्यक्ति को एक विशेष व्यवसाय हेतु प्रेरित करते हैं। हालैंड के अनुसार वास्तविकतावादी (Realistic) व्यक्तियों में निम्न स्तरीय सामाजिक कुशलता एवं संवेदनशीलता पायी जाती है और यह अंतर्वैयक्तिक एवं मौखिक कार्यकुशलता संबंधी कार्यों से भागते हैं। बौद्धिक व्यक्तियों में चिंतन की योग्यता कार्य करने की अपेक्षा अधिक पाई जाती है और ये सामाजिक व्यक्तित्व वाले शिक्षण जैसे कार्यों की ओर उन्मुख होते हैं, परम्परागत व्यक्तित्व वाले पद–सम्मान, सत्ता एवं शक्ति से सम्बद्ध व्यवसायों में अधिक रूचि रखते हैं, उद्यमशील व्यक्तित्व प्रधान वाक्चातुर्य व लोगों पर अपना प्रभाव जमाने में रूचि रखते हैं, कलात्मक व्यक्तित्व वाले आत्मभिव्यक्ति को सर्वाधिक महत्व अपने व्यवसाय के अंतर्गत प्रदान करते हैं।

निर्देशन एवं परामर्श में उक्त सैद्धान्तिक विचारधाराएँ विशेष महत्व रखती हैं क्योंकि व्यवसाय हेतु निर्धारक शीलगुणों एवं कारकों, विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्ति की आवश्यकताओं व व्यक्तित्व संरचना का ज्ञान परामर्शकों को आधारभूत है।

वर्तमान में अनेक विद्यार्थी विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में प्रवेश लेते समय अपने भावी कैरियर अथवा जीविकोपार्जन के साधन को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का चुनाव नहीं करते हैं यही कारण हे कि उनकी शिक्षा दिशाहीन होती है। इसलिए यह जरूरी है कि उन्हें उपयुक्त समय पर ही कैरियर संबंधी परामर्श दिया जाए।

कैरियर परामर्श के लिए विभिन्न प्रकार के व्यवसायों की जानकारी देना आवश्यक है अन्यथा विद्यार्थी इनके अभाव में कैरियर संबंधी गलत निर्णय ले सकते हैं। इसके लिए कम्प्यूटर आधारित अनेक कार्यक्रम कैरियर संबंधी सूचना देने हेतु मौजूद हैं। इनमें से प्रमुख हैं–

(I) SIGI – Plus (System of Interactive Guidance and Information; 'plus' indicates a refinement of the system)

(ii) GIS (Guidance Information system)

(iii) DISCOVER

(iv) NOICC (National Occupational Information Co-ordianting Committee, includes State Branches)

(Discover) डिस्कवर तथा सीजी कार्यक्रम (SIGI) यूनाइटेड स्टेट्स में व्यापक रूप में प्रयोग किए जाते हैं ।

डिस्कवर में चार घटक हैं–

1. स्वमूल्यांकन (Self Assessment)

2. व्यवसाय संबंधी विकल्पों की पहचान (Identification of Occupational Alternatives)

3. व्यवसायिक सूचनाओं का पुनरावलोकन (Reviewing Occupational Information)

4. शैक्षिक विकल्पों की पहचान (Identification of Educational Alternatives) (Searches for Educational Institutions)

सीजी प्लस (SIGI- Plus) के पाँच घटक हैं–

(i) स्वमूल्यांकन (मूल्य, Values)

(ii) व्यावसायिक विकल्पों की पहचान (Locate)

(iii) व्यावसायिक सूचनाओं का पुनरावलोकन (योजना Planning)

(iv) टैन्टेटिव व्यवसाय चयन का निर्धारण (आव्यूह Strategy)

कम्प्यूटर द्वारा यह कार्यक्रम लगातार क्रियान्वित हो रहे हैं। आज काफी उत्तरदायित्व विद्यालयों पर आ गया है अतः विद्यालयों के मार्गदर्शन में ही विद्यार्थी कैरियर का सही चयन कर सकता है। विद्यालयों में सभी प्रकार के शैक्षिक अवसरों की उपयोगी सूचना रहनी चाहिए तथा उनसे विद्यार्थियों को अवगत कराते रहना चाहिए। कैरियर के चयन में विभिन्न स्तरों पर शिक्षण किस प्रकार और कहाँ प्राप्त किया जा सकता है इसकी भी व्यावसायिक जानकारी विद्यालय में होनी चाहिए। इसके लिए विभिन्न अभिकरणों से सम्पर्क किया जा सकता है जो निम्नलिखित हैं–

1. एसोसिएशन आफ इंडियन यूनिवर्सिटीज, 16 कोटला मार्ग, देहली।

2. सैन्ट्रल इंन्स्टीट्यूट ऑफ रिसर्च एंड ट्रेनिंग इन एम्प्लायमेंट सर्विसेज, पूसा रोड़, न्यू देहली ।

3. सैन्ट्रल स्टेटिस्टिकल आरगेनाइजेशन, सरदार पटेल भवन, न्यू देहली।

4. डायरेक्टर जनरल ऑफ हैल्थ सर्विसेज, निर्माण भवन, मौलाना आजाद रोड़, न्यू देहली।

5. काउंसिल ऑफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, रफी मार्ग, न्यू देहली।

6. इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च, कृषि भवन, राजेन्द्र प्रसाद रोड़, न्यू देहली।

7. इंस्टीट्यूट ऑफ वोकेशनल गाइडैंस एंड सलैक्शन, 3 महापालिका मार्ग, बॉम्बे।

8. मिनिस्ट्री ऑफ हयूमैन रिसोर्स डवलपेंट, डिपार्टमैंट ऑफ एजूकेशन , गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, शास्त्री भवन, न्यू देहली।

9. नेशनल काउंसिल ऑफ एजूकेशन रिसर्च एंड ट्रेनिंग 17 बी, श्री अरविंदो मार्ग, न्यू देहली।

10. स्टेट गाइडेंस ब्यूरो इन दि कंट्री।

11. यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन, धौलपुर हाऊस, न्यू देहली।

12. यूनिवर्सिटी एम्प्लायमेंट इन्फारमैशन एंड गाइडैंस ब्यूरो ऑफ वैरियस यूनिवसिर्वटीज।

13. स्टेट पब्लिक सर्विस कमीशन्स।

14. प्राइवेट पब्लिशर्स।

रोजगार हेतु निर्देशन एवं परामर्श–

प्रत्येक व्यक्ति को जीविका हेतु किसी न किसी व्यवसाय की आवश्यकता होती है। आज का व्यावसायिक जगत जटिलता की ओर बढ़ रहा है। औद्योगिक प्रगति ने आज रोजगार के अनेक द्वार खोल दिए हैं। निर्देशन तथा परमार्श रोजगार के अवसरो तथा उनके लिए अपेक्षित तैयारी संबंधी जानकारी प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यवसायों का चुनाव व्यक्ति अपनी अभिक्षमता, रूचि एवं पृष्ठभूमि के अनुसार कर सके अर्थात व्यक्ति तथा उसके लिए उपयुक्त कार्य (जॉब) का मिलान संभव हो सके, निर्देशन व परामर्श का यही उद्देश्य है। फोर्ड तथा बॉक्स ने व्यावसायिक चयन में प्रयोजन पक्ष को विशेष महत्व दिया है जिसके आधार पर व्यक्ति अपने इच्छित लक्ष्यों तथा उन्हें प्राप्त करने की संभावनाओं को तौलता है। विभिन्न व्यवसायों में अपेक्षित कार्यों का विश्लेषण एक अत्यंत वैज्ञानिक प्रणाली है। इसे आमतौर पर 'कृत्य विश्लेषण' की संज्ञा दी जाती है।

किसी कृत्य के विश्लेषण में तीन प्रमुख बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

(i) कृत्य का पूर्ण एवं सही परिचय प्रदान करना।

(ii) कृत्य से संबंधित सम्पूर्ण कार्यों का ठीक –ठाक विवरण।

(iii) सफलतापूर्वक कार्य करने हेतु व्यक्ति में अपेक्षित गुण।

इसके अतिरिक्त शारीरिक व मानसिक दक्षताओं का वर्णन भी विश्लेषण की पूर्णता के लिए अपेक्षित है।

कार्य विश्लेषण के उद्देश्य–

आज विशेशीकरण का युग है, कृत्य विश्लेषण विभिन्न व्यवसायों में विभिन्न कृत्यों के लिए वांछित विशेषीकरण को जानने में सहायक होता है।

मैन ने चार उद्देश्य बताए हैं

(i) कार्य करने की विधियों में सुधार लाने हेतु

(ii) स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के लिए कार्य विश्लेषण जिससे इन सेवाओं को उद्देश्यमुखी बनाया जा सके।

(iii)कार्यकर्ताओं के उचित प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण कायक्रमों को मितव्ययी व चुस्त बनाना।

(iv)रोजगार के चयन, उनमें स्थानांतरण, प्रोन्नति एवं सम्यक स्थापन दिलाना।

कृत्य/कैरियर के अध्ययन हेतु आधारभूत रूपरेखा

कैरियर के अध्ययनार्थ राष्ट्रीय व्यावसायिक संघ के व्यावसायिक शोध विभाग ने निम्नांकित रूपरेखा दी है–

1. कैरियर या कृत्य का इतिहास।
2. कृत्य का महत्व तथा समाज से उसका संबंध ।
3. कृत्य में अपेक्षित व्यक्तियों की संख्या
4. दायित्व
5. विशिष्ट कार्य (औजार की प्रकृति, यंत्र या उपयोग में आने वाली सामग्री)
6. अर्हताएं– लिंग, आयु, विशिष्ट सामाजिक, मानसिक एवं नैतिक गुण, कौशल, नियम, कानून नियमावली आदि।
7. तैयारी– सामान्य शिक्षा, अपेक्षित एवं वांछनीय प्रशिक्षण, प्रशिक्षण केन्द्र, अनुभव आदिं
8. प्रवेश विधि

9. कुशलता प्रापित की अवधि

10. उन्नति के अवसर

11. आय–प्रारंभ, अधिकतम

12. घंटे–नित्य, साप्ताहिक, निर्धारित समय से अधिक समय बैठने की आवश्यकता, पारियाँ (Shifts)

13. रोजगार की नियमितता–सामान्य महीने, उद्योग बंद रहने की अवधि, बेरोजगार रहने की चाक्रिकता (Cyclical unemployment)

14. स्वास्थ्य एवं दुर्घटना के खतरे

15. श्रोजगार के विशष्ट स्थान

16. रोजगार देने वाले संगठन

17. पूरक सूचना– सूचना के साधन जेसे पत्रिकाएँ, फिल्में तथा अन्य साधन।

परामर्शदाता को इन तथ्यों की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए तभी वह सही परामर्श देने में सफल हो सकता है।

कृत्य विश्लेषण की विधियाँ

कृत्य विश्लेषण की विभिन्न विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. प्रश्नावली

2. परीक्षण विधि

3. क्रिया द्वारा कृत्य विश्लेषण (Job analysis by activity)- इसके तहत कार्य/व्यवसाय या उद्यम में सम्पादित होने वाली क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

4. व्यक्तिगत साइकोग्राफिक विधि– इस विधि द्वारा हम उन व्यक्तियों का अध्ययन करते हैं जिन्हें व्यवसाय या नौकरी में उच्च स्थान प्राप्त होता है। इस विधि के अंतर्गत विस्तार से व्यक्ति के वंशानुगत इतिहास, शारीरिक, बौद्धिक, संवेगात्मक और सामाजिक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।

5. कृत्य मनोलेखन विधि (Job Psychograph Method)- इस विधि के अंतर्गत व्यक्ति को नहीं जॉब को देखा जाता है। इसमें किसी विशेष व्यवसाय का अध्ययन किया जाता है और इस हेतु आवश्यक योग्यताओं की जानकारी प्राप्त की जाती है।

6. **कौशल विश्लषाण विधि–**

कृत्य / कार्य विवरण (Job description)

ओटिस तथा लेकार्ट के अनुसार ''कृत्य विवरण के अंतर्गत उन तथ्यों को संकलित किया जाता है जो कृत्य के 'क्या', 'कैसे' व 'क्यों' पक्षों पर प्रकाश डालते हैं।'' इस प्रकार कृत्य विवरण से तात्पर्य उन समस्त व्यौरों से है जो कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक माने जाते हैं। कार्य विवरण द्वारा कार्य की सामाजिक, भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों, संदर्भों तथा सीमाओं का उल्लेख किया जाता हे अर्थात कार्य की भौतिक पर्यावरणजन्य विशेषताओं, स्वच्छता, स्वास्थ्य दशाएं, निहित खतरे व अपेक्षित सावधानी, का पता चलता है।

(अ) कृत्य की पहचान (Job identification)

(ब) कार्य सारांश (Job Summary)

(स) निष्पादित कार्य स्तर (Work Performed)

कार्य विवरण के उपयोग (Use of Job description)

कार्य विवरण का प्रमुख उद्देश्य कृत्य से संबंधित विशेष गुणों तथा प्रकार्यों को प्रकाश में लाना होता है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित विशेषताओं का विवरण देने पर बल दिया जाता है।

1. कार्यकर्ता की शारीरिक दशाएं (Psysical Condition of the Worker)-

2. संवेदी प्रकारता (Sensory modality)- जॉब हेतु आवश्यक संवेदी क्षमता याा सुनना, देखना, स्पर्श आदि के बादे में विवरण दिया जाता है।

3. प्रत्यक्षण क्षमता (Perceptual power)

4. बौद्धिक योग्यता (Intellectual ability)- इसमें अपेक्षित न्यूनतम बौद्धिक स्तर के बारे में विवरण रहता है।

5. शैक्षिक उपलब्धि स्तर– इसमें न्यूनतम शैक्षिक उपलब्धियों व योग्यता का विवरण प्रस्तुत होता है।

6. रूचि प्रतिमान (Inerest Pattern) – इसमें कृत्य की सफलता हेतु आवश्यक अभिक्षमता या विशिष्ट योग्यता का उल्लेख होता है।

7. अभिक्षमता (Aptitude)- जॉब में सफलता प्राप्त करने हेतु आवश्यक अभिक्षमता या विशिष्ट योग्यता का उललेख होता है।

8. सामाजिक समायोजन (Social adjustment)- इसमें अपेक्षित सामाजिक सम्मेलन के स्तरों तथा सामाजिक संबंधों का व्यौरा रहता है।

9. सांवेगिक दशाएं (Emotional conditions)- इसमें जॉब हेतु अपेक्षित विशेषताएँ जैसे धैर्य, संतुलन, जोखिम उठाने की सामर्थ्य, परिपक्वता एवं आवेश पर नियंत्रण आदि का उल्लेख रहता है।

कृत्य एवं व्यक्तियों में मिलान की समस्या (Problem of matching individuals and jobs)

1. व्यक्ति के बारे में समुचित जानकारी का अभाव
2. वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का अभाव
3. कृत्य विश्लेषण एवं विवरण विकसित करने की दिशा में प्रयासों का अभाव
4. शिक्षित बेरोजगारी की समस्या
5. रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों में सुनियोजित विकास का अभाव
6. चयन प्रक्रिया में वैज्ञानिकता का अभाव
7. शैक्षिक व्यवस्था में दूरदर्शिता का अभाव

कृत्य एवं कार्मिक विश्लेषण स्रोत

1. साक्षात्कार द्वारा
2. प्रश्नावली द्वारा
3. उपलब्ध आलेख
4. बुलेटिन व मैनुअल द्वारा
5. अवलोकन द्वारा

7.8 निर्देशीय या परामर्शदाता– केन्द्रित या नियोजक परामर्श (Directive or counselor Centred or Prescriptive Counselling)

परामर्शदाता केन्द्रित परामर्श परामर्शदाता के इर्द गिर्द घूमता है। वह मैत्री और सहायता द्वारा मधुर –सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है। इसमें परामर्शदाता बहुत सक्रिय

होता है और वह प्रायः अपने स्वयं के दृष्टिकोण और भावनाएँ स्वतंत्र रूप से प्रकट करता रहता है। वह प्रार्थी की अभिव्यक्तियों का मूल्यांकन करता है। इस विचारधारा के अनुसार परामर्श साक्षात्कार का नेतृत्व करता है। इसमें परामर्शदाता प्रायः प्रमापीकृत प्रश्नों की एक श्रंखला (series of Standardized Questions) पूछता है तथा प्रत्येक का संक्षिप्त उत्तर हो सकता है। परामर्शदाता प्रार्थी की अभिव्यक्ति और भावनाओं के विकास की आज्ञा नहीं देता। एक विशेषज्ञ के तौर पर वह नेतृत्व करता है, मूल्यांकन करता है और सुझाव या सलाह देता है।

इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिनिसोटा विश्वविद्यालय के ई.जी. विलियमसन (E.G. Williamson of the University of Minnesota) हैं। इस प्रकार इस विचारधारा के अन्तर्गत परामर्शदाता प्रार्थी की समस्या को हल करने का मुख्य उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता समस्या की खोज और उसे परिभाषित करता है, निदान (Diagnose) करता है तथा समस्या के उपचार के बारे में बताता है।

निर्देशीय परामर्श की अवधारणाएँ (Basic Assumptions Directive Counselling)

एन्ड्रीयूस और विली (Andrews & Willy) के अनुसार निर्देशीय परामर्श की मूलभूत अवधारणाएँ निम्नलिखित हो सकती हैं–

1. सलाह देने की सक्षमता (Competency in giving advice) - परामर्शदाता के पास श्रेष्ठ प्रशिक्षण, अनुभव और सूचना होती है। वह समस्या के समाधान के बारे में सलाह देने के लिये अधिक सक्षम है।

2. परामर्श एक बौद्धिक प्रक्रिया है (Counselling as an Intellectual Process)- किसी प्रार्थी की कुसमायोजनता (Maladjustment) से उसकी बौद्धिक योग्यता पूर्णतया नष्ट नहीं होती। अतः परामर्श प्राथमिक रूप से बौद्धिक रूप से प्रक्रिया है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्षों की बजाये बौद्धिक पक्षों पर बल देता है।

3. परामर्श के उद्देश्य समस्या समाधान स्थिति के रूप में (Counselling objectives as Problem Solving Situation)- परामर्श के उद्देश्य समस्या–समाधान स्थिति के माध्यम से उपलब्ध किये जाते हैं।

4. प्रार्थी की समस्या समाधान में अक्षमता (Client's Incapability of Solving the Process)- परामर्श की यह अवधारणा भी है कि प्रार्थी में सदा ही समस्या के समाधान की क्षमता नहीं होती ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इसमें प्रत्यक्ष (Direct) और व्याख्यात्मक (Explanatory) विधियों की सलाह दी जाती हैं। इस प्रकार के परामर्श में व्यक्ति की उपेक्षा समस्या पर ध्यान हो और प्रार्थी सारी प्रक्रिया में सहयोग करे। प्रार्थी को परामर्शदाता के अधीन कार्य करना होता न कि उसके साथ मिलकर।

विलियमसन (Williamson) के अनुसार इस प्रकार के निर्देशन की मूलभूत धारणाएं निम्नलिखित हैं–

1. परामर्श का लक्ष्य है– व्यक्ति के व्यक्तित्व का सभी दिशाओं में विकास में सहायता करना।

2. परामर्श व्यक्ति की विशेषता (Uniqueness) को मानता है।

3. परामर्श वांछनीयता (Desirability) पर आधारित है न कि परामर्श को व्यक्ति पर थोपना।

4. परामर्श केवल तभी दिया जाना चाहिए जब विद्यार्थी किसी समस्या का सामना करे और वह स्वयं इसका समाधान न कर पाये। परामर्श इस दृष्टि से उपचारात्मक होता है।

5. परामर्श में आपसी सम्बन्ध निष्पक्ष (Neutral) होते हैं

6. परामर्श प्रार्थी की समस्या के बारे में स्वयं की धारणा पर केन्द्रित होता है।

7. परामर्श प्रार्थी की मर्यादा का सम्मान करता है।

इस प्रकार विलियमसन परामर्शदाता को अध्यापक के रूप में देखता है जिसका कर्त्तव्य है व्यक्ति को स्वयं की क्षमताएँ, दृष्टिकोण और रूचियों को समझने योग्य बनाना, स्वयं की अभिप्रेरणा और जीवन–प्रविधियों को पहिचानना इत्यादि।

निर्देशीय परामर्श के सोपान (Steps in Directive Counselling)

विलियमसन (Williamson) ने निर्देशीय परामर्श के निम्नलिखित 6 सोपानों का वर्ण किया है–

1. विश्लेषण (Analysis)- इसमें स्थिति या प्रार्थी के बारे में आंकड़े और सूचनाएँ इकट्ठी की जाती हैं जिन्हें एक सत्य और विश्वसनीय आधार के रूप में परामर्श–प्रक्रिया में प्रयुक्त किया जा सकता है। परामर्श के इस सोपान के लिये इन यंत्रों (Tools) का प्रयोग किया जाता है–

a) संचित अभिलेख (Cumulative Records)

b) साक्षात्कार (Interview)

c) समय'विभाजन फार्म (Time distributions Form)

d) आत्मकथा (Autobiography)

e) उपाख्यानक रिकार्ड (Anecdotal record)

f) मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Tests)

सभी आंकड़ों के एकीकरण (Integration) के लिये केस–हिस्ट्री (Case History) विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें पारिवारिक इतिहास, मनोरंजनात्मक रूचियाँ और आदतें आदि शामिल होती हैं।

2. संश्लेषण (Synthesios)- विलियिमसन (Williamson) ने संश्लेषण को इस प्रकार परिभाषित किया है, ''यह विश्लेषण से प्राप्त आंकड़ों का इस प्रकार से किया गया संक्षिप्तीकरण और संगठन या व्यवस्था है जिससे विद्यार्थी की सम्पत्ति , उत्तरदायित्व, समायोजन और कुसमायोजनों का पता चलता है।''

(The process of summarizing and organizing of the data from the analysis in such a manner as to reveal the student's assets, liabilities, adjustments and maladjustments.)

3. निदान (Diagnosis)- निदान के अन्तर्गत समस्या के रूप में दिये गये आंकड़ों की व्याख्या करना शामिल है। इसमें विद्यार्थियों की विशेषताओं, दायित्वों, दुर्बलताओं और शक्तियों का संदर्भ भी शामिल है।

(Diagnosis consists of the interpretations of the data in terms of the problems indicated and asets and liabilities, the strengths & weaknesses of the student.)

निदान में निम्नलिखित तीन मुख्य पद होते हैं–

a) समस्या की पहिचान करना (Indentification of problem)

b) कारणों को ढूढ़ना (Discovering the causes)

c) पूर्वानुमान (Ptognosis)

4. पूर्वानुमान(Prognosis)- यह सोपान निदान का अंग ी हो सकता है तथा अलग सोपान भी हो सकता है। यह सब उपलब्ध विशिष्ट सूचना पर निर्भर करता है। जहाँ पर

समस्या का परिणाम या परिस्थिति की जानकारी होती है, वहाँ पूर्वानुमान (Prognosis) निदान (Diagnosis) का अंग बन जाता है। पूर्वानुमान और निदान, दोनों ही परामर्शदाता और प्रार्थी के बीच सहयोगात्मक प्रक्रियाएं हैं।

5. परामर्श या उपचार (Counselling or Treatment)- परामर्श या उपचार का सोपान है जब परार्शदाता प्रार्थी की सहायता करता है। इसमें कई प्रश्नों के उत्तर दिये जाते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर प्रार्थी स्वयं ही अपने लिये देता है, जैसे मं स्वयं में ये परिवर्तन किस प्रकार कर सकता हूँ? इसका दूसरा विकल्प क्या हो सकता है?यदि ऐसा ही चलता रहा तो भविष्य में विकास कैसा होगा?

6. अनुवर्तन (Follow-up)- इस सोपान के अन्तर्गत परामर्श–प्रक्रिया की प्रभावशालीता का मूल्यांन किया जाता है तथा यह देखा जाता है कि विद्यार्थी की परामर्श के माध्यम से क्या–क्या उपलब्धियाँ रहीं।

निर्देशीय परामर्श की विशेषाताएँ (Characteristics of Directive Counselling)

1. प्रक्रिया में परामर्शदाता मुख्य भूमिका निभाता है।
2. वह प्रार्थी को सलाह प्रदान करता है।
3. इस प्रक्रिया में केन्द्र–बिन्दु व्यक्ति नहीं, बल्कि समस्या है।
4. प्रार्थी परामर्शदाता के अधीन कार्य करता है न कि साथ।
5. इस परामर्श में, जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है वे प्रत्यक्ष, प्रभावी (Persuasive) और व्याख्यात्मक (explanatory) होती है।
7. परामर्श व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्ष की बजाये बौद्धिक पक्ष पर अधिक बल देता है।

निर्देशीय परामर्श की सीमाएँ (Limitations of Directive Counselling)

1. इस प्रक्रिया में प्रार्थी अधिक निर्भर (Dependent) होता है और वह कुसमायोजन की नई समस्याओं का समाधान करने के भी अयोग्य होता है।
2. क्योंकि प्रार्थी परामर्शदाता से कभी भी स्वतन्त्र नहीं हो पाता, यह उत्तम और प्रभावी निर्देशन नहीं है।
3. जब तक व्यक्ति स्वयं के अनुभवों द्वारा कुछ दृष्टिकोणों या अभिवृत्तियो (Attitude) का

विकास नहीं कर लेता तब तक वह स्वयं निर्णय नहीं ले सकता। इस प्रकार के अनुभव तथा दृष्टिकोणों के विकास का इस प्रकार के निर्देशन कार्यक्रम में सदा अभाव रहता है।

4. परामर्शदाता प्रार्थी को भविष्य में गलतियों को करने से बचाने में असमर्थ रहता है।

5. विद्यार्थी के बारे में जानकारियों का अभाव रहता है जिससे गलत परामर्श संभव है।

निर्देशीय परामर्श के लाभ (Advantages of Directive Counselling)

1. यह विधि समय की दृष्टि से लाभकारी है। इसमें समय की बहुत बचत होती है।
2. इस प्रकार के परामर्श में समस्या पर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा व्यक्ति पर कम।
3. परामर्शदाता प्रार्थी को प्रत्यक्ष रूप से देख सकता है।
4. परामर्श व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्ष की अपेक्षा बौद्धिक पक्ष पर बल देता है।
5. इस प्रक्रिया में परामर्शदाता प्रार्थी की सहायता के लिये शीघ्र ही उपस्थित हो जात है जिससेउसे (प्राथी को) प्रसन्नता होती है।

अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी केन्द्रित या अनुमत परामर्श (Non-Directive or client- Centered or Permissive Counseling)

अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी केन्द्रित या अनुमत परामर्श के मुख्य प्रवक्ता कार्ल आर. रोजर्स (Carl R. Roges) हैं। इस सिद्धांत का विकास बहुत वर्षों में हुआ। इसलिये इस प्रकार के परामर्श में कई क्षेत्र शामिल होते रहे जैसे–व्यक्तित्व का विकास, सामूहिक नेतृत्व, शिक्षा एवं अधिगम (Learning), सृजनात्मकता (Creativity) पारस्पारिक सम्बन्ध (Interpersonal relations) तथा पूर्ण रूप से क्रियाशील व्यक्ति की प्रकृति। इस सिद्धांत का विकास 1930 और 1940 के बीच हुआ। इस सिद्धांत का विश्वास है कि व्यक्ति के अन्दर ही उसकी स्वयं की समस्या को सुलझाने क पर्याप्त साधन मौजूद हैं । परामर्शदाता का कार्य तो केवल इतना ही है कि वह ऐसा वातावरण प्रदान करे जिसमें प्रार्थी वृद्धि (Growth) के लिये स्वतन्त्र होता है ताकि वह जैसा चहे, वैसा ही व्यक्ति बन सके। यह विचारधारा व्यावसायिक और शैक्षिक समस्याओं के संवेगात्क पक्षों को महत्त्व देती है और परामर्श–प्रक्रिया के हिस्से के रूप में निदानात्मक सूचना (Diagnostic Information) को अस्वीकार करती है।

प्रार्थी केन्द्रित परामर्श के इर्द गिर्द घूमता है। इसमे प्रार्थी को वार्तालाप में नेतृत्व करने के लिये और स्वयं के दृष्टिकोणों, भावनाओं और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिये

प्रोत्साहित किया जाता है। परामर्शदाता अधिकतर निष्क्रिय (Passive) ही रहता है । वह प्रार्थी के विचारों, भावों, भावनाओं और अभिव्यक्तियों के धाराप्रवाह में हस्तक्षेप नहीं डालता। परामर्शदाता प्रार्थी की बातचीतकरने में पूरी सहायता करता है। बुनियादी तौर पर परामर्शदाता मधुर –सम्बन्ध (Rapport) दोनों पक्षों में पारस्परिक विश्वास की भावना उत्पन्न करने का ही प्रयास करता है।

इस विचारधारा या उपागम (approach) में मुक्त अंत प्रश्न (Opern-End questions) ही पूछे जाते हैं। ये प्रश्न पूर्ण रूप से रचित नहीं होते (These questions are loosely structured) । इन प्रश्नों के उत्तरों में व्यक्ति स्वयं के व्यक्तित्व का प्रक्षेपीकरण (Projections) कर देता है। परामर्शदाता का अधिकतर सम्बन्ध प्रार्थी द्वारा बताई गई संवेगात्मक विषय वस्तु के संक्षेपीकरण से होता है।

जब प्राथ्री उत्तर दे रहा होता है तब वह उपयुक्त तरीकों से उसे इस बात के लिये प्रोत्साहित किया जाये ताकि वह विस्तार से बोले। जिस प्रकार के प्रश्न परामर्शदाता प्रार्थी से पूछता है उससे प्रार्थी यह महसूस करने लगता है कि परामर्शदाता वास्तव मं ही व्यक्तिगत तौर पर प्रार्थी के विचारों का सम्मान करता है और साक्षात्कारकर्त्ता प्रार्थी में रूचि ले रहा है। परामर्शदाता मात्र तथ्यों की खोज के लिये ही प्रश्न नहीं पूछता। अनिर्देशीय परामर्श के लिये विशेषज्ञ मनोवैज्ञानिक रूप से स्वतंत्र होने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार देते हैं। इस प्रकार के परामर्श में निदानात्मक यंत्रों (diagnostic instruments) का या तो बहुत ही कम प्रयोग होता है या फिर होता ही नहीं। यह परामर्श वृद्धि अनुभव (Growth experience) है । इसमें प्रार्थी अपनी बुद्धि या समझ (Understanding) से कार्य कर सकता है। इसमें बौद्धिक पक्षों की अपेक्षा संवेगात्मक या भावात्मक पक्षों पर बल दिया जाता है।

7.9 अनिर्देशीय परामर्श की मूलभूत अवधारणाएँ (Basic Assumptions in Non-Directive Counselling)

1. व्यक्ति की मर्यादा में विश्वास (Belief in the dignity of man)- रोजर्स (Rogers) व्यक्ति की मान–मर्यादा में सशक्त विश्वास रखता है। वह व्यक्ति को स्वयं निर्णय लेने सक्षम मानता है तथा ऐसे करने के उसके अधिकार को स्वीकार करता है।

2. वास्तवीकरण की ओर प्रवृत्ति (Tendency toward actualization)- रोजर्स के प्रारम्भिक लेखों में इस बात पर बल दिया गया है कि व्यक्ति या प्रार्थी (Client) की वृद्धि और विकास की क्षमता व्यक्ति की वह आवश्यक विशेषता है जिस पर परामर्श और

मनोचिकित्सा (Psychotherapy) विधियाँ निर्भर करती हैं। कई वर्षों के पश्चात् भी उसकी यह धारणा सुदृढ़ हुई है कि व्यक्ति की वंशानुक्रम प्रवृत्ति(Inherent Tendency) में वृद्धि(Growth), समायोजन (Adjustment), समाजीकरण (Socialization), स्वतंत्रता आदि दिशाएं सम्मिलित हैं। इस दिशात्मकप्रवृत्ति (Directional Tendency) को ही आजकल वास्तविक प्रवृत्ति (Actualizing Tendeny) कहा जाता है।

3. व्यक्ति विश्वास योग्य है (Man is Trustworthy)- रोजर्स व्यक्ति को बुनियार्द तौर पर अच्छा और विश्वास के योग्य मानता है। वह यह भी जानता है व्यक्ति बहुत बार अविश्वसनीय ढंग से भी व्यवहार करता है। व्यक्ति कुछ शक्तियों (Urges) के साथ पैदा होता है जिन पर नियंत्रण करना आवश्यक है यदि स्वस्थ व्यक्तित्व–विकास होने देन है।

4. व्यक्ति अपनी बुद्धि से अधिक विवकेशील है (Man is wiser than hi intellect) – जब कोई संस्था स्वतंत्र रूप से तथा प्रभावशाली ढंग से कार्य कर रही होता है तब जागरूकता सम्पूर्ण क्रिया का एक छोटा अंग होती है। यह जागरूकता अधिक तीव्र और केन्द्रित (Sharpened & Focussed) हो जाती है जब वह संस्था अपनी क्रिया प्रणाली (Fundctioning) में कोई कठिनाई अनुभव करती है।

सिनाईडर (Snyder) ने भी अनिर्देशीय परामर्श की निम्नलिखित धारणाएँ बताई हैं–

1. प्रार्थी को यह अधिकार है कि वह अपने जीवन के लक्ष्यों का चयन स्वयं करे।

2. प्रार्थी को यदि अवसर दिया जाता है तो वह उन लक्ष्यों का चयन करेगा जिससे उसे महान संभावित प्रसन्नता प्राप्ति हो।

3. परामर्श–परिस्थिति में उपयुक्त संक्षिप्त समय में इस बिन्दु (Point) पर पहुँच जाना चाहिए जहां से प्रार्थी स्वतंत्र रूप से कार्य करने के योग्य हो सके।

5. किसी व्यक्ति को उपयुक्त ढंग से समायोजित होने में संवेगात्मक गड़बड़ी (Emotional Disturbance) ही प्रारम्भिक रूप से रोकती है।

अनिर्देशीय परामर्श के सोपान (Steps in Non-Directive Counselling)

कार्ल रोजर्स ;ब्तस त्वहमतेद्ध ने अनिर्देशीय परामर्श की इस विचारधारा के निम्नलिखित सोपान (Steps) बताये हैं–

1. **समस्यात्मक परिस्थिति को परिभाषित करना (Defining the Problematic Situation)-** सर्वप्रथम परामर्शदाता समस्यात्मक परिस्थिति को परिभाषित करे।

2. **भावनाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति (Free Expression of Feelings)-** प्रथम सोपान के पश्चात् प्रार्थी के इस बात के प्रति जागरूक किया जाता है कि वह (प्रार्थी) अपनी भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त कर सकता है तथा परामर्शदाता इस बात की स्वीकृति देता है।

3. **सकारात्मक और नकारात्मक भावनाओं का वर्गीकरण (Classification of Positive & Negative Feelings)-** प्रार्थी की भावनाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के पश्चात् परामर्शदाता प्रार्थी की नकारात्मक और सकारात्मक भावनाओं की पहिचान करता है और उनका वर्गीकरण करता है।

4. **सूझ बूझ या अन्तर्दृष्टि का विकास (Development of Insight)-** प्रार्थी की सूझबूझ या अन्तर्दृष्टि के विकास के साथ परामर्शदाता प्रार्थी की नई भावनाओं के बारे में चिन्तन करना जारी रखता है और उन नई भावनाओं का वर्गीकरण भी करता रहता है।

5. **परामर्श स्थिति समाप्त करना (Termination of counseling situation)-** इन उपरोक्त सोपानों के पश्चात् परामर्शदाता उस स्थिति या बिन्दु (Point) की तलाश में रहता है जहाँ से परामर्श स्थिति को समाप्त किया जा सके। इस विचारधारा के अनुसार प्रार्थी (Client) या परामर्शदाता इस समाप्ति का सुझाव दे सकते हैं।

6. इसके प्रयोग से मनोवैज्ञानिक तनाव (Psychological Tensions) कम होते हैं।

7. इस प्रकार के परामर्श में सुरक्षात्मकता (Defensiveness) में कमी आती है।

8. इस प्रकार के परामर्श में प्रार्थी द्वारा व्यक्त स्वयं के चित्र में और स्वयं के बारे में वांछित या आदर्श चित्र में बहुत अधिक निकटता (Correspondece) होती है ।

9. प्रार्थी का व्यवहार संवेगात्मक रूप में अधिक परिपक्व माना जाता है।

10. ऐक्सलाईनस (Axlines, 1947) ने अपने शोध में यह बताया है कि प्राथमिक स्कूल के विद्यार्थियों में प्रार्थी–केन्द्रित खेल–विधियों के परिणामस्वरूप पठन सुधार (Reading Improvement) में तेजी आती है चाहे विशेष पठन–अनुदेशन (Special Reading Instructions) प्रदान न भी किया जाये।

11. प्रार्थी केन्द्रित परामर्श में परामर्शदाता का सामान्य लक्ष्य होता है– प्रार्थी के स्वयa (Self) के संगठन और कार्यशीलता में परिवर्तन लाना है।

12. इस परामर्श की विचारधारा निर्देशीय परामर्श (Directive Counselling) के बिल्कुल उल्ट है।

13. इस परामर्श में सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्रार्थी या व्यक्ति पर ही रहता है।

अनिर्देशीय परामर्श की सीमाएँ (Limitations of Non-Directive Counselling)

1. यह परामर्श मनोविश्लेषण (Psycho-analyis) की तरह गहरा नहीं होता।

2. प्रार्थी को अपने वर्तमान दृष्टिकोणों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति की आज्ञा होती है, लेकिन इसमें यह बताने का प्रयास नहीं किया जाता कि ये वर्तमान दृष्टिकोण क्यों होते हैं। इसमें भूतकाल के बारे में कोई खोज नहीं, कोई सुझाव नहीं, पुनः शिक्षा का कोई प्रयास नहीं होता।

3. परामर्शदाता को लचीलेपन की आज्ञा का अभाव भी इस परामर्श की एक कर्म है।

4. प्रार्थी केन्द्रित सिद्धान्त की मूलभूत कमी यह है कि इसमें इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि उद्दीपक स्थिति (Stimulus Situation) और वातावरण के प्रकृति व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करती है।

5. प्रार्थी केन्द्रित परामर्श सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुत सी परामर्श परिस्थितियां सफलतापूर्वक नहीं आती।

6. यह अधिक समय खर्च करने वाली प्रक्रिया है। एक बार शुरू करने के पश्चात् प्रार्थी अपना संवाद समाप्त ही नहीं करता। इससे कई अन्य व्यक्ति परामर्श लेने से वंचित रह जाते हैं।

7. प्रार्थी के साधनों (Resources), निर्णयोंऔर बुद्धिमत्ता पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

8. सभी समस्याएँ केवल बोलकर ही हल नहीं हो सकतीं।

9. यह सभी स्कूलों में संभव नहीं क्योंकि परामर्शदाता ने कई विद्यार्थियों को देखना होता है।

10. कई बार परामर्शदाता की निष्क्रियता से प्रार्थी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति झिझक महसूस करता है।

अनिर्देशीय परामर्श के लाभ (Advantages of non-directive counselling)

1. इस विचारधारा से प्रार्थी में समस्या–समाधान की योग्यता उत्पन्न होना निश्चित है चाहे यह प्रक्रिया बहुत धीमी हो।

2. प्रार्थी केन्द्रित विचारधारा होने के कारण अन्य अनावश्यक गतिविधियों और परीक्षणो आदि से बचाव हो सकता है।

3. यह विचारधारा समस्या का प्रार्थी के अचेतनमन के स्तर से चेतन मन के सतर पर लेकर आती है और तनाव को मुक्त करती है।

5. इस प्रकार का परामर्श बहुत लम्बी अवधि तक के लिये अपने प्रभाव छोड़ता है।

7.10 सारांश

हम्परीस, टेक्सलर और नार्थ ने परामर्श के चार क्षेत्र बताये हैं मुख्य रूप से शैक्षिक परार्शन, व्यावसायिक परामर्श, व्यक्तिगत परामर्श, मनोचिकित्सात्मक परामर्श, नैदानिक परामर्श वैवाहिक परामर्श स्थानन परामर्श आदि।

परामर्श की एक अपनी विशिष्ट प्रविधि होती है जिसे कि एक कशल व प्रशिक्षित परामर्शदाता द्वारा ही उपयोग में लायी जाती है भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार की विधियां उपयोग में होती हैं। परामर्शन के मुख्य क्षेत्र व्यक्तिगत परामर्शन पारिवारिक परामर्श, कैरियर परामर्शन, निर्देशीय परामर्शन व अनिर्देशीय परामर्शन है।

व्यक्तिगत परामर्शन में निजी समस्याओं के सुलझाव के लिये परामर्शन दिया जाता है। पारिवारिक परामर्शन में परिवार की संरचना पति–पत्नी के रिश्ते में बदलती अभिवृत्ति माता–पिता व बच्चों के सम्बन्ध में अभिवृत के परिवर्तन आदि समस्याओं पर केन्द्रित होता है। कैरियर परामर्शन किसी विद्यार्थी को किसी कार्य क्षेत्र में स्वयं का सही एवं समेकित चित्र तथा उसकी भूमिका विकसित करने, स्वीकार करने, परीक्षण करने, अपने संतोष तथा समाज की उपयोगिता के अनुसार यथार्थ में बदलने की प्रक्रिया है।

इस सम्बन्ध में तीन प्रचलित अवधारणाएं प्रचलित हैं–

1. शीलगुण एवं कारक सिद्धान्त 2. विकासात्मक सिद्धान्त 3. संरचनात्मक सिद्धान्त

निर्देशीय परामर्शन में परामर्शदाता द्वारा दिशा निर्देश दिये जाते हैं। और अनिर्देशीय परामर्शन में परामर्शदाता एक अच्छे श्रोता की तरह व्यवहार करता है और क्लाइंट अपने निर्णय के लिये स्वतंत्र होता है।

7.11 मूल्यांकन प्रश्न

प्रश्न 1. परामर्शन प्रक्रिया व प्रविधियों को संक्षेप में समझाइये।

प्रश्न 2. निम्नलिखित को सारांशित कीजिए।

अ– व्यक्तिगत परामर्शन

ब– पारिवारिक परामर्शन

प्रश्न 3. निर्देशीय व अनिर्देशीय परामर्शन से आप क्या समझते हैं?

7.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. केदारनाथ रामनाथ शर्मा, ''व्यावहारिक मनोविज्ञान,'' केदारनाथ रामनाथ, मेरठ।

2. डॉ. एस.सी. ओबरॉय, ''शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन,'' परामर्श इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस ।

3. डॉ. राधरानी सक्सेना, श्रीमती इन्दिरा रानी, ''शिक्षा में निदेशन एवं परामर्श,'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

4. अमरनाथ राय, मधुअस्थाना, ''निर्देशन एवं परामर्शन,'' मोतीलाल बनारसी दास।

5. डॉ. एस.के. कोच्चर, "Guidance and councellor in college and universities" Sterling Publishers Pvt. Ltd.

इकाई–8 : औद्योगिक मनोविज्ञान का अर्थ, प्रकृति एवं विस्तार समय तथा गति अध्ययन एवं वैज्ञानिक प्रबन्ध

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 औद्योगिक मनोविज्ञान का अर्थ एवं प्रकृति

8.3 औद्योगिक मनोविज्ञान की विशेंषतायें

8.4 औद्योगिक मनोविज्ञान का इतिहास

8.5 औद्योगिक मनोविज्ञान का विस्तार या सीमा

8.6 समय एवं गति अध्ययन

8.7 समय एवं गति अध्ययन का स्वरूप

8.8 समय एवं गति अध्ययन की विशेषतायें

8.8.1 गति अध्ययन

8.8.1.1 गति अध्ययन के सिद्वान्त

8.8.2 समय अध्ययन

8.9 वैज्ञानिक प्रबन्ध औद्योगिक मनोविज्ञान का

8.9.1 वैज्ञानिक प्रबन्ध की परिभाषासायें

8.9.2 वैज्ञानिक प्रबन्ध के पक्ष

8.9.3 वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्वान्त

8.9.4 औद्योगिक मनोविज्ञान पर वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रभाव

8.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

8.11 सारांश

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

8.13 संन्दर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य औद्योगिक मनोविज्ञान के अर्थ अर्थ प्रकृति एवं विस्तार के बारे में आपको जानकारी देना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित पहलुओं का विश्लेषण करने में सक्षम होंगे–

- औद्योगिक मनोविज्ञान का अर्थ एवं प्रकृति
- औद्योगिक मनोविज्ञान का विस्तार
- औद्योगिक मनोविज्ञान में समय तथा गति अध्ययन
- औद्योगिक मनोविज्ञान में वैज्ञानिक प्रबन्ध

8.1 प्रस्तावना

औद्योगिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह व्यावहारिक शाखा है जो किसी भी औद्योगिक संस्थान में कार्यरत व्यक्तियों के व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन करती है। इस शाखा के अन्तर्गत उनकी योग्यता, पात्रता आदि के अध्ययन के साथ–साथ कार्य के प्रति उनकी प्रवृत्ति तथा कौशल का भी अध्ययन किया जाता है। औद्योगिक मनोविज्ञान की उत्पत्ति तथा विकास मशीन युग के कारण हुआ है। इसके अन्तर्गत कार्य की दशाओं का और औद्योगिक वातावरण का अध्ययन किया जाता है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत कर्मचारियों एवं मालिको की मनोवृत्तियों और प्रेरणाओं का अध्ययन किया जाता है।

किसी भी औद्योगिक कार्य को ठीक तरह से संचालित करने के लिए कुछ निश्चित एवं आवश्यक गतियॉ जरूरी है। इसके लिए समय एवं गति अध्ययन आवश्यक होता है। साथ ही उद्योग का मुख्य उद्देश्य या लक्ष्य कर्मचारी तथा प्रबन्धक दोनो को अधिक से अधिक संतुष्ट करना होता है। इसके लिए जो प्रबन्ध किया जाता है उसे वैज्ञानिक प्रबन्ध कहा जाता है।

8.2 औद्योगिक मनोविज्ञान का अर्थ, स्वरूप या प्रकृति

मानव–व्यवहार परिवर्तनशील होता है। परिस्थितियॉ व्यवहार को प्रभावित करती है। भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण से व्यवहार नियन्त्रित होता है। विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याओं के निदान में, व्यावसायिक, शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक विकास मे मनोविज्ञान की उपयोगिता बहुत बड गयी है। जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के लिए मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाने लगा है। आज उद्योगपति समाज के बहुत बडे वर्ग

(कर्मचारी) का शोषण कर रहे है। देश की आर्थिक दशा दिन पर दिन कमजोर होती जा रही है। उद्योग पूँजीपतियों के हाथ में है, लेकिन अब पूँजीवादी व्यवस्था के नियन्त्रण के कारण, छोटे कहे जाने वाले उद्योग धन्धे भी पूँजीपति बनने की आकांशा रखने वाले मध्यवर्ती वर्ग के हाथ में चले गये है। निचला वर्ग दिन–रात मेहनत करने के बाद भी रोटी कपडे से वंचित रहता है। उत्पादन कम हो रहा है। विदेशी कर्जे बढते जा रहे है। भूख–हडताल, तालाबन्दी, घिराव, सरकारी अत्याचार और पक्षपात जैसी अन्य प्रतिक्रियाएॅ दिन पर दिन बढ़ती जा रही है।

मजदूरों की इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए लोगों ने कमर कसी और मैदान में कूद पडे। अधिकारों की मॉग के महत्व को मजदूर समझने लगा इससे मजदूर और उद्योगपति के बीच की खाई का विस्तार और बढ गया। उत्पादन के लिए उद्योगपति भौतिक वस्तुओं पर अधिक ध्यान देता है और हड़ताल के समय मानवतावादी बात करता है। इस कारण मालिक और मजदूर का सन्तुलन बिगड़ जाता है। सन्तुलन के बिगडते ही उत्पादन की व्यवस्था को बिगडने लगती है।

इन समस्याओं के समाधान के लिए औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास हुवा और उसका अध्ययन सबसे उपयुक्त सिद्ध हुआ है। यह भौतिकवाद और मानवतावादी दोनो दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करता है।

औद्योगिक मनोविज्ञान उन व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन करता है जो औद्योगिक कार्यो में संलग्न रहते है। औद्योगिक मनोविज्ञान का प्रारम्भ 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। इस समय मशीन युग की प्रगति होने लगी और विद्वानों, उद्योग धन्धों के मालिकों एवं सरकारी अधिकारियों ने ऐसी विधियों को खोज निकाला , जिनके द्वारा उत्पादन मे वृद्धि की जा सके, श्रमिकों का कार्यकाल घटाकर वेतन बढ़ाया जा सके और उत्पादन पर कोई विपरीत प्रभाव न पडे।

इस प्रकार की समस्याओं को सुलझाने के लिए विद्वानों ने औद्योगिक स्थितियों को मनोवैज्ञानिक रूप देने का विचार किया। धीरे–धीरे मनोवैज्ञानिक नियमों का प्रयोग उद्योग धन्धों में किया जाने लगा, और मनोविज्ञान की एक नवीन शाखा का विकास हुवा। मनोवैज्ञानिकों ने इस नवीन शाखा को 'औद्योगिक मनोविज्ञान' कहा। इस प्रकार आर्थिक दबाव, सामाजिक असन्तुलन और मनोवैज्ञानिक स्थितियों ने औद्योगिक मनोविज्ञान को जन्म दिया। मशीन युग के कारण तथा कर्मचारीयों की अवहेलना के कारण औद्योगिक मनोविज्ञान की उत्पत्ति हुई। बडे–से–बडे और छोटे से छोटे किसी भी प्रकार के उद्योग के विभिन्न पक्षो

का अध्ययन जब मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया जाता है तो अध्ययन की यह शाखा 'औद्योगिक मनोविज्ञान' कहलाती है। औद्योगिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह व्यावहारिक शाखा है जो किसी भी औद्योगिक संस्थान में कार्यरत् व्यक्तियों के व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन करती है।

औद्योगिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन जीवन के उन क्षेत्रों में करता है, जो वस्तु–उत्पादन, वितरण, उपभोग तथा सभ्यता की सेवा से जुड़े हुए है। टिफिन एवं मैककॉर्मिक

औद्योगिक मनोविज्ञान द्वारा औद्योगिक समस्याओं का, मजदूर की आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान विभिन्न प्रकार के नियमों तथा सिद्धान्तों के द्वारा किया जाता है। औद्योगिक मनोविज्ञान द्वारा नित्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु, जीविकोपार्जन के लिए, शारीरिक और मानसिक कार्य करने वाले व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। औद्योगिक मनोविज्ञान उन व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन करता है, जो विभिन्न प्रकार के उद्योग–धन्धों में लगे हुए है और जो औद्योगिक वातावरण से घिरे हुए रहते है। इस प्रकार औद्योगिक मनोविज्ञान उन समस्त समस्याओं का समाधान करता है, जिनका सम्बन्ध औद्योगिक समाज और आर्थिक व्यवस्था से होता है।

8.3 औद्योगिक मनोविज्ञान की विशेषतायें

1. औद्योगिक मनोविज्ञान एक वैज्ञानिक अध्ययन है जिसके द्वारा शारीरिक और मानसिक श्रम करने वाले व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता है।

2. इसके अन्तर्गत कुछ ऐसे सिद्वान्तों और नियमों का अध्ययन किया जाता है, जिनके द्वारा श्रम करने वाले व्यक्तियों के व्यवहार को समझा जा सके।

3. इस अध्ययन के अन्तर्गत तीन प्रमुख बातें आती है–

(अ) कर्मचारी के चयन, उनकी पदोन्नति और उपयुक्त स्थान पर नियुक्ति के लिए व्यक्तिगत भिन्नताओं के ज्ञान का उपयोग करना।

(ब) मानवीय अभियन्त्रण द्वारा मनुष्य और मशीन के सम्बन्ध का अध्ययन करना।

(स) उद्योग–धन्धों में मानवीय सम्बन्ध और सामाजिक गतिविधियों का अध्ययन करना।

औद्योगिक मनोविज्ञान का उद्देश्य केवल उत्पादन की मात्रा का अध्ययन करना ही नही है, बल्कि कर्मचारी के मानसिक सुख और शारीरिक आराम का भी अध्ययन है।

8.4 औद्योगिक मनोविज्ञान का इतिहास

प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जब विभिन्न औद्योगिक संस्थानों में उत्पादन, कार्यक्षमता तथा कामगारों से संबंधित समस्याऍ बढ़ने लगी तथा औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों की सलाह और सेवाओं के लिए उद्योगपतियों को जरूरत लगी। इसी समय औद्योगिक मनोविज्ञान को एक सम्मानपूर्ण अस्तित्व मिला।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद औद्योगिक संस्थानों में मानव समस्यायें बढ़ने लगी इस कारण औद्योगिक मनोविज्ञान की ओर ध्यान आकर्षित किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ग्रेट ब्रिटेन की चिकित्सा शोध समिति की व्यावहारिक मनोविज्ञान शोध शाखा ने औद्योगिक संस्थानों की अनेक समस्याओं का शोधपूर्ण अध्ययन किया और उनके समाधान प्रस्तुत किए। सन् 1961 ई. में लीविट ने औद्योगिक मनोविज्ञान को संगठनात्मक मनोविज्ञान कहा और उसके कुछ ही समय बाद औद्योगिक मनोविज्ञान में संगठनात्मक मनोविज्ञान का प्रवेश होने लगा तथा औद्योगिक परिस्थितियों में संगठन के तत्वों पर जोर दिया जाने लगा।

अमरीकी मनोवैज्ञानिक संघ की औद्योगिक मनोविज्ञान शाखा सन 1945 ई. में स्थापित की गयी तथा औद्योगिक मनोविज्ञान को व्यावसायिक मान्यता मिली। इसका धनात्मक प्रभाव औद्योगिक मनोविज्ञान के विकास एवं विस्तार पर पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने के पश्चात् यूरोप तथा एशिया के विभिन्न भागों में इसका विकास तेजी से हुआ। जापान और जर्मनी जो उस युद्ध में नष्ट हो चुके थे उन्होंनें तेजी से अपने देश मे औद्योगिक विकास किया और इस आधार पर अपने को विश्व की प्रमुख शक्तियों के रूप में उभारा है। भारत वर्ष के विश्वविद्यालयों के कुछ प्रमुख प्राध्यापाकों के औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य करना शुरू किया और भारतीय सामाजिक परिवेश के आधार पर उद्योग एवं व्यावसायिक संस्थानों की समस्याओं को प्रकाश में ध्यान देना शुरू किया। डा.एच.सी. गांगुली, ए.चटर्जी तथा ए.एस.कक्कड के योगदान इस दिशा में महत्त्वपूर्ण है। विदेशों में औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने वालों की संख्या तीव्र गति से बढ़ी है।

8.5 औद्योगिक मनोविज्ञान का विस्तार या सीमा

जिस प्रकार मानव–जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनोविज्ञान का उपयोग दिन–ब–दिन प्रचलित होता जा रहा है, उसी प्रकार उद्योग–धन्धों में मनोविज्ञान का प्रचलन और आवश्यकता तेजी से बढ रही है। औद्योगिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत विस्तृत एवं जटिल है। पहले तो इसका क्षेत्र उद्योगपतियों की इच्छाओं, नीतियों तथा उपलब्धियों तक ही सीमित था किन्तु प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्धों के बाद औद्योगिक मनोविज्ञान के बदलते हुए स्वरूप के साथ इसके क्षेत्र में भी विस्तार होने लगा।

आज औद्योगिक मनोविज्ञान का विस्तार इतना बढ गया है कि इसके क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। कर्मचारियों की व्यक्तिगत भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त व्यवसाय के लिए उनके चयन करने की विधियों का निर्णय करना, जो व्यक्ति काम करने के लिए रखे गये है उनके प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना, कार्य करने की दशाओं में सुधार हेतु अनुसन्धान करना, मजदूरों की थकान, अरोचकता, दुर्घटना के कारणों का पता लगाना और उनका समाधान करना तथा बच्चों को उनके जीवन लक्ष्य के चयन करने में सही सलाह देना आदि औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र है।

औद्योगिक मनोविज्ञान के विस्तार को निम्नलिखित आधार पर समझ सकते हैं –

1. **औद्योगिक मनोविज्ञान के आधार** – औद्योगिक मनोविज्ञान की उत्पत्ति तथा विकास मशीन युग के कारण हुआ। उस समय में मजदूर की दशा गुलाम से भी बदतर हो गयी थी आर्थिक दबाव तथा सामाजिक तिरस्कार ने मजदूर को इन्सान की श्रेणी से बाहर कर दिया था। यह स्थिति बहुत दिन तक नहीं चल सकी, इसलिए विद्वानों ने उद्योगों के लिए कुछ आधार निश्चित किये। औद्योगिकरण को मनोवैज्ञानिक चोला पहनाया गया। इस प्रकार सबसे पहले औद्योगिक मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र, आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक तत्वों पर आधारित किया गया।

2. **भौतिक पक्ष का अध्ययन** – इसके अन्तर्गत कार्य की दशाओं का और औद्योगिक वातावरण का अध्ययन किया जाता है।

उदाहरण – कारखाने की बिल्डिंग का तापक्रम तथा प्रकाश की व्यवस्था आदि। इस प्रकार औद्योगिक मनोविज्ञान का अध्ययन मे उन भौतिक तत्वों को सीमाबद्ध किया जाता है, जिनका सम्बन्ध उत्पादन तथा कर्मचारी से है, अर्थात् किस प्रकार भौतिक वातावरण कार्योत्पादन तथा कर्मचारी की सुरक्षा को प्रभावित करता है। दुर्घटना, थकान एवं अरोचकता जैसी समस्याओं का अध्ययन इसी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

3. **सिद्धान्तों का अध्ययन** –इस क्षेत्र के अन्तर्गत उन सिद्धान्तों तथा विधियों का अध्ययन किया गया है, जिनके द्वारा मानवीय सम्बन्धो सुधारा जा सके, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार और 'इंसान–इंसान है' को क्रियाशील किया सके। इस क्षेत्र के अन्तर्गत व्यावसायिक चयन एवं मार्गोपदेशन, प्रशिक्षण विधियॉ, कार्य–विश्लेषण तथा साक्षात्कार जैसी अनेक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

3. **मनोवृत्तियॉ तथा प्रेरणाओं का अध्ययन** – इस क्षेत्र के अन्तर्गत कर्मचारियों और

मालिकों की मनोवृत्तियॉ और प्रेरणाओं का अध्ययन किया जाता है। विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों का विश्लेषण करके और उनके प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। कर्मचारी और मालिक के नैतिक स्तर को विशेष महत्व दिया जाता है। इसके लिए प्रेरणात्मक सहयोग की बहुत आवश्यकता होती है।

4. **मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन** – औद्योगिक प्रणाली और उद्योगपति का उद्देश्य केवल उत्पादन और मुनाफा कमाना ही नहीं होना चाहिए, बल्कि कर्मचारी के मानसिक स्वास्थ्य का सन्तुलित रहना बहुत आवश्यक होता है। '

5. **मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन** – केवल भौतिक पक्ष की उन्नति से ही औद्योगिक विकास सम्भव नहीं होता है, बल्कि मानवीय सम्बन्ध का ठीक रहना बहुत आवश्यक है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत उन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, जिनका सम्बन्ध कर्मचारी–निरीक्षक, कर्मचारी प्रबन्धन, तथा कर्मचारी–कर्मचारी से होता है। इसके अतिरिक्त उद्योगशाला में सामाजिक मनोविज्ञान तथा उद्योग में मानवीय पक्ष जैसी समस्याओं का अध्ययन भी इस क्षेत्र की सीमा में आता है।

6. **विज्ञापन एवं विक्रय** – उत्पादन का सबसे अन्तिम क्षेत्र विज्ञापन तथा खपत है। आजकल की औद्योगिक होड़ में उपभोक्ता को अपने उत्पादन के प्रयोग के लिए जागरूक बनाना और जीवन मे उपभोक्ता के लिए उस सामग्री की क्या आश्यकता है ये समझाना आधुनिक विक्रय की विशेषता है। इस प्रकार उत्पादित माल का विज्ञापन और खपत औद्योगिक मनोविज्ञान का महत्त्पूर्ण क्षेत्र है।

7. **अन्य क्षेत्र** – इन क्षेत्रों के अलावा मजदूरों का मनोबल, कारखाने का निरीक्षण, कर्मचारी का समायोजन, हडताल, घिराव, और तालाबन्दी आदि ऐसी समस्याएँ है जिनका अध्ययन औद्योगिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

आधुनिक औद्योगिक मनोविज्ञान ने कर्मचारियों के सुख, सन्तोष, खुशी और भलाई को सबसे उपर माना है। औद्योगिक मनोविज्ञान के द्वारा उद्योग की ऐसी कोई भी नीति नही बनाइ जाती है जो कर्मचारी के हित में नहीं हो और उसे आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है।

8.6 समय तथा गति अध्ययन

समय तथा गति अध्ययन वह अध्ययन है जिनमें इस बात की खोज की जाती है कि उद्योंग या संगठन मे किसी कार्य को ठीक से करने के लिए कौन कौन सी गतियॉ

आवश्यक होती है और प्रत्येक गति के लिए समय की कितनी मात्रा आवश्यक होती है।

परिभाषायें

'समय तथा गति अध्ययन का तात्पर्य उस अनुसंधान से है, जो औद्योगिक कार्य में निहित गतियों का विश्लेषण कर कुछ निि्चत इकाइयों के कार्यान्वयन में निहित समय की खोज की जाती है।' 'चैपलिन

''समय तथा गति विश्लेषण का तात्पर्य औद्योगिक संगठनात्मक मनोविज्ञान में उस अध्ययन से है, जिसके द्वारा किसी कार्य को समुचित रूप से करने के लिए उपेक्षित समय को निर्धारित किया जाता है।'' रेबर

8.7 समय तथा गति अध्ययन का स्वरूप

(क) समय तथा गति अध्ययन वास्तव में अनुसंधान की एक पद्धति है। अनुसंधान के कई तरीके होते है, जिनमें समय तथा गति अध्ययन भी एक तरीका है।

(ख) समय तथा गति अध्ययन के द्वारा औद्योगिक कार्य में लगे समय तथा गति से संबंधित अनुंधान किए जाते है।

(ग) किसी औद्योगिक कार्य को ठीक से संचालित करने के लिए कुछ निश्चित तथा आवश्यक गतियॉ जरूरी होती है तथा प्रत्येक गति के लिए निश्चित मात्रा में समय की आवश्यकता होती है। इस अध्ययन का उद्देश्य उन्हीं निश्चित गतियों तथा प्रत्येक गति मे लगने वाले में समय की मात्रा को निर्धारित करना है।

(घ) समय तथा गति अध्ययन का लक्ष्य कम–से–कम मेहनत करके अधिक–से–अधिक उत्पादन करना है।

8.8 गति तथा समय अध्ययन की विशेषताऍ

औद्योगिक संगठन में गति तथा समय अध्ययन दो पक्ष है :–

8.8.1 गति अध्ययन – गति अध्ययन वह कार्य–विधि है, जिसके द्वारा किसी औद्योगिक कार्य में लगने वाली गतियों का विश्लेषण किया जाता है। इस गतियों में कुछ तो आवश्यक गतियॉ और कुछ अनावश्यक गतियॉ होती है। गति अध्ययन के द्वारा अनावश्यक गतियों को निर्धारित किया जाता है तथा कर्मचारी को उन गतियों को छोड़ देने की सलाह दी जाती है। इससे लाभ यह होता है कि उन अनावश्यक गतियों में लगी मेहनत के रूप के कर्मचारी की खर्च होने वाली शक्ति की बचत हो जाती है और अनावश्यक थकान से वह बच जाता है।

औद्योगिक संगठन में जो भी काम होते है उन कार्यो में प्रयोग होने वाली आवश्यक गति के तत्वों को निर्धारित किया जाता है, फिर उन्हें इस ढंग से संगठित किया जाता है कि वह कार्य अधिक मधुर, सरल तथा सहज बन जाता है, और कर्मचारी उसे कम मेहनत करके ही पूरा कर लेता है।

8.8.1.1 गति अध्ययन के सिद्धान्त

गति अध्ययन के निम्नलिखित सिद्धान्त है–

1. **क्रमिक गतियों में सम्बद्ध** – एक गति को दूसरे से इस तरह सम्बद्ध होना चाहिए कि दूसरी क्रमिक गतियों को बाद वाली गति में गुजर जाना चाहिए। इसी तरह पहली गति को बाद वाली गति के लिए अनुकूल होनी चाहिए।

2. **गतियों का क्रम**– गतियों का क्रम ऐसा होना चाहिए कि एक गति को दूसरी गति तक गुजरने में विशेष ध्यान–देने की आवश्यकता न हो। दूसरे शब्दो में, यह कार्य अधिक से अधिक स्वचालित हो।

3. **गतियों का अनुक्रम का ढॉचा** – गतियों के अनुक्रम का ढॉचा कुछ ऐसा होना चाहिए कि गति के विभिन्न तत्त्वों से जो स्वचलित निष्पादन होता है उसमें एक सहज लय स्थापित हो सके।

4. **गतियों के प्रकार** – कोणीय गतियों की अपेक्षा सतत गतियों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

5. **गतियों की संख्या** – .गतियों की संख्या को जितना हो सके घटाना चाहिए। जब गतियों की संख्या कम होती है तब स्वचालित तथा लयात्मक रूप कार्य करने में सुविधा होती है।

6. **हाथों के उपयोग** – दोनों हाथों के समकालिक उपयोग पर बल देना चाहिए अर्थात दोनों हाथों से काम कराने का समय बराबर होना चाहिए ।

8.8.2 समय– अध्ययन –

समय–अध्ययन का अर्थ वह अध्ययन है जिसके द्वारा किसी गति के लिए अपेक्षित समय की मात्रा को निर्धारित किया जाता है अर्थात किसी गति को करने के लिए जितने समय की जरूरत होती है। अपेक्षित समय की मात्रा को निर्धारित करने की प्रक्रिया को समय अध्ययन कहते है।

8.9 वैज्ञानिक प्रबन्ध

वैज्ञानिक प्रबन्ध का तात्पर्य किसी संगठन या उद्योग के ऐसे प्रबन्ध से है जिसमें कर्मचारी को कम से कम मेहनत करके अधिक से अधिक मजदूरी मिले और प्रबन्धक को कम से कम लागत पर अधिक से अधिक लाभ हो । किसी भी उद्योग या संगठन का मुख्य उद्देश्य या लक्ष्य कर्मचारी तथा प्रबन्धक दोनो को अधिक से अधिक संतुष्ट करना होता है। यह तभी संभव होता है जबकि कर्मचारी को कम से कम मेहनत के साथ अधिक से अधिक मजदूरी मिले और प्रबन्धक को कम से कम लागत के साथ अधिक से अधिक लाभ हो। हर प्रकार के उद्योग में इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक प्रबन्ध कि आवश्यकता होती है। हर उधोग इसके लिए एक सीमा तय करता है उसी सीमा को उसका वैज्ञानिक प्रबन्ध कहा जाता है।

8.9.1 परिभाषायें

कर्मचारी की कार्यकुशलता तथा कार्य की अवस्थाओं को उन्नत बनाने के उद्वेश्य से वैज्ञानिक विधियों के उपयोग को वैज्ञानिक प्रबन्ध कहते है। **चैपलिन**

किसी उद्यम को नियोजित करने ,संगठित करने तथा निर्देशित करने के कार्यो के कार्यान्वयन को प्रबन्ध कहते है। **रेबर**

8.9.2 वैज्ञानिक प्रबन्ध के पक्ष

वैज्ञानिक प्रबन्ध एक ऐसी औद्योगिक व्यवस्था है जिसके मुख्य तीन पक्ष होते है–

क. **योजना** – वैज्ञानिक प्रबन्ध की एक विशेषता यह है कि इसमें किसी उद्यम या कार्य की योजना वैज्ञानिक ढंग से बनायी जाती है। योजना इम ढंग से बनायी जाती है जो उद्योग के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होती हे।

ख. **संगठन** – हर एक उद्योग मे एक संगठन बनाया जाता है। जो उसकें औद्योगिक लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होता है।

ग. **निर्देशन** – इसमें संगठन या उद्योग को सलाहकारों द्वारा निर्देशित किया जाता है जिससे संगठन के उद्देश्य या लक्ष्य को प्राप्त करना संभव हो पाता है।

8.9.3 वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्वान्त

कर्मचारी कम से कम मेहनत करके अधिकतम मजदूरी प्राप्त करना चाहता है और दूसरी ओर प्रबन्धक कम लागत से अधिकतम उत्पादन चाहता है। दोनो के लक्ष्य आपस मे विरोधी होतें है इसलिए उनसे कइ समस्यायें उत्पन हो जाती है इन समस्याओं के समाधान

के लिए टेलर ने चार मौलिक सिद्धान्तों का उल्लेख किया जिन्हे वैज्ञानिक प्रबन्ध का सिद्धान्त कहा जाता है। इन्हे टेलर का सिद्धान्त या टेलरवाद भी कहा जाता है। ये सिद्धान्त निम्नलिखित है–

1. **उत्तम कार्य विधि का सिद्धान्त** – टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध का एक मुख्य आधार कार्य करने की उत्तम विधि है। सर्वोत्तम विधि का वह अर्थ है जो सरल हो, कम खर्च हो तथा जिसमें समय की बचत होती हो। इस सिद्धान्त के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि किसी कार्य को करने की अनेक विधियों में से केवल एक ऐसी विधि को चुनना चाहिये जो सबसे अच्छी यानी सर्वोत्तम विधि हो। ऐसी कार्य विधि का चयन करते समय कर्मचारी तथा कार्य्र के स्वरूप को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

2 **उत्तम कर्मचारी के चयन का सिद्धान्त** – दिये गये कार्य के लिए किसी उत्तम कर्मचारी का चयन किया जाना चाहिए। उत्तम कर्मचारी का अर्थ वह कर्मचारी हैं जो उस कार्य के लिए सबसे अधिक अनुकूल हो। हर अलग कार्यो के लिए अलग अलग कर्मचारिओं की आवश्यकता होती है। अत; एक कर्मचारी एक कार्यविशेष के लिए निपुण हो सकता है किन्तु दूसरे कार्य के लिए वह अनिपुण हो सकता है। इसलिए वैज्ञानिक प्रबन्ध इस बात पर बल देता है कि किसी कार्यविशेष के लिए ऐसे कर्मचारी का चयन किया जाना चाहिए जो सामर्थ्य, कौशल ,रूचि, अभिक्षमता तथा स्वभाव के साथ साथ शारीरिक रूप से भी उस कार्य विशेष के लिए उपयुक्त और अपेक्षाओं के अनुकूल हो। इसके लिए कई मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

उदाहरण – बुद्धि परीक्षण, अभिक्षमता परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण, अभिरूचि परीक्षण, धातु तथा व्यक्तित्व परीक्षण के साथ साथ साक्षात्कार आदि । अनुकूल कर्मचारी के चयन करने के बाद उन्हें प्रशिक्षण देना भी आवश्यक होता हैं ताकि वे अपने कार्य की आवश्यकताओं को पहचान सके ओर उस कार्य से संबधित अपनी जिम्मेदारी को पूरा कर सके। उपयुक्त प्रशिक्षण से कम से कम मेहनत करके अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करना संभव हो पाता है।

3. **प्रोत्साहन के लिए उत्तम विधि का सिद्धान्त** – वैज्ञानिक प्रबन्ध इस सिद्धान्त पर आधारित है कि संगठन या उद्योग के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारी को प्रोत्साहन दिया जाए। किसी भी उद्योग मे दो तरह के प्रोत्साहन का उपयोग किया जाता है । कर्मचारी को अपने कार्य के प्रति प्रेरित करने में इन दोनो तरह के प्रोत्साहनों का हाथ होता है।

1. **आर्थिक प्रोत्साहन** – आर्थिक प्रोत्साहन का तात्पर्य मुद्रा से होता है । जब कर्मचारी को आर्थिक प्रोत्साहन नहीं मिलता है तब उसमें असंतुष्टि का भाव आने लगता है।

2. **गैर आर्थिक प्रोत्साहन** – गैर आर्थिक प्रोत्साहन का तात्पर्य उत्तरदायित्व, सहभागिता, सम्मान, अगिम भुगतान, पदोन्नति से होता है । जब कर्मचारी को आर्थिक प्रोत्साहन के साथ गैर आर्थिक प्रोत्साहन मिलता हैतो उसकी कार्य के प्रति अनुकूल मनोवत्ति बन जाती है ।

8.9.4 औद्योगिक मनोविज्ञान पर वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रभाव

टेलर के कार्यो का प्रभाव औद्योगिक मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र, अध्ययन विधियॉ तथा उद्देश्यों पर पडा। टेलर ने औद्योगिक मनोविज्ञान की विषय–सामग्री को निम्न क्षेत्रों के अन्तर्गत रखा–

1. कर्मचारियों के उचित चयन के लिए तथा बच्चों द्वारा जीवन व्यवसाय चुनने के लिए उचित मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की खोज करना और उनको प्रयोग में लाना।

2. अनावश्यक गतियों को रोकने के लिए, आराम के घंटों का अनुचित प्रयोग रोकने के लिए, एकरसता तथा दुर्घटनाओं को रोकने के लिए, उत्पादन बढाने के लिए और मनुष्य की शक्ति के उपयोग के लिए सबसे अच्छे तरीकों की खोज करना है।

3. कर्मचारी और कार्य संचालक को प्रशिक्षित करना।

4. कर्मचारी के स्वास्थ्य्, आराम और विकास के लिए प्रकाश एवं वातायन जैसी दशाओं का अध्ययन करना।

5. उन तत्वों का अध्ययन करना जिनका प्रभाव बिक्री तथा विज्ञापन आदि पर पड़ता है।

इस प्रकार टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध ने औद्योगीकरण को वैज्ञानिक बनाया और औद्योगिक मनोविज्ञान के आर्थिक आधार को पूरी तरह व्यवस्थित किया। वैज्ञानिक प्रबन्ध से उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ मजदूरी में भी वृद्धि हुइ इससे औद्योगिक मनोविज्ञान के अध्ययन का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया।

इस प्रकार संसार के साधन–सम्पन्न और स्वतन्त्र देशों ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को अपनाया तथा आर्थिक उन्नति की ओर अग्रसर हुए।

8.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सत्य/असत्य में दीजिये–

I. औद्योगिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक नैदानिक शाखा है।

II. औद्योगिक मनोविज्ञान भौतिकवादी एवं मानवतावादी दोनों दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करता है।

III. अमेरिकी मनोवैज्ञानिक संघ की औद्योगिक मनोविज्ञान शाखा का प्रारम्भ सन् 1948 में हुआ।

IV. औद्योगिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत भौतिक पक्ष का भी अध्ययन किया जाता है।

V. समय तथा गति अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान से सम्बन्धि है।

VI. समय तथा गति अध्ययन का लक्ष्य कम मेहनत करके अधिक उत्पादन करना है।

VII. वैज्ञानिक प्रबन्ध एक औद्योगिक व्यवस्था होती है, जो किसी उद्योग को नियेजित, संगठित व निर्देशित करता है।

VIII. उत्तम कार्य विधि का सिद्धान्त टेलर द्वारा दिया गया ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. असत्य
6. सत्य
7. सत्य
8. सत्य

8.11 सारांश

- औद्योगिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह व्यावहारिक शाखा है जो किसी भी उद्योग में काम करने वाले व्यक्तियों के व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन करती है।
- इसके अन्तर्गत कर्मचारियों एवं उद्योग मालिकों की मनोवृत्तियों और प्रेरणाओं का अध्ययन किया जाता है।
- औद्योगिक मनोविज्ञान का विकास प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान हुआ।
- औद्योगिक मनोविज्ञान की विस्तार या सीमा के अन्तर्गत कई सिद्धान्तों का अध्ययन होता है साथ ही कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य् मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन भी आता है।
- किसी भी उद्योग या संगठन में किसी कार्य को ठीक से करने के लिए कुछ निश्चित

गयिॉ होती है और प्रत्येक गति के लिए एक निश्चित समय की मात्रा होती है। इसे गति व समय अध्ययन कहते है।

- गति अध्ययन के निम्नलिखित सिद्धान्त है। 1. क्रमिक गतियों के सम्बन्ध 2. गतियों का क्रम 3. गतियों का अनुक्रम ढांचा 4.गतियों के प्रकार, 5. गतियों की संख्या 6. हाथों का उपयोग।
- समय अध्ययन के द्वारा किसी गति के लिये अपेक्षित समय की मात्रा को निर्धारित किया जाता है।
- वैज्ञानिक प्रबन्ध किसी उद्योग में ऐसे प्रबन्ध को कहा जाता है, जिसमें कर्मचारियों को कम मेहनत करके अधिक से अधिक मजदूरी मिले और प्रबन्धक को कम लागत पर अधिक लाभ हो।
- वैज्ञानिक प्रबन्ध के निम्नलिखित तीन पक्ष होते है। 1. योजना, 2. संगठन, 3. निर्देशन
- वैज्ञानिक प्रबन्ध के तीन सिद्धान्त है। 1. उत्तम कार्य विधि 2. उत्तम कर्मचारियों के चयन का सिद्धान्त, 3. प्रोत्साहन के लिए उत्तम विधि का सिद्धान्त

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक मनोविज्ञान की परिभाशा एवं प्रकृति को समझाइये !
2. औद्योगिक मनोविज्ञान के विस्तार को बताइये !
3. समय एवं गति अध्ययन की विशेशताओं को बताइये !
4. वैज्ञानिक प्रबन्ध क्या है ? इसके मुख्य सिद्धान्तों को समझाइये।

8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा. मौहम्मद सुलेमान एवं डा. विनय कुमार चौधरी – आधुनिक औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान।
2. डा. आर. के ओझा – औद्योगिक मनोविज्ञान
3. डा. मोहम्मद सुलेमान एवं डा. दिनेश कुमार – संगठनात्मक व्यवहार
4. डा. रामनाथ शर्मा – व्यावहारिक मनोविज्ञान की रूपरेखा
5. H.L. Kaila- Industrial and Organitional Psychology
6. के.के. आहूजा –औधोगिक मनोविज्ञान एवं संगठनात्मक व्यवहार

इकाई–9 : औद्योगिक मनोबल एवं कार्य आंकलन

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 औद्योगिक मनोबल एवं उसका स्वरूप

9.3 औद्योगिक मनोबल की परिभाषायें एवं विशेषतायें

9.4 औद्योगिक मनोबल के कारक

9.5 मनोबल को मापने की विधियॉ

9.6 कार्य आंकलन का अर्थ

9.7 कार्य आंकलन के मापदण्ड

9.8 कार्य आंकलन की विधियां

9.9 कार्य आंकलन की उपयोगिता

9.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

9.11 सारांश

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.13 संन्दर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

औद्योगिक मनोविज्ञान की इस इकाई के अन्तर्गत आप इस क्षेत्र के कुछ मुख्य पहलुओं को जान सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- औद्योगिक मनोबल का अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेंगे।
- मनोबल को प्रभावित करने वाले कारक, मापने की विधियों एवं मनोबल बढाने की विधियों को जान सकेंगे।
- कार्य आंकलन के अर्थ को समझ सकेंगे।
- कार्य आंकलन की विधियों एवं महत्व को समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

औद्योगिक क्षेत्र के प्रबंधन का हमेशा यह प्रयास रहता है कि कर्मचारी का मनोबल हमेशा ऊँचा बना रहे। मनोबल का अर्थ किसी समूह के सदस्यों के बीच भाईचारा एवं आत्ममीयता के भाव से है। मनोबल एक प्रकार का हौसला है, इस मनोबल के कारण ही औद्योगिक क्षेत्र में कार्य करने वाला कर्मचारी स्वयं को संतुष्ट पाता है। मनोबल एक ऐसी मनोवृत्ति है जो कर्मचारी में हमेशा मौजूद रहती है और उसे समूह के उद्देश्य को प्राप्त करने तथा उस पर भरोसा रखने के लिए प्रेरित करती है। मनोबल के कारण ही कर्मचारियों के कार्य क्षमता में वृद्धि होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

कार्य आंकलन का अर्थ कर्मचारी के द्वारा किये गये कार्यो एवं उसकी गुणवत्ता के मूल्यांकन से है। इसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि कर्मचारी द्वारा जो कार्य किया गया है वह सही है या नही! इस मूल्यांकन के द्वारा औद्योगिक क्षेत्र में कर्मचारी एवं प्रबन्धन **दोनो ही लाभान्वित होते है।**

9.2 औद्योगिक मनोबल और उसका स्वरूप

मनोबल का तात्पर्य किसी समूह के सदस्यों के बीच एकता, भाईचारा एवं आत्मीयता के भाव से है।

क. औद्योगिक मनोबल से तात्पर्य किसी उद्योग के कर्मचारी तथा कर्मचारियों के एक निहित भाव से है। मनोबल का संबंध मुख्य रूप से कर्मचारी की भावात्मक प्रक्रिया से है।

ख. औद्योगिक मनोबल का संबंध समूह के प्रति निष्ठा के भाव से है। अर्थात् किसी कर्मचारी में अपने समूह में होने का भाव है या नहीं, और यदि है तो उसमें निष्ठा की मात्रा किस सीमा तक है।

ग. औद्योगिक मनोबल का एक लक्ष्य सामूहिक कार्य तथा लक्ष्यों के प्रति कर्मचारी की मनोवृत्ति है।

किसी समूह के मनोबल का ऊँचा रखने का अर्थ होता है कार्य में लगन । उद्योग–धन्धों में मनोबल शब्द का प्रयोग विभिन्न रूप में किया जाता है। जिस कारखाने के कर्मचारी अपने औद्योगिक वातावरण से पूरी तरह से सन्तुष्ट होते है, उस कारखाने का मनोबल–स्तर सदैव ऊँचा रहेगा। जो कर्मचारी कार्य परिस्थितियों से असन्तुष्ट रहते हैं वो कारखाने के मनोबल को गिरा देते है। मनोबल उच्च और निम्न दोनो प्रकार का हो सकता है, किन्तु एक समूह में एक साथ दोनों प्रकार (उच्च एवं निम्न) का मनोबल–स्तर स्थिर नहीं रहता है। हड़ताल के

समय मजदूरों का मनोबल जहॉ ऊँचा होता है, तो उद्योगपति की दृष्टि से वह निम्न स्तर का होता है। इसी प्रकार तालाबन्दी की स्थिति में जहॉ उद्योगपति का मनोबल उच्च होता है, वहॉ कर्मचारी की निगाह में वह बहुत ही गिरे स्तर का होता है। इसका अर्थ समय, परिस्थिति, स्थान तथा समूह आदि के साथ–साथ मनोबल बदलता रहता है। मनोबल एक ऐसी मनोवृत्ति है जो कर्मचारी में हमेशा मौजूद रहती है और उसे समूह के सामान्य उद्देश्य प्राप्त करने हेतु समूह में भरोसा रखने के लिए जागरूक रखती है तथा सहयोग की भावना से कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। कर्मचारियों में जब इसका विकास होता है तो कार्य–क्षमता की और उत्पादन दोनों बढ़ते हैं।

9.3 औद्योगिक मनोबल की परिभाषा और विशेषताएॅ :

''औद्योगिक मनोबल कर्मचारी की वह भावना है जो उसे सदैव इस बात की अनुभूति कराती रहती है कि वह अपने कर्मचारी समूह का एक सदस्य है और समूह के सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसे अपने समूह में पूरा विश्वास रखना है''

ब्लम

1. **निराशा एवं द्वंद की अनुपस्थिति** – मनोबल की एक विशेषता निराशा एवं द्वंद की अनुपस्थिति है। जिस समूह के सदस्यों का मनोबल ऊॅचा रहता है उनमें आक्रामकता तथा द्वंद का अभाव होता है। इसके विपरीत निम्न मनोबल की स्थिति में समूह के सदस्य आक्रामकता, कुंठा तथा द्वंद से पीडित रहते है।

2. **सुख या आनन्द का भाव** – मनोबल की एक विशेषता सुख या आनन्द का भाव है। जिस कार्य समूह के सदस्यों का मनोबल ऊचा होता है वे सुखी तथा आनंदित रहते है। इसके विपरीत निम्न मनोबल वाले कर्मचारियों में सुख और आनन्द की कमी पायी जाती है।

3. **समायोजन** – मनोबल की एक विशेषता अच्छा व्यक्तिगत समायोजन है। जब किसी उद्योग के कर्मचारियों का मनोबल ऊॅचा होता है तब उनका व्यक्तिगत जीवन भी संतुलित तथा समायोजित होता है। इसके विपरीत निम्न औद्योगिक मनोबल की स्थिति में कर्मचारी कुसमायोजन के शिकार बन जाते है।

4. **समग्रता का भाव** – जिस कार्य समूह का मनोबल उच्च होता है उसके सदस्यों में समग्रता या एकता का भाव पाया जाता है। इसके विपरीत जिस समूह का मनोबल टूटा हुआ होता है उसके सदस्यों में समग्रता का अभाव होता है।

5. **सकारात्मक मनोवृत्ति** –जब कर्मचारियों की मनोवृत्ति अपने कार्य समूह के प्रति

अनुकूल होती है तब उस समूह का मनोबल ऊँचा होता है, और उसके विपरीत जब नकारात्मक मनोवृत्ति होती है तो निम्न मनोबल होने का संकेत मिलता है।

9.4 औद्योगिक मनोबल के निर्धारक या कारक

वह कारक जो कर्मचारियों के मनोबल को उच्च या निम्न बनाने में उत्तरदायी होते है, उन्हें औद्योगिक मनोबल के कारक कहा जाता है। औद्योगिक मनोबल का यह पक्ष प्रबंधकों के लिए विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि वे इन कारकों या निर्धारकों पर आधाारित सिद्धान्तों पर चलते हुए अपने उद्योग के कर्मचारियों के मनोबल को उन्नत बनाए रखने में सफल हो सकते है।

औद्योगिक मनोबल को निर्धारित करने वाले कारकों को मुख्य रूप से निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) **सकारात्मक निर्धारक** – उद्योग से सम्बन्धित वह कारक जो कर्मचारियों के मनोबल को सीधे प्रभावित करते है। इस कारकों का प्रभाव अच्छा होता है इसलिए इन्हें सकारात्मक निर्धारक कहा जाता है। इनमें कुछ तो संज्ञानात्मक कारक होते है और कुछ प्रेरणात्मक तथा कुछ भावात्मक कारक होते है। ये सभी कारक औद्योगिक मनोबल को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते है। औद्योगिक मनोबल इस बात पर निर्भर करता है कि ये सभी कारक किस संख्या में तथा किस मात्रा में उपलब्ध है। इन कारकों के निम्नलिखित प्रकार है–

I. **सामूहिक लक्ष्य** – प्रत्येक कार्य समूह का एक सामूहिक लक्ष्य होता है। यह लक्ष्य जिस हद तक सकारात्मक होगा कर्मचारी उसी हद तक उसकी ओर आकर्षित होंगे तथा उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास करेगें । इससे उनके बीच एकता और भाइचारा बढेगा जिससे उनका मनोबल ऊँचा होगा। जिस कार्य समूह के सामूहिक लक्ष्य में एकता, भाईचारा, तथा अहम् का भाव कम होगा, उसका मनोबल निश्चित रूप से गिर जाएगा। सकारात्मक लक्ष्य एक चुंबकीय बल्ले की हैसियत रखता है, जो समूह के सदस्यों को इस हद तक संगठित कर देता है कि उनका मनोबल काफी ऊँचा हो जाता है।?

II. **लक्ष्य के प्रति उन्नति का बोध** – किसी कार्य समूह के मनोबल को बढाने में सामूहिक लक्ष्य का सकारात्मक होना काफी नहीं होता है बल्कि समूह के सदस्यों में उस लक्ष्य की ओर बढने का आभास भी जरूरी होता है। जब समूह के सदस्यों को इस बात का ज्ञान होता है कि वे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है तब इससे उनका साहस बढ़ जाता है, उस दिशा में प्रयास करने की प्रेरणा भी बढ जाती है जिससे उसका मनोबल उन्न्त हो जाता है। दूसरी ओर, जब

उन्हें इस बात का आभास होता है कि वे लक्ष्य से दूर होते जा रहे है तब उस स्थिति में उनका साहस टूट जाता है। जिस समूह के कर्मचारियों को उनके लक्ष्य के प्रति बताया गया उनकी उत्पादकता बढ़ गयी और जिस समूह के कर्मचारियों को यह नहीं बताया गया उनकी उत्पादकता घट गयी।

III. **समूह एकता**– औद्योगिक मनोबल पर समूह एकता का भी प्रभाव पड़ता है। जब समूह के सदस्यों में एकता का गुण पाया जाता है तो उनका मनोबल ऊँचा हो जाता है। समूह एकता का तात्पर्य यह है कि समूह के सदस्य आपस में कितने जुडे हुए हैं, साथ मिलकर काम करने के लिए कितने तैयार है। यदि समूह के सदस्यों में अलग–अलग रहने की प्रवृत्ति होती है तो उनमें समूह एकता की कमी होती है। समूह एकता की स्थिति में कर्मचारियों में भाईचारा और प्रेम का भाव विकसित होता है जिससे उनका मनोबल अपने आप उन्नत बन जाता है। जब समूह में एकता की कमी होती है तो कर्मचारियों में असुरक्षा, तनाव तथा बैर भाव आदि बढ़ जाते है और जिसके कारण उनका मनोबल गिर जाता है।

IV. **पदोन्नति** :– जब किसी मेहनती, ईमानदार और उत्पादन को बढ़ाने वाले कर्मचारी जो वरिष्ठता के क्रम में पदोन्नति का अवसर नहीं दिया जाता है तो वह कर्मचारी धीरे–धीरे कुंठित होने लगते है। जब वे यह देखते है कि उनसे कम जानदार, अकुशल, कामचोर, जूनियर और चापलूस कर्मचारी की पदोन्नति कर दी गई है तो वे कार्य में रूचि लेना कम कर देते है। धीरे धीरे उनकी मानसिक स्थिति भी कमजोर होने लगती है। जिस कार्य से उन्हें सन्तोष प्राप्त होता था उसी से वे कतराने लगते है। धीरे–धीरे वे जिस उद्योग को अपना समझते थे और स्वयं को जिसकी एक ईकाई मानते थे, उसी के प्रति लापरवाही बरतने लगते है। एक समय वह आता है जब कर्मचारी का मनोबल गिरने लगता है और कार्य को एक बोझ समझता है।

V. **त्याग तथा लाभ का भाव** – त्याग से तात्पर्य, कर्मचारी को जो दायित्व सौंपा गया है उसके प्रति वह कितना जागरूक है, और लाभ का अर्थ यह है कि जब वह त्याग करता है तो प्रबंधन की ओर से उसे लाभ मिल रहा है या नहीं। यहॉ लाभ का तात्पर्य आर्थिक प्रोत्साहन के अतिरिक्त पदोन्नति, अग्रिम वेतन आदि अन्य लाभों से है। जब कर्मचारियों को इस बात का अहसास होता है कि उन्हें उनके त्याग के कारणं लाभ मिल रहे है तो उससे उनका मनोबल उन्नत बन जाता है। इसके विपरीत जब उन्हें इस बात का बोध होता है कि उनके अन्य सहकर्मियों की अपेक्षा 'लाभ' उन्हें कम मिल रहा है तो वे निराशा एवं कुंठा से पीड़ित हो जाते है, प्रबंधन के प्रति उनकी मनोवृत्ति नकारात्मक हो जाती है। उनका मनोबल गिर जाता हैं

VI. **औद्योगिक संरचना** – उद्योग की संरचना का प्रभाव भी औद्योगिक मनोबल पर पड़ता है। संरचना के अनुकूल होने पर कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा बना रहता है जबकि अनुकूल नहीं होने पर उनका मनोबल गिरने लगता है।

VII. **पद–स्थिति** – कर्मचारी की पद–स्थिति उसे एक प्रोत्साहन देती ही है इसके साथ–साथ वह मालिक, प्रबन्धकों, और अपने ऑफीसरों को देखकर एक विचार बनाता है कि उसे भी यह पद प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। इसलिए कार्य और कारखाने के प्रति उसकी सोच स्वस्थ होती चली जाती है। जो कर्मचारी अच्छे, इमानदार और कुशल पद पर होते हैं उनकी पद स्थिति उन्हें अधिक अहसास कराती रहती है,। यदि छोटे पद पर का करने वाले कर्मचारी को भी पद का प्रलोभन दिया जाएगा तो कार्य करने के लिए उसकी इच्छा तीव्र होगी और मनोबल बढ़ा रहेगा।

VIII. **उपकरण** – औद्योगिक मनोबल को प्रभावित करने वाले कारकों में उपकरण भी एक महत्त्वपूर्ण कारक है। सही उपकरणों के रहने से कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा होता है क्योंकि उनकी सहायता से वे अपने कार्य सरलता तथा सही समय में पूरा कर लेते है। जब कर्मचारियों को सही उपकरण नही मिल पाते है तो उनका निष्पादन बाधित हो जाता है जिसके कारण उन्हें कार्य संतुष्टि नहीं होती, चिडचिडापन आता है, समय की बरबादी होती है और इसके कारण उनका मनोबल गिर जाता है।

IX. **पर्यवेक्षक का स्वरूप** – पर्यवेक्षक कर्मचारियों तथा प्रबंधक के बीच की कडी होते है इसलिए कर्मचारियों के साथ उनका तात्कालिक संबंध होता है। वह एक ऐसा चरित्र होता है जो एक ओर पिता की तरह हैसियत रखता है। पर्यवेक्षक के व्यवहारों का प्रभाव कर्मचारियों के मनोबल, मनोवृत्तियों तथा उत्पादन पर पड़ता है। जब पर्यवेक्षक अपने कर्मचारियों के साथ कठोर व्यवहार करते है तब उनके अहम् तथा आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है और उनका मनोबल गिर जाता है। किन्तु जब पर्यवेक्षक का व्यवहार कर्मचारियों के साथ उदारवादी होता है तब उनके अहम तथा आत्मसम्मान को संतुष्टि प्राप्त होती है, पर्यवेक्षक के प्रति उनका भाव सकारात्मक बनता है और उनका मनोबल ऊँचा बना रहता है।

X. **पर्यवेक्षक का मनोबल** – जब किसी उद्योग मे कर्मचारियों के मनोबल को ऊँचा बनाए रखना होता है तो इसके लिए यह भी आवश्यक होता है कि उनके अधिकारी, पर्यवेक्षक का मनोबल भी ऊँचा हो। जब पर्यवेक्षक के लिए अलग कार्यालय की व्यवस्था होती है, अन्य कर्मचारियों की अपेक्षा उनके कार्य तथा दायित्वों के अनुसार अधिक वेतन मिलता है । जब उसे उच्च अधिकारियों से उनकी उपलब्धियों के लिए उचित पुरस्कार मिलता है तब उनका मनोबल ऊँचा बना रहता है।

XI. **कर्मचारियों का सहयोग** – सहयोग या सहभागिता का भाव कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाता है और इससे कर्मचारियों को अपने उद्देश्य के लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है। कर्मचारी सहभागिता का अर्थ है कि प्रबंधन द्वारा निर्धारित होने वाली नीतियों, योजनाओं तथा कार्य विधियों में कर्मचारियों का सक्रिय सहयोग। सहभागिता की स्थिति में प्रबंधन का जो लक्ष्य होता है उसके साथ कर्मचारियों का सहयोग स्थापित हो जाता है जो उस लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में एक प्रोत्साहन का कार्य करता है और इसके साथ ही कर्मचारियों का मनोबल उचा हो जाता है।

उपर्युक्त कारकों के अलावा कर्मचारी की सराहना और प्रशंसा उनके मनोबल को बढ़ाती है। कारखाने में अच्छे कर्मचारियों की प्रशंसा और सराहना की जानी चाहिए। उन्हें अन्य कर्मचारियों के सामने पुरस्कार आदि प्रदान किये जाने चाहिए। इससे कुशल कर्मचारी और अधिक कुशल होंगे तथा अकुशल और सुस्त कर्मचारियों में मनोबल स्तर ऊँचा होगा।

(ख) नकारात्मक निर्धारक – मनोबल के नकारात्मक निर्धारक से तात्पर्य वैसे कारकों से है जिनका प्रभाव कर्मचारियों के मनोबल पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। ऐसे कारकों में निलंबन, पदोवनति, छंटनी, स्थानान्तरण आदि से संबद्धित चिन्ता एवं भय है। इसके साथ–साथ कर्मचारियों की अनेक पारिवारिक समस्याएॅ होती है, जो उनके औद्योगिक मनोबल को गिराती है। कारखाने के प्रबन्धकों को कर्मचारियों की पारिवारिक समस्याओं के निराकरण हेतु कुछ उपाय करने चाहिए। इन उपायों के लिए उन्हें एक विभाग खोलना चाहिए, जिससे मनोवैज्ञानिक और अनुभवी व्यक्ति हों। कुल मिलाकर कर्मचारी का सामाजिक जीवन जितना स्वस्थ होगा, वह उतना ही मनोबल उचा होगा। उनका मनोबल हमेशा बना रहेगा।

9.5 मनोबल को मापने की विधियॉ

मनोबल के मापन का अर्थ इस बात की जानकारी प्राप्त करना है कि किसी उद्योग का मनोबल किस हद तक उच्च अथवा निम्न है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से यह मापन बहुत आवश्यक होता है। उद्योग के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों के मनोबल का उन्नत रहना बहुत आवश्यक है। जब प्रबन्धन को कर्मचारियों के उच्च मनोबल की जानकारी मिलती है तो वह वर्तमान उद्योग व्यवस्था को उसी रूप में बनाये रखना चाहता है ताकि औद्योगिक मनोबल उसी रूप में सुरक्षित रहे और जब उसे कर्मचारियों के निम्न मनोबल की जानकारी मिलती है तब वह विभिन्न तरीकों से उन कारणों को जानने का प्रयास करता है जो कर्मचारियों के निम्न मनोबल के लिए जिम्मेदार होते है, और उन्हें दूर करके कर्मचारियों

के मनोबल को उन्नत बनाने का प्रयास करता है ताकि उद्योग को लक्ष्य के करीब ले जाया जा सके। इन दोनों परिस्थितियों में प्रबंधन औद्योगिक मनोबल का मापन करता है।

औद्योगिक मनोबल के मापन के लिए निम्नलिखित दो विधियॉ है–

(क) **आत्मनिष्ठ विधियॉ**– इन विधियों को आत्म प्रतिवेदन प्रविधियॉ भी कहा जाता है। इन विधियों के द्वारा कर्मचारियों से विभिन्न तरीको से सम्पर्क स्थापित कर उनके मनोबल के संबंध में उनसे आत्म प्रतिवेदन या रिर्पोट प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। उनके प्रतिवेदन से पता चलता है कि उनका मनोबल निम्न है अथवा उच्च।

इन विधियों को निम्नलिखित भागों में बॉटा जा सकता है–

I. **समाजमितिक विधि** –इस विधि को मोरेनो ने विकसित किया था। कार्य समूह के सदस्यों के मनोबल को मापने के लिए इसका उपयोग किया जाने लगा। इस विधि द्वारा कर्मचारियों के मनोबल को मापने के लिए एक–दूसरे के प्रति उनकी पसन्द या नापसन्द को पूछने का प्रयास किया जाता है।

II. **प्रश्नावली** –औद्योगिक मनोबल को मापने के लिए प्रश्नावली का उपयोग भी किया जाता है। इसके लिए प्रश्नावली को कार्य समूह के सभी सदस्यों के बीच बॉट दिया जाता है और उनके द्वारा दिये गये उत्तरों का विश्लेषण किया जाता है और उसके आधार पर उच्च एवं निम्न मनोबल को ज्ञात किया जाता है।

III. **साक्षात्कार** –यह औद्योगिक मनोबल को मापने की सरल विधि है। इसके द्वारा विभिन्न श्रेणी के कर्मचारियों से सूचनायें सीधे प्राप्त की जा सकती है। इसके द्वारा आपसी संबंध, उत्पादन की स्थिति, समूह एकता लक्ष्य के प्रति मनोवृत्ति, प्रबंधन के प्रति मनोवृत्ति एवं हड़ताल आदि से सम्बन्धित सूचनाओं को प्राप्त किया जाता है और इसके आधार पर कर्मचारियों के मनोबल का मापन किया जाता है।

IV. **मनोवृत्ति मापनियां** – यह भी मनोबल को मापने की एक विधि है! ठन मापनियों में मुख्य है– थर्स्टन मनोवृत्ति मापनी, लिकर्ट मापनी, बार्गाडस दूरी मापनी आदि इस मापनियों द्वारा कर्मचारियों के व्यवहार का मापन किया जाता है और यह पता लगाया जाता है कि प्रबन्धन के साथ कर्मचारियों की मनोवृत्ति कहॉ तक अनुकूल या प्रतिकूल है। यदि कर्मचारी की मनोवृत्ति अनुकूल है तो उसका उच्च मनोबल है और यदि मनोवृत्ति प्रतिकूल है तो उसका निम्न मनोबल है।

V. **वस्तुनिष्ठ माप** – औद्योगिक मनोबल को मापने के लिए आत्मनिष्ठ विधियों के अलावा

वस्तुनिष्ठ विधियों का भी उपयोग किा जाता है। इसके अन्तर्गत कर्मचारियों की अनुपस्थिति शिकायतें, उत्पादकता, काम छोडकर जाना, हड़ताल आदि की माप की जाती है।

9.6 कार्य ऑकलन या कार्य निष्पादन

कार्य ऑकलन या कार्य निष्पादन के आंकलन का तात्पर्य किसी कर्मचारी के द्वारा किये गये कार्यो की मात्रा तथा उसकी गुणवत्ता के मूल्यांकन से है। इस प्रकार से कर्मचारी की कार्यकुशलता के मूल्यांकन की प्रक्रिया को कार्य आंकलन कहते है।जब किसी नये कर्मचारी का चयन करके उसे किसी नये कार्य पर लगाया जाता है तो उससे यह उम्मीद की जाती है कि वह उस कार्य को एक निर्धारित कसौटी के अनुकूल सम्पादित करेगा। कार्य–निष्पादन आंकलन का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा किसी कर्मचारी की कार्यकुशलता की जॉच करके यह निर्धारित किया जाता है कि वह निर्धारित कसौटी के अनुकूल मात्रा तथा गुण के दृष्टिकोण से अपने कार्य को पूरा करने में कहॉ तक सफल हो सकता है।

9.7 कार्य आकलन के मापदण्ड

ब्लम तथा नेलर ने कार्य आंकलन के लिए कई प्रकार के मापदण्डों का उल्लेख किया है। उन्होंने विभिन्न मापदण्डों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है–

1. **उत्पादन ऑकडे** – उद्योग में किसी कर्मचारी की कार्यकुशलता के आंकलन का सबसे सरल तथा आवश्यक मापदण्ड उत्पादन से संबंधित ऑकडे है। किसी कर्मचारी के द्वारा निष्पादित कार्य के आंकलन से पता चलता है कि वह निर्धारित मापदण्ड के अनुकूल कार्य करने में किस सीमा तक सफल हो सकता है।

2. **व्यक्तिगत ऑकडे** – इसका अर्थ यह है कि कर्मचारी कितनी बार अथवा कितने समय तक अपने कार्य से अनुपस्थित रहता है, कितनी बार देर से कार्य पर जाता है, कितनी बार शिकायतों को दर्ज करता है, कितनी बार दुर्घटनाग्रस्त होता है और कितनी बार समय से पहले कार्य छोडता है आदि। ये सभी व्यक्तिगत ऑकड़ों से संबंधित मापदण्ड है, जिनसे किसी कर्मचारी की कार्यकुशलता का आंकलन आसानी से हो जाता है।

3. **निर्णायक ऑकडे** – कार्य आंकलन के लिए निर्णायक ऑकडों का उपयोग एक मापदण्ड के रूप में किया जाता है। निर्णायक ऑकडों के मुख्य तीन स्रोत है–

I. **पर्यवेक्षणक निर्णय**–किसी कर्मचारी की कार्यकुशलता के संबंध में जब पर्यवेक्षक से निर्णय देने के लिए कहा जाता है तब वह किसी अधीनस्थ कर्मचारी की सामर्थ्य या कार्यकुशलता के संबंध में जो सूचनाएँ देता है उनके आधार पर उसकी कार्यकुशलता का आंकलन किया जाता है। इसे पर्यवेक्षणक निर्णय कहा जाता है।

II. **सहकर्मी निर्णय** – किसी कर्मचारी की कार्यकुशलता के संबंध में उसके साथ काम करने वाले अन्य कर्मचारियों से पूछताछ की जाती है तो उस कर्मचारी की कार्यकुशलता से संबंधित जो सूचनाएँ उसके सहकर्मियों से मिलती है उनके आधार पर भी उसकी कार्यकुशलता का आकलन संभव हो जाता है। इसे सहकर्मी निर्णय कहते है।

III. **स्व–निर्णय**– जब कर्मचारी से ही स्वयं उसके विशेष कार्य निष्पादन के संबंध में आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त की जाती है तो वह अपने कार्य निष्पादन के विभिन्न पक्षों से संबंधित जो सूचनाएँ देता है उसके आधार परं उसकी कार्यकुशलता का आंकलन किया जा सकता है। इसे स्व–निर्णय कहते है।

9.8 कार्य आंकलन की विधियाँ

कार्य आंकलन के लिए कई प्रकार की विधियों का उपयोग किया जाता है। इनमें निम्नलिखित विधियों का उपयोग अधिक किया जाता है–

1. **श्रेणी विधि** – कार्य आकलन के लिए श्रेणी विधि एक सरल तथा उपयोगी विधि है। इस विधि में निर्णायक किसी कर्मचारी के संबंध में अपना निर्णय देता है कि वह कर्मचारी किसी विशेष गुण के दृष्टिकोण से किस हद तक सफल अथवा असफल है। वह यह निर्णय देता है कि वह विशेष गुण तथा योग्यता उस कर्मचारी में किस मात्रा में उपलब्ध है।

2. **कोटि विधि** – कार्य आकलन के लिए कोटि विधि का बहुत अधिक किया जाता है। साधारण कोटिकरण में निर्णायक कर्मचारियों को उच्चतम से निम्नतम कोटि तक में रख कर अपना निर्णय देता है।

चैपलिन के अनुसार –''कोटिकरण का तात्पर्य किसी मापदण्ड के अनुसार व्यक्तियों को न्यूनतम से उच्चतम के क्रम में रखा जाता है।''

कोटि विधि के गुण –

अ. कार्य आकलन के लिए यह विधि सबसे सरल होती है और निर्णायक इसे बडी आसानी से स्वीकार कर लेते है।

ब. इसके द्वारा अधिक से अधिक कर्मचारियों का श्रेणीकरण बडी आसानी से किया जा सकता है।

3. **युग्म तुलना विधि** :– कार्य आकलन के लिए युग्म तुलना विधि का उपयोग बहुत अधिक किया जाता है। इस विधि में किसी सूची या समूह के व्यक्ति की तुलना सूची समूह के प्रत्येक व्यक्ति से की जाती है। युग्म तुलना विधि एक मनोभौतिकी प्रविधि है। जिसमें सभी

उत्तेजनाओं की तुलना युग्मों के रूप में संभावित सभी समुच्चयों में एक दूसरे से की जाती है। जैसे– A, B, C तथा D चार कर्मचारियों का आकलन विश्वसनीयता के शीलगुण की कसौटी पर इस विधि से करना है। ऐसी स्थिति में A, की तुलना B, C तथा D, के साथ, B की तुलना C, D के साथ तथा C की तुलना D के साथ की जायेगी। युग्म तुलना विधि एक बहुत ही सामान्य कार्य विधि है जिसमें वस्तुओं का मान उनकी विमाओं के आधार पर किया जाता है। युग्म तुलना विधि में दो कर्मचारियों के बीच योग्यता के अंतर की मात्रा का पता चलता है।

9.9 कार्य आंकलन की उपयोगिता या महत्त्व

औद्योगिक संगठनों में कार्य आंकलन का निम्नलिखित महत्त्व है–

1. **समान भुगतान दर** – कार्य मूल्यॉकन के आधार पर विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों का मूल्यांकन किया जाता है तथा उनकी कार्य क्षमता के अनुसार उनका वेतन निर्धारित कर दिया जाता है। इससे भुगतान दरों को निर्धारित करने में सहायता मिलती है। इससे ऐसे कर्मचारियों को आर्थिक लाभ होता है जो अपने कार्य में कुशल तथा सक्षम होते है।

2. **कर्मचारी चयन का मूल्यांकन** – कार्य आंकलन से पता चलता है कि किसी कार्य विशेष के लिए जिस कर्मचारी का चयन किया जाता है वह सही है अथवा नहीं। यदि कार्य आकलन के बाद यह पता चलता है कि कर्मचारी अपने काम में कुशल है तो समझा जाता है कि कर्मचारी का चयन सफल रहा है और यदि उसके अकुशल होने का प्रमाण मिलता है तो कर्मचारी चयन की प्रक्रिया की जॉच करने की आवश्यकता होगी। अतः कार्य आंकलन से एक ओर कर्मचारी सही चयन का पता चलता है और दूसरी ओर उसे उन्नत बनाने का अवसर मिलता हैं

3. **कर्मचारी का प्रतिस्थापन** – कार्य आंकलन का एक महत्त्व यह है कि इसके बाद किसी कर्मचारी के प्रतिस्थापन में सहायता मिलती है।जब किसी कार्य में लगे कर्मचारी का मूल्यांकन किया जाता है और उसके अकुशल होने का प्रमाण मिलता है तो उसे किसी अन्य ऐसे कार्य पर प्रतिस्थापित कर दिया जाता है जो उसकी क्षमताओं अथवा कौशल के अनुकूल हो। इसी तरह यदि किसी कर्मचारी के अधिक कुशल होने का प्रमाण मिलता है तो पुरस्कार के रूप में उसकी पदोन्नति कर दी जाती है। इन दोनों परिस्थितियों में कर्मचारियों के साथ–साथ प्रबंधन को भी लाभ होता हैं

4. **कार्य संतुष्टि में वृद्धि** – जब काम कर्मचारी की क्षमता या रूचि के अनुसार नही होता है तो उसमें काम के प्रति उदासीनता हो जाती है जो उसकी कुशलता के अनुकूल कार्य नहीं मिलने के कारण होती है। किन्तु कार्य आंकलन के बाद कर्मचारी की कुशलता अथवा उसकी

अकुशलता की जानकारी मिल जाती है और उसे उसकी क्षमता या रूचि के अनुसार कार्य पर लगाया जाता है इससे समस्या का समाधान आसानी से निकाला जा सकता है।इससे कर्मचारियों की कार्य संतुष्टि बढ़ती है।

5. **थकान तथा नीरसता में कमी** – व्यवसाय आंकलन से एक लाभ यह होता है कि कर्मचारियों को कुशलता के अनुसार काम मिल जाता है तो उनमें थकान एवं नीरसता की मात्रा घटती है जो उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक होती है। कुशलता के अनसार कार्य मिलने पर कर्मचारियों की रूचि कार्य के प्रति बढ़ती है जिसके फलस्वरूप नीरसता घटती है।

6. **मनोवैज्ञानिक वातावरण में उन्नति** – कार्य आंकलन से कर्मचारियों तथा प्रबंधन के बीच संबंध अधिक स्वस्थ और संतोषप्रद हो जाते है क्योंकि कार्य आंकलन के बाद जब कर्मचारियों को उनकी कुशलता के आधार पर काम मिल जाता है अथवा स्थानान्तरित किया जाता है अथवा पदोन्नति दी जाती है तो उनकी मनोवृत्ति प्रबंधन के प्रति सकारात्मक बन जाती है तथा उनके आपसी संबंधों में मधुरता आ जाती है। इससे किसी उद्योग के मनोवैज्ञानिक वातावरण को उन्नत बनाने में बड़ी सहायता मिलती है।

7. **कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य में उन्नति** –कार्य आंकलन के द्वारा कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य को भी बढ़ाया जा सकता है। जब कर्मचारियों को इस बात की जानकारी मिल जाती है कि उन्हें उनकी कुशलता के अनुसार ही उचित वेतन मिलता है तो प्रबंधन के प्रति उनके वैर–भाव, नकारात्मक मनोवृत्ति, स्पर्द्धा आदि में कमी आती है जिससे वे मानसिक रूप से स्वस्थ रहते है और उनकी चिन्ता एवं निराशा घटती है। कर्मचारियों के आपसी संबंध भी सुधर जाते है क्योंकि वे समझने लगते है कि प्रबंधन की ओर से हर एक कर्मचारी को कार्य के अनुसार वेतन एवं सुविधायें दी जाती है।

8. **हड़ताल तथा तालाबंदी में कमी** – इससे उद्योग में हड़ताल तथा तालाबंदी की दरों में कमी आ जाती है। व्यवसाय मूल्यांकन के बाद कर्मचारियों की प्रबंधन के प्रति शिकायतें बहुत हद तक दूर हो जाती है और दोनों के बीच संबंध एक बडी हद तक स्वस्थ तथा संतोषप्रद हो जाते है। कर्मचारी की ओर से हडताल के होने की संभावना तथा प्रबंधन की ओर से तालाबंदी की संभावना घट जाती है। कार्य आंकलन से एक ओर प्रबंधन को लाभ होता है तो दूसरी ओर कर्मचारी वर्ग को।

9.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सत्य/असत्य में दीजिये–

I. ब्लम ने औद्योगिक मनोबल को तीन रूपों में परिभाषित किया था।

II. औद्योगिक मनोबल को प्रभावित करने वाला मुख्य कारण कर्मचारी का वेतनमान है।

III. मोरनों ने मनोबल मापन के लिए 'सोसियोमेट्रिक प्रणाली' का निर्माण किया।

IV. कार्य आंकलन की कोटि विधि में किसी मापदण्ड के अनुसार व्यक्तियों को उत्तम से निम्नतम के क्रम में रखा जाता है।

V. कार्य आंकलन का तात्पर्य किसी कर्मचारी के द्वारा किये गये कार्यो की मात्रा तथा गुणवत्ता के मूल्यांकन से है।

VI. औद्योगिक मनोबल को मापने के लिए श्रेणी विधि का उपयोग होता है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. सत्य
6. असत्य

11.11 सारांश

- औद्योगिक मनोबल का तात्पर्य कर्मचारी की उस भावना से है जो उसे हमेशाा इस बात की अनुभूति कराती है कि वह अपने कर्मचारी समूह का सदस्य है और उसे समूह में पूरा विश्वास हैं।
- मनोबल को कई कारक प्रभावित करते है– 1. वेतन 2. पदोन्नति 3. कार्य दशायें 4. पद स्थिति 5. सामाजिक कारक।
- औद्योगिक मनोबल को बढ़ाने की कई पद्धतियॉ है– 1. विशेषज्ञ विधि 2. औद्योगिक परामर्शदाता विधि 3. कर्मचारी समस्या विधि ।
- कार्य आंकलन का तात्पर्य किसी कर्मचारी के द्वारा लिये गये कार्यो की मात्रा तथा उसकी गुणवत्ता के मूल्यांकन से होता है।
- ब्लम तथा नेलर ने कार्य आंकलन के मापदण्डों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है।

1. उत्पादन आंकडें 2. व्यक्तिगत आंकडे 3. निर्णायक आंकडे।

- कार्य आंकलन को मापने के लिए निम्नलिखित विधियों का उपयोग किया जाता है – 1. श्रेणी विधि 2. कोटि विधि 3. युग्म तुलना विधि ।

- औद्योगिक संगठनों में कार्य आंकलन के निम्नलिखित महत्त्व है–

1. समान भुगतार दर 2. कर्मचारी का प्रतिस्थापन 3. कार्य संतुष्टि में बढोत्तरी 4. थकान व एकरसता में कमी 5. कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य में बढ़ोत्तरी 6. हड़ताल व तालाबन्दी की दरों में कमी।

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक मनोबल को परिभाषित करिये और इसकी विशेषतायें बताइये।
2. मनोबल को प्रभावित करने वाले निर्धारको को लिखिये।
3. मनोबल को किस तरह से बढ़ाया जा सकता है ?समझाइये।
4. कार्य आंकलन का अर्थ एवं प्रकृति समझाइये।
5. कार्य आंकलन के लिए किन–किन विधियों का उपयोग किया जाता है।
6. कार्य आंकलन की उपयोगिता या महत्व को समझाइये।

9.13 संन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा. मौहम्मद सुलेमान एवं डा. विनय कुमार चौधरी – आधुनिक औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान।
2. डा. आर. के ओझा – औद्योगिक मनोविज्ञान
3. डा. मोहम्मद सुलेमान एवं डा. दिनेश कुमार – संगठनात्मक व्यवहार
4. H.L. Kaila- Industrial and Organitional Psychology
5. के.के. आहूजा –औधोगिक मनोविज्ञान एवं संगठनात्मक व्यवहार

इकाई–10 : प्रेरणा एवं कार्य संतुष्टि

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 प्रेरणा का स्पररूप

10.3 प्रेरणा का कार्य

10.4 प्रेरणा के प्रकार

10.4.1 जैविक प्रेरक

10.4.2 सामाजिक प्रेरक

10.5 प्रेरणा के तत्त्व

10.5.1 आवश्यकतायें

10.5.2 चालक

10.5.3 प्रलोभन

10.6 कार्य संतुष्टि

10.6.1 कार्य संतुष्टि का अर्थ एवं प्रकृति

10.6.2 कार्य संतुष्टि की विशेषतायें

10.6.3 कार्य संतुष्टि के निर्धारक

10.7 सारांश

10.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

10.10 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढने के पश्चात् आप–

- प्रेरणा के अर्थ को समझ सकेंगें।

- प्रेरणा के प्रकारों को जान सकेंगें।
- कार्य संतुष्टि के व्यापक अर्थ को औद्योगिक क्षेत्र के परिपेक्ष्य में जान सकेंगे।
- कार्य संतुष्टि के निर्धारको को जान सकेंगें।
- कार्य संतुष्टि को बढ़ाने की विधियों को जान सकेंगें।

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत आप औद्योगिक क्षेत्र में प्रेरणा एवं कार्य संतुष्टि को समझ पायेंगें। वर्तमान युग को तकनीकी विकास का युग कहा जाता है। इन्हीं तकनीकी जटिलता के आधार पर किसी संगठन या उद्योग में कार्य कर रहे कर्मचारियों को समझना कठिन हो जाता है। कर्मचारियों के व्यवहार या कार्य की व्याख्या के लिए कई प्रेरक जिम्मेदार होते है, जो कि शारीरिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक हो सकते है। प्रेरणा व्यक्ति की आन्तरिक स्थिति होती है जो उसके एक विशेष दिशा में कार्य करने के लिए सक्रिय रखती है। जब तक उसका लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता।

कार्य संतुष्टि एक सामान्य मनोवृत्ति है जिसका सम्बन्ध व्यवसाय कारको, व्यक्तिगत कारकों तथा समूह कारकों के प्रति कर्मचारी संगठन के अन्दर बिताता है और एक जीवन वह है जो वह संगठन से अलग, परिवार एवं रिश्तेदारों के साथ बिताता है। ज बवह इन सबके साथ साकारात्मक मनोवृत्ति रखता है तो कहा जा सकता है कि वह अपने व्यवसाय या कार्य से संतुष्ट है। यदि कर्मचारी को आपने कार्य प्रबन्धक आदि से संतुष्टि प्राप्त होती है तब वह अपने कार्य के प्रति भी संतुष्ट होता है और उसका मनोबल भी बढ जाता है।

10.2 प्रेरणा का स्वरूप

प्रेरणा व्यक्ति की वह जन्मजात तथा अर्जित प्रवृत्ति है, जिससे वह किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्रियाशील को जाता है और उसकी प्राप्ति करने पर ही सन्तुष्ट होता है। प्रेरणा के अध्ययन का अर्थ होता है – जीवित प्राणी के शारीरिक तन्त्र की उस प्रेरक शक्ति का अध्ययन करना जिसके कारण विशेष प्रकार की अवस्थाएँ उसको व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

उदाहरण – माना किसी कारखाने में बिल्कुल नये प्रकार की एक मशीन आई है, लेकिन वह कार्य नहीं कर रहीं, क्योंकि उसके लिए अधिक शक्ति की विद्युत और एक प्रशिक्षित चालक चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि मशीन को क्रियाशील बनाने के लिए

विद्युत और कर्मचारी चाहिए। यहाँ विद्युत और कर्मचारी 'प्रेरक शक्ति' का रूप है।इसी प्रकार मनुष्य के सभी व्यवहारों का कारण उसकी प्रेरणा–शक्ति है।

परिभाषायें:–

1. क्रिया को उत्तेजित करने, जारी रखने और नियंत्रित रखने की प्रक्रिया को प्रेरणा कहते है। गुड

2. प्रेरक व्यक्ति की वह दशा है जो कि उसे निश्चित व्यवहार करने के लिए और निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उत्तेजित करता है। वुडवर्थ

प्रेरणा किसी मनुष्य में किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कोई क्रिया उत्पन्न करती है। क्रिया को किसी दिशा–विशेष में प्रभावित करती है जब तक वह लक्ष्य पूरा नहीं हो जाता, तब तक उसे जारी रखती हैं,। व्यक्ति की जिस आन्तरिक अवस्था में ये विशेषताएँ पायी जाती है, उसी को 'प्रेरणा' कहते है, सबको नहीं। कर्मचारी का व्यवहार कई ऐसे प्रेरकों का परिणाम होता है जो चेतन तथा अचेतन, जैविक तथा सामाजिक, शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक हो सकते है।

10.3 प्रेरणा के कार्य

प्रेरणा के मुख्य तीन कार्य है –

क. सक्रियता – प्रेरणा व्यक्ति की शक्ति को सक्रिय बना देती है जिसके परिणामस्वरूप वह किसी कार्य को करने के लिए तत्पर हो उठता है।

ख. दिशा निर्धारण – प्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार या कार्य की दिशा को निर्धारित करती है। इसके कारण वह एक निश्चित दिशा में व्यवहार करने के लिए उत्प्रेरित हो उठता है।

ग. लक्ष्य प्राप्ति में सहायक – प्रेरणा व्यक्ति को तब तक सक्रिय रखती है जब तक कि उसे लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। व्यक्ति एक निश्चित दिशा में अपने लक्ष्य की प्राप्ति तक क्रियाशील रहता है।

10.4 प्रेरणा के प्रकार

10.4.1 जैविक प्रेरक – जैविक प्रेरक ऐसे प्रेरक होते है जो जन्मजात होते है। इन्हें जन्मजात प्रेरक भी कहते है। अधिकांश जैविक प्रेरक शारीरिक आधार वाले होते है। इसी कारण इन्हें शारीरिक प्रेरक भी कहा जाता है। ऐसे प्रेरकों की संतुष्टि जीवन रक्षा के लिए अथवा प्रजाति की सुरक्षा के लिए अनिवार्य होती है। इसी कारण इन्हें अनिवार्य आवश्यकता भी कहा जाता

है। जैविक प्रेरकों के अन्तर्गत प्यास, भूख, निद्रा, यौन आदि मुख्य है।

10.4.2 सामाजिक प्रेरक – सामाजिक प्रेरक या प्रेरणा का तात्पर्य ऐसे प्रेरकों से है जो सामाजिक प्रभावों के कारण विकसित होते है। ऐसे प्रेरिक अर्जित होते है। इन प्रेरकों का आधार मनोवैज्ञानिक होता है इसलिए इन्हें मनोवैज्ञानिक प्रेरक भी कहते है। ऐसे प्रेरकों में संबंधन प्रेरक, उपलब्धि प्रेरक, प्रतिष्ठा, सत्ता आदि मुख्य है। ऐसे प्रेरक मानव व्यवहारों को अधिक प्रभावित करते है और इसी कारण इन्हें मानव प्रेरणा भी कहा जाता है।

10.5 प्रेरणा के तत्व

प्रेरणा में तीन तत्व होते है जो निम्नलिखित हैं–

10.5.1 आवश्यकताएँ– प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएँ होती है। मनुष्य का जीवन इन आवश्यकताओं पर आधारित होता है। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से वह जीवित रहता है और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति से वह जीवन का उपभोग करता है। इस प्रकार जीवित रहने के लिए शारीरिक आवश्यकताओं की सदा पूर्ति होनी चाहिए।

मुख्य दैहिक आवश्यकताएँ भूख, प्यास, काम, मल–मूत्र का त्याग आर्दि होती है। जब व्यक्ति की इन मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है तो उसका शारीरिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। शारीरिक असन्तुलन का प्रभाव मानसिक क्रियाओं पर पड़ता है,

उदाहरण –जब एक प्राणी भूखा होता है तो चिड़चिड़ा और खूँखार हो जाता है। जब तक उसे खाना नहीं मिलता है, तब तक तनाव की स्थिति बनी रहती है। इस प्रकार आवश्यकता प्राणी की भीतर की वह तनावपूर्ण स्थिति है जो लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति के अन्दर शारीरिक एवं मानसिक क्रियाशीलता उत्पन्न करती रहती है।

10.5.2 चालक – मनुष्य के पास आवश्यकताओं को पूरा करने की शक्ति जन्मजात होती है। मनुष्य इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तनाव की अनुभूति करता है और उसकी तृप्ति या उसे पूरा करने के लिए बैचेन हो जाता है। इसी अवस्था (बैचेनी) को चालक कहा गया है। आवश्यकता के अनुसार ही तनाव का असर होता है। पानी की कमी के कारण प्यास, रोटी न मिलने के कारण भूख तथा यौन जीवन की कमी के कारण कामेच्छा की अनुभूति होती है। जब इन आवश्यकतायें की तृप्ति नहीं होती है तब तनाव उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण मानसिक सन्तुलन तथा असमायोजन की स्थिति आ जाती है।

10.5.3 प्रलोभन – जिस बाहरी वस्तु को पाने से हमारी किसी भी आवश्यकता की पूर्ति और उससे चालक की तीव्रता में तेजी या कमी आ जाती है, उसे 'प्रलोभन' कहते है। उद्योगों में

प्रलोभनों का बहुत बड़ा महत्त्व है। कर्मचारी को कार्य करने की प्रेरणा अनेक प्रकार के प्रलोभनों से ही मिलती है।

उदाहरण –जिन कारखानों तथा फैक्टरियों में कर्मचारियों को अच्छा वेतन, बोनस, वस्त्र क्वार्टर और अन्य सुविधाएँ मिलती है, वहाँ यह पाया जाता है कि कर्मचारी अपने कार्यो में अधिक रूचि लेते है। उत्पादन भी अधिक होता है और सम्पूर्ण कार्य–व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित होती रहती है।

प्रलोभनों को निम्न दो भागों में बॉटा जाता हैं–

1. **धनात्मक प्रलोभन** – जिन प्रलोभनों से मनुष्य की जन्मजात तथा अर्जित आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। और जिन्हे प्राप्त करने के लिए वह पूरा प्रयास करता है। उन्हे धनात्मक प्रलोभन कहते है।

2. **निशेधात्मक प्रलोभन** – जिन प्रलोभनों से मनुष्य की जन्मजात तथा अर्जित आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती हैं। और जिनसे वह भागना या अलग रहना चाहता हैं। उन्हें निशेधात्मक प्रलोभन कहते है।

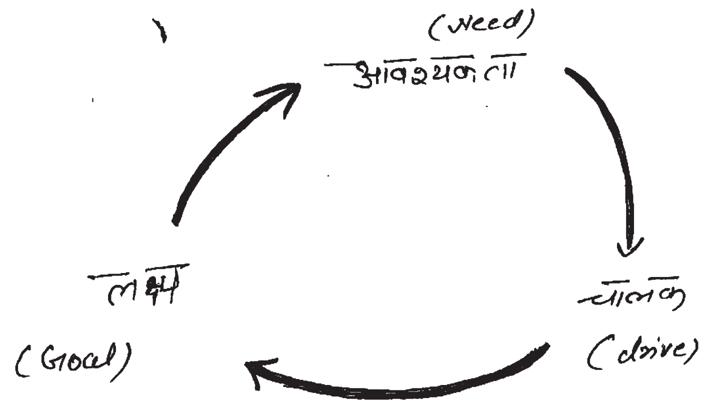

इस प्रकार आवश्यकता से प्रारम्भ होकर, लक्ष्य पूरा होने पर समाप्त होने वाली आवश्यकता को प्रेरणा कहते है। जब एक आवश्यकता पूरी हो जाती है तो दूसरी आवश्यकता आ जाती है इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है।

10.6 कार्य संतुष्टि

10.6 .1 कार्य संतुष्टि का अर्थ प्रकृति तथा परिभाषा

कार्य सन्तोष का अर्थ सम्बन्ध कर्मचारी के व्यवसाय से होता है। इसके साथ–साथ

अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए जो अभिवृत्ति वह रखता है, वह कार्य–सन्तोष का परिणाम ही होती है।

कार्य संतुष्टि को निम्न तरह से समझ सकते है–

क. सीमित अर्थ –जिनमें पारिश्रमिक, पर्यवेक्षण, कार्य परिस्थिति, पदोन्नति के अवसर, कर्मचारी के व्यवहार आदि मुख्य है। इन विशिष्ट कारकों के प्रति कर्मचारियों की मनोवृत्ति जिस हद तक अनुकूल होती है उसी हद तक कार्य संतुष्टि भी प्रंभावित होती है।

ख. व्यापक अर्थ – कार्य संतुष्टि या व्यवसाय संतुष्टि का तात्पर्य तीन प्रकार के कारकों से है। जो निम्नलिखित है–

1. **व्यवसाय कारक** – व्यवसाय कारक का तात्पर्य उनक कारकों से है जिनका सम्बन्ध कार्य विशेष से होता है। इनमें व्यवसाय के स्वरूप, वेतन, पर्यवेक्षण, कार्य परिस्थिति, सम्मान आदि मुख्य है।

2. **व्यक्ति कारक** – व्यक्ति कारक के अन्तर्गत ऐसे कारक आते है जिनका संबंध कर्मचारी की व्यक्तिगत विशेषताओं से होता है। इनमें कर्मचारी की आयु, स्वभाव, आकांक्षा का स्तर आदि मुख्य है।

3. **समूह कारक** – समूह कारक के अन्तर्गत वे कारक आते है जिनका सम्बन्ध व्यवसाय से अलग समूह संबंधो से हाता है। इनमें कर्मचारी की पारिवारिक स्थिति, सामाजिक सम्मान, मनोरंजन और आर्थिक स्थिति आदि मुख्य है।

इन तीनों प्रकार के कारकों का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव कर्मचारी के व्यवहार पर पडता है अतः इनके प्रति कर्मचारी की मनोवृत्ति को कार्य संतुष्टि कहेंगे।

परिभाषा

कार्य–सन्तोष कर्मचारी की उन अभिवृत्तियों का परिणाम है, जिन्हें वह अपने कार्य या व्यवसाय से सम्बन्धित अनेक कारकों एवं सामान्य जीवन के प्रति बनाये रखता है। **'ब्लम तथा नेलर**

कार्य सन्तोष कर्मचारी की एक प्रवृत्ति है जो अनेक कारको के साथ उसकी कार्य क्षमता को प्रभावित करती है। जो कर्मचारी अपने कार्य से सन्तुष्ट है, वे स्वस्थ मानसिक सन्तुलन रखते है। स्वस्थ मानसिक सन्तुलन कर्मचारी को कार्य करने के लिए प्रेरित करता है, उसके मनोबल को बनाये रखता है तथा उसकी उत्पादन क्षमता में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देता है। जो कर्मचारी अपने कार्य से असन्तुष्ट होते है उनकी उत्पादन क्षमता गिरती चली

जाती है। इसलिए कर्मचारी को कार्य–असन्तोष से बचाए रखने के लिए आवश्यक है कि औसत–स्तर के कर्मचारी को इस प्रकार का कार्य (व्यवसाय) मिले कि वह केवल जीविकोपार्जन का साधन मात्र ही न हो बल्कि उसे अपने कार्य से उद्देश्य प्राप्त करने की प्रेरणा मिले।

10.6.2 कार्य संतुष्टि की विशेषतायें–

कार्य संतुष्टि की निम्नलिखित चार विशेषतायें है –

अ. कार्य संतुष्टि एक सामान्य मनोवृत्ति है जो कई मनोवृत्तियों का मिला जुला रूप है।

ब. कार्य संतुष्टि का गहरा संबंध कई व्यवसाय कारको के साथ होता है। ये कारक हैं – व्यवसाय का स्वरूप, कार्य परिस्थिति, सम्मान, पर्यवेक्षण आदि के प्रति कर्मचारी की मनोवृत्ति आदि । कर्मचारी की यह मनोवृत्ति जब अनुकूल होती है तब समझा जाता है कि उसमें कार्य संतुष्टि है। इस मनोवृत्ति के प्रतिकूल होने से कार्य असंतुष्टि का बोध होता है।

स. कार्य संतुष्टि का संबंध केवल व्यवसाय कारकों से नही है बल्कि व्यक्तिगत विशेषताओं तथा शीलगुणों से भी है। कर्मचारी की आयु, स्वास्थ्य, बुद्धि, स्वभाव, अभिरूचि, आकांक्षा के स्तर आदि को व्यक्तिगत विशेषता कहते है। यदि कर्मचारी अपनी इन व्यक्तिगत विशेषताओं तथा अपने कार्य के बीच तालमेल का अनुभव करते है तो उनमें कार्य संतुष्टि अधिक पायी जाती है।

द. कार्य संतुष्टि का एक संबंध व्यवसाय से अलग के समूह जीवन से होता है। कर्मचारी का एक जीवन वह है जो वह उद्योग या संगठन के अन्दर व्यतीत करता है, और एक जीवन वह है जिसे वह संगठन से अलग, अपने परिवार के साथ व्यतीत करता है। अपने व्यवसाय के संदर्भ में यदि वह समूह संबंधों के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति रखता है तथा समूह में सम्मानित महसूस करता है तो यह समझा जाता है कि वह अपने कार्य से संतुष्ट है और इसके विपरीत अवस्था में कार्य से असंतुष्ट होने लगता है।

10.6.3 कार्य संतुष्टि के निर्धारक या कारक

किन किन कारकों की उपस्थिति में कार्य संतुष्टि बढ़ती है और किन किन कारकों की उपस्थिति में कार्य संतुष्टि घट़ती है। कार्य संतुष्टि या असंतुष्टि को प्रभावित करने वाले ऐसे कारकों को निर्धारक कहा जाएगा।

कार्य संतुष्टि को निर्धारित करने वाले इन कारको को निम्नलिखित तीन वर्गो में बॉटा है–

क. व्यक्तिगत कारक – कार्य संतुष्टि को प्रभावित करने वाले कारकों के अंतर्गत वे

कारक आते है जिनका संबंध कर्मचारी से होता है। कर्मचारी में ही कुछ ऐसे तत्व होते है जो उसकी कार्य संतुष्टि को निर्धारित करते है।

इन व्यक्तिगत कारकों में निम्नलिखित है –

1. **यौन** – कर्मचारी की कार्य संतुष्टि को निर्धारित करने में उसके यौन का एक कारक के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है। समान कार्य परिस्थिति होने पर भी पुरूष कर्मचारियों की अपेक्षा महिला कर्मचारियों में कार्य संतुष्टि अधिक पायी जाती है। स्त्रियों में पुरूषों की अपेक्षा अघिक कार्य संतुष्टि इसलिए अधिक होती है क्योकि पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए कार्य अवसर सीमित होते है और इसलिए वे अपने वर्तमान व्यवसाय से ही संतुष्ट रहती है।

2. **आयु** – कर्मचारियों की आयु का प्रभाव भी उसकी कार्य संतुष्टि पर पड़ता है। कम आयु के कर्मचारियों की अपेक्षा अधिक आयु के कर्मचारियों के व्यवसाय संतुष्टि अधिक होती है। इसका कारण यह है कि अधिक आयु के कर्मचारियों के कार्य अवसर बहुत सीमित हो जाते है इसलिए वे अपने कार्य से ही संतुष्ट रहने लगते है। इसके विपरीत कम आयु के कर्मचारियों के समाने कार्य अवसर अधिक होते है अर्थात् भिन्न–भिन्न कार्यो के लिए दरवाजे खुले रहते है। इसलिए वे अपने वर्तमान व्यवसाय से असंतुष्ट रहते है।

3. **बुद्धि** – कर्मचारी की कार्य संतुष्टि पर उसके बौद्धिक स्तर का भी प्रभाव पड़ता है। मंद बुद्धि कर्मचारियों की काम के प्रति रूचि देखी जाती है जबकि तीव्र बुद्धि के कर्मचारियों में कार्य के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति एवं रूचि नही देखी जिससे कार्य असंतुष्टि बढ़ती है।

4. **सेवा अवधि** – प्रारंभिक दिनों में कर्मचारियों को अधिक संतुष्टि का अनुभव होता है। किन्तु सेवा अवधि के बढ़ने के साथ साथ उनकी कार्य संतुष्टि घटती जाती है।

5. **आकांक्षा स्तर** – जब कर्मचारी की आकांक्षा के स्तर तथा उसके व्यवसाय के बीच समानतार नहीं होती है तब उसे निराशा का अनुभव होता है और इससे अपने व्यवसाय के प्रति उसकी असंतुष्टि बढ जाती है। यदि उसका व्यवसाय उसकी आकांक्षा की पूर्ति करने में सफल है तब उसकी कार्य संतुष्टि बढेंगी और आकांक्षा की पूर्ति नहीं होने पर कुंठा तथा निराशा होने के कारण कार्य असंतुष्टि बढ़ जाती है।

6. **व्यक्ति के भीलगुण** – अध्ययनों से पता चलता है कि कर्मचारियों के कार्य असंतुष्टि का एक प्रधान कारण होता है स्वयं उनका अपना व्यक्तित्व। जिनमें अन्तर्मुखता, बहिर्मुखता, जोखिम उठाने की प्रवृत्ति, समायोजनशीलता, आदि मुख्य है। जो कर्मचारी अपने सामान्य जीवन में संतुष्ट रहते है वे अपने व्यवसाय से भी संतुष्ट रहते है। इसी प्रकार व्यक्तित्व

समायोजन तथा व्यक्तित्व कुसमायोजन का प्रभाव भी कर्मचारियों की कार्य संतुष्टि पर पडता है।

ख. व्यवसाय कारक – कार्य संतुष्टि अथवा व्यवसाय संतुष्टि मे केवल व्यक्तिगत कारकों का ही प्रभाव नहीं पडता है। व्यवसाय कारक का तात्पर्य उन तत्वों से है जो उस कार्य अथवा व्यवसाय से जुडें होते है जिसमे कर्मचारी कार्य करता है।

व्यवसाय कारकों को निम्नलिखित प्रकार में विभाजित किया जा सकता है–

1. **कार्य का प्रकार** – कार्य संतुष्टि में व्यवसाय अथवा कार्य के प्रकार का प्रभाव कर्मचारियों की कार्य संतुष्टि पर सबसे अधिक पड़ता है। हर दिन एक ही तरह के कार्य करने की अपेक्षा अलग अलग कार्य को करने में कर्मचारियों को संतुष्टि मिलती है। कौशल, वेतन, सम्मान आदि मध्यवर्ती चरों के सक्रिय होने के कारण इनके बीच सम्बन्ध जटिल बन जाता है। कर्मचारियों को ऐसे कार्यो को करने में संतुष्टि अधिक मिलती है जहॉ उन्हें अपना कौशल दिखाने का अवसर मिलता है।

2. **व्यावसायिक स्थिति** – व्यावसायिक स्थिति तथा कार्य संतुष्टि के बीच घनिष्ट संबध पाया गया है। व्यावसायिक स्थिति के उच्च होने पर कार्य संतुष्टि बढती है। तथा निम्न होने पर कार्य संतुष्टि घटती है। कार्य से जुडे सम्मान का उच्च या निम्न होने का निर्धारण न केवल कर्मचारियों के व्यक्तिगत मूल्यांकन से होता है बल्कि दूसरे लोगो के मूल्यांकन से भी। जिस संस्कृति में जिस व्यवसाय के साथ अधिक प्रतिष्ठा जुडी होती है उसे वहॉ उच्च श्रेणी दी जाती है। कर्मचारी ऐसे व्यवसायों से अधिक संतुष्ट रहते है जिनकी सामाजिक प्रतिष्ठा या सम्मान निम्न हो।

3. **उद्योग का आकार** – कर्मचारियों की कार्य संतुष्टि इस बात पर भी निर्भर करती है कि उद्योग बडा है या छोटा। बडे उद्योग की तुलना में छोटे उद्योग के कर्मचारी अधिक संतुष्ट रहते है। बेगे ने अपने एक अध्ययन में देखा कि बडी कंपनी की अपेक्षा छोटी कंपनी के कर्मचारियों में कार्य संतुष्टि 6 प्रतिशत अधिक थी। वे 'हम के भाव' से प्रभावित रहते है। उनमें सहभागिता का भाव रहता है और इस सारी बातों का सीधा संबंध कर्मचारी की कार्य संतुष्टि के साथ होता है।

4. **वेतन**– कार्य संतुष्टि को निर्धारित करने में कर्मचारियों के वेतन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पर्याप्त वेतन मिलने पर कार्य संतुष्टि बढती है। और वेतन के अपर्याप्त होने पर कार्य असंतुष्टि बढती है। बहुत से कर्मचारीयो का उच्च वेतन व्यवसाय संतुष्टि का प्रमुख कारण नही होता है। उच्च वेतन कर्मचारियों की कार्य संतुष्टि के लिए उनका वेतन जितना

महत्वपूर्ण होता है। उतना निम्न आय समूह के कर्मचारियों के लिए नही होता। निम्न आय समूह के कर्मचारी अपने कार्य से अधिक संतुष्ट रहते है जबकि मध्यम आय समूह के कर्मचारी अपने कार्य से असंतुष्ट रहते है।

5. **पदोन्नति के अवसर** – कर्मचारी की कार्य संतुष्टि पर इस बात का प्रभाव पडता है कि उनके वर्तमान कार्य में पदोन्नति के अवसर कितने है। जिस संगठन में कर्मचारियों को पदोन्नति के अधिक अवसर अधिक होते है। वहाँ कार्य संतुष्टि अधिक देखी जाती है। जब योग्य एवं कुशल कर्मचारियों को प्रबंधन की ओर से पदोन्नति नहीं दी जाती तब वे कुंठित तथा हतास हो जाते है जिसके कारण प्रबंधन के प्रति उनकी मनोवृत्ति प्रतिकूल बन जाती है। ऐसी स्थिति में इन कर्मचारियों में कार्य असंतुष्टि तो बढ़ती ही है, उत्पादन मे भी कमी होती है।

6. **कार्य परिस्थितियॉ** – कर्मचारी जिन परिस्थितियों में कार्य कर्ता है उनका प्रत्यक्ष प्रभाव कार्य के प्रति उसकी मनोवृत्ति तथा कार्य–संतुष्टि पर पड़ता है। कार्य परिस्थिति के अनुकूल होने पर प्रबंधन के प्रति कर्मचारी की मनोवृत्ति अनुकूल बन जाती है, उसका मनोबल उच्च्य हो जाता है और वह अपने कार्य से संतुष्ट रहता है। इसके विपरीत यदि कार्य परिस्थिति को कर्मचारी प्रतिकूल पाता हो तो प्रबंधन के प्रति उसकी मनोवृत्ति भी प्रतिकूल हो जाती है, मनोबल टूटता है और कार्य असंतुष्टि बढ़ने लगती है।

7. **सह–कर्मचारी** – कर्मचारियों के बीच आपसी सहयोग की भूमिका भी कार्य संतुष्टि में महत्त्वपूर्ण है ऐसा कई औद्योगिक अध्ययनों में पाया गया है। जिस उद्योग में कर्मचारियों का पारस्परिक संबंध संतोशजनक होता है वहॉ के कर्मचारी अपने कार्य से अधिक संतुष्ट रहते है और जब कर्मचारियों के बीच संतोषजनक पारस्परिक संबंधनही होते हैं तो कार्य असंतुष्टि बढ़ती है। पारस्परिक संबंध के संतोषजनक होने से व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है जो को बढ़ाने का कार्य करती है।

8. **पर्यवेक्षण** – जिस उद्योग में उचित पर्यवेक्षण की व्यवस्था होती है वहॉ के कर्मचारी अपने कार्य से अधिक संतुष्ट रहते है। कर्मचारियों के मनोबल को निर्धारित करने में पर्यवेक्षण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारक है। जिन कर्मचारियों की प्रजातांत्रिक पर्यवेक्षकों के साथ काम करने का अवसर मिलता हे उनका मनोबल काफी ऊँचा रहता हे और जिन कर्मचारियों को सत्तावादी पर्यवेक्षक मिलते हे उनका मनोबल गिर जाता हे। पर्यवेक्षण के स्व रूप का प्रभाव कर्मचारी की मनोवृत्ति तथा मनोबल पर पड़ता है।

9. **कर्मचारियों की मनोवृत्ति को समझना** – प्रबंधन का एक दायित्व यह भी हैं कि वह कर्मचारियों की मनोवृत्तियों को समझे तथा हल करे और कर्मचारियों के साथ अपने संबंध

उत्तम बनाये इससे प्रबंधन को आसानी होती हे। अपने कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान कर्मचारी संघ के नेताओं के माध्यम से करते है। यदि प्रबंधन प्रशासक तथा संघ के नेता कर्मचारियों की समस्याओं को समझने और सुलझाने का प्रयास करते हैं तो कर्मचारियों की मनोवृत्ति प्रबंधन के प्रति अनुकूल बनती है। तथा उनकी कार्य संतुष्टि बढती हैं। इसके विपरीत यदि उद्योग के अधिकारीगण कर्मचारियों की समस्याओं के प्रति उदासीन रहते है। तब वहा कर्मचारियों का मनोबल गिर जाता हैतथा उनकी कार्य संतुष्टि कम हो जाती हैं।

10.7 सारांश

- प्रेरणा व्यक्ति की एक आन्तरिक स्थिति है जो उसे एक विशेष दिशा में क्रिया करने के लिए तब तक सक्रिय रखती है। जब तक उसे लक्ष्य की प्राप्ति नही हो जाती।
- प्रेरणा व्यक्ति की शक्ति को सक्रिय बना देती है।
- प्रेरणा व्यक्ति के व्यवहार की दिशा का निर्धारण करती है।
- प्रेरणा के मुख्य दो प्रकार है। i. जैविक प्रेरक ii. सामाजिक प्रेरक
- कार्य संतुष्टि एक जटिल संप्रत्यय है! इसका तात्पर्य व्यवसाय कारक से है।
- कार्य संतुष्टि का तात्पर्य मुख्य रूप से तीन कारको से होता है। i. व्यवसाय कारक ii. व्यक्ति कारक iii. समूह कारक
- कार्य संतुष्टि को प्रभावित करने वाले मुख्य रूप से तीन कारक है। i. व्यक्तिगत कारक ii. व्यवसाय कारक iii. प्रबन्धन कारक
- कार्य संतुष्टि को प्रभावित करने वाले कारकों को नियंत्रित करके कार्य संतुष्टि को कम होने से रोका जा सकता है।

10.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सत्य/असत्य में दीजिये

1. जैविक प्रेरक जन्मजात नहीं होते है।
2. उपलब्धि प्रेरक एक प्रकार का सामाजिक प्रेरक है।
3. आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त का प्रतिपादन रोजर्स ने किया
4. कर्षण प्रत्याशा सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रूम ने किया

5. मनोवृत्ति कार्य संतुष्टि का एक संघटक है।

6. आकांक्षा स्तर कार्य संतुष्टि को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक नहीं हैं

वस्तुनिष्ठ प्रनों के उत्तर

1. असत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य
6. असत्य

10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कार्य प्रेरक किसे कहते है ? इन्हें बढ़ाने के उपायो को बतायें।
2. अभिप्रेरणा का अर्थ बताइये और इसके प्रकारों को समझाइये।
3. कार्य संतुष्टि को परिभाषित करिये तथा मनोवृत्ति से अन्तर को बताइये।
4. कार्य संतुष्टि पर प्रभाव डालने वाले कारकों को समझाइये।
5. कार्य संतुष्टि के अर्थ को समझाइये तथा औद्योगिक संस्थानों में इसे बढाने के उपायों या विधियों को समझाइयें।

10.10 संन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा. मौहम्मद सुलेमान एवं डा. विनय कुमार चौधरी – आधुनिक औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान।
2. डा. आर.के ओझा – औद्योगिक मनोविज्ञान।
3. डा. मोहम्मद सुलेमान एवं डा. दिनेश कुमार – संगठनात्मक व्यवहार।
4 के.के. आहूजा –औधोगिक मनोविज्ञान एवं संगठनात्मक व्यवहार।

इकाई–11 : एकरसता एवं औद्योगिक दुर्घटनायें

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 एकरसता का अर्थ एवं स्वरूप
11.3 एकरसता की विशेषतायें
11.4 एकरसता के कारक
11.4.1 एकरसता के सामान्य कारक
11.4.2 एकरसता के व्यक्तिगत कारक
11.5 एकरसता को दूर करने के उपया
11.6 उब
11.7 औद्योगिक दुर्घटना का स्वरूप
11.8 औद्योगिक दुर्घटना के प्रभाव
11.8.1 कर्मचारियों पर दुर्घटना का प्रभाव
11.8.2 उद्योग पर दुर्घटना का प्रभाव
11.9 औद्योगिक दुर्घटनाओं के कारण
11.9.1 कार्य परिस्थितियॉ
11.9.2 कार्य विधियॉ
11.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
11.11 सारांश
11.12 निबन्धात्मक प्रश्न
11.13 संदर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- एकरसता के अर्थ एवं विशेषताओं को समझ सकेंगें।

- उब के अर्थ को जान सकेंगें।
- एकरसता के कारणों को जान सकेंगें।
- एकरसता को कैसे दूर किया जाता है, उपायों को समझ सकेंगें।
- औद्योगिक दुर्घटनाओं को समझ सकेगें ।
- दुर्घटना के प्रभावों को जान सकेगे।
- दुर्घटना के कारणों को जानेंगें।

11.1 प्रस्तावना

एकरसता एक प्रकार की मानसिक स्थिति है। जिसमें कर्मचारी के कार्य करने की इच्छा या रूचि खत्म हो जाती है और वह कार्य से छुटकारा पाने का प्रयास करता है। जब उसे दिये गये कार्य से सन्तोष प्राप्त नहीं होता है तो वह विवश होकर बेमन से कार्य को करता है। एकरसता या अरोचकता में कर्मचारी की मानसिक शक्ति कम हो जाती है और उसकी रूचि कार्य में कम होने से उद्योग या संस्थान का उत्पादन गिरने लगता है।

जब कर्मचारी को कार्य में अरोचकता आने लगती है तो उसमें तनाव उत्पन्न होने लगता है और तब उसमें ऊब उत्पन्न होने लगती है। असन्तोष से तनाव और तनाव से ऊबने की भावना क्रियाशील हो जाती है। ऊब बढ़ने से बैचेनी होने लगती है।

प्रस्तुत इकाई में आप औद्योगिक दुर्घटना के बारे में भी जान सकेगे। औद्योगिक दुर्घटना का अर्थ कर्मचारी द्वारा उत्पन्न की गयी एक ऐसी घटना से है जो आकस्मिक व अप्रत्याशित हो और जिससे उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। इन दुर्घटनाओं की उत्पत्ति कर्मचारी या कार्य परिस्थिति किसी के भी कारण हो सकती है। इन दुर्घटनाओं के कारण कर्मचारियों की मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक नुकसान पहुचने के साथ–साथ उद्योग एवं उद्योगपतियों को भी क्षति पहुॅचती है। दुर्घटना को हम विभिन्न उद्योगो, विभिन्न कार्यो एवं विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार परिभाषित कर सकते है।

11.2 एकरसता का अर्थ एवं स्वरूप

इसमें एक प्रकार की मानसिक स्थिति का बोध होता है जिसका आधार आवृत्तिक कार्य होता है। ''एकरसता एक मानसिक स्थिति है जो आवृत्तिक कार्यो को सम्पन्न करने से उत्पन्न होती है।

एकरसता एक ऐसी मानसिक अवस्था है जिसमें कर्मचारी की कार्य करने की रूचि समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में कर्मचारी में कार्य करने के प्रति सदैव अरूचिकर भाव बना रहता है। वह कार्य से छुटकारा पाने की तीव्र इच्छा से प्रभावित होता रहता है।उसे कार्य में किसी प्रकार का सन्तोष नहीं मिलता और विवशता की स्थिति में कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार विवश होकर कार्य करना ही एकरसता है।

एकरसता थकान जैसी ही एक मानसिक अवस्था है। लेकिन इसमे कर्मचारी की रूचि कार्य के प्रति कम हो जाती है , उत्पादन कम हो जाता है। उद्योग–धन्धों में अरोचकता तब दिखाइ देती है, जब कोई कर्मचारी ऐसे कार्य को पूरा करता है जिसमें उसकी रूचि नहीं है। वह यह जानता है कि यदि इस कार्य को वह पूरा नहीं करेगा तो उसकी दैनिक या साप्ताहिक मजदूरी पर प्रभाव पड़ेगा और उसे भूखा रहना होगा, इसलिए वह कार्य को मजबूरी में पूरा करने लग जाता है। इसका फल यह होता है कि कभी–कभी इसका प्रभाव उसके मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है और भविष्य में वह अपने परिवार तथा समाज के लिए एक घातक हो सकता है।

एकरसता, आवृत्तिकारक कार्य के करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न वह मानसिक स्थिति है जिसे हम रूचि के अभाव, नीरसता के भाव, बेचैनी, कार्य मे कमी , समय के आकलन में अन्तर तथा गतिविधि परिवर्तन की इच्छा के रूप में देख सकते हैं।

11.3 एकरसता की विशेषताएँ

1. **मानसिक स्थिति** – एकरसता कोई शारीरिक स्थिति नहीं बल्कि एक मानसिक स्थिति है, और अपनी इस विशेषता के आधार पर यह थकान में भिन्न है। थकान एक शारीरिक स्थिति है।

2. **नीरसता एवं बैचेनी** – इसमें नीरसता अथवा उबाऊपन और वेचैनी रहती हे जिसके कारण कर्मचारी में दुखद भाव उत्पन्न होता है। जैसे–जैसे आवृत्तिक कार्य का समय बढ़ता जाता है कर्मचारी में ऊब तथा बेचैनी की मात्रा भी बढ जाती है। एकरसता में अधिकतर नीरसता अथवा ऊब की विशेषता पायी जाती है। बेचैनी एकरसता की मुख्य विशेषता है जिसकी जानकारी हम बाह्यय निरीक्षण विधि से प्राप्त कर सकते है। आवृत्तिक कार्य करते समय जब कर्मचारी बार–बार अपनी शारीरिक मुद्रा बदलने लगे, कार्य की गति में अनावश्यक परिवर्त्तन करने लगे, अपना ध्यान इधर–उधर लगाने लगे तथा कार्य संबंधी अपनी असंतुष्टि को बार –बार बताने लगे तो समझ जाना चाहिए कि उसमें बेचैनी की शुरूआत हो गयी

3. रूचि का अभाव – एकरसता स्थिति में कर्मचारियों की अपने कार्य के प्रति रूचि कम होने लगती है। आवृत्तिक कार्य करते समय कर्मचारी में कइ तरह के अप्रिय भाव उत्पन्न होने लगते हैं जिसके कारण कार्य में उसकी रूचि घट जाती है।

4. कार्य दर मे तथा उत्पादन मे कमी – एकरस कार्य को करते समय कर्मचारी को न केवल असंतुष्टि तथा तनाव का अनुभव होता है बल्कि उसके कार्य के दर में भी बदलाव होता है। एकरसता की स्थिति में कार्य करने की दर मे तथा कुल उत्पादन की मात्रा में अनियमित कमी पायी जाती है। एकरसता की स्थिति में कर्मचारी में कार्य करने की शक्ति तो रहती ही है लकिन उसमें केवल कार्य करने की इच्छा कम होती जाती है।

5. परिवर्तन की इच्छा – इस स्थिति में कर्मचारी में कार्य में परिवर्तन लाने की इच्छा होने लगती है। आवृत्तिक कार्य करते समय कर्मचारी में कार्य परिवर्तन की इस इच्छा को वाइटले ने एक मूल प्रवृत्ति माना है और कहा है कि जब यह मूल प्रवृत्ति कुंठित होती हे तब उसमें एकरसता की भावना उत्पन्न होती है।

6. कार्य छोड देने की इच्छा – एकरसता की इस स्थिति में कर्मचारियों में कार्य छोड देने की इच्छा प्रबल हो जाती है। एकरसता में कार्य छोड देने का आधार कार्य करने की इच्छा का अभाव होता है।

11.4 एकरसता के कारक

इन कारकों को निम्नलिखित दो वर्गो में विभाजित किया है–

11.1. **एकरसता के सामान्य कारक** –

सामान्य कारकों से हमारा तात्पर्य उन कारकों से है जिनका संबंध कार्य विशेष के स्वरूप तथा कार्य परिस्थिति से होता है। कर्मचारी जिस कार्य को करते है और जिन कार्य परिस्थितियों में करते है उन सबका निश्चित प्रभाव एकरसता पर पड़ता है। ऐसे कारकों को ही सामान्य कारक कहा जाता है। इन्हीं कारकों के कारण कर्मचारियों में समानता होने के बावजूद एकरसता उत्पन्न होती है। इन कारकों को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

1. आवृत्तिक कार्य – एकरसता का एक मुख्य कारण आवृत्तिक कार्य है अर्थात एक ही कार्य को बार–बार करना। अलग–अलग कार्यो की अपेक्षा आवृत्तिक कार्य तथा जटिल कार्य की अपेक्षा सरल कार्य करने में कर्मचारियों को एकरसता के भाव का ज्यादा अनुभव होता है।

2. कार्य का स्वरूप – कठिन कार्य की अपेक्षा सरल कार्य को करते समय कर्मचारियों में एकरसता की अनुभूति अधिक पायी गयी। क्योंकि ऐसे कार्य उन्हें कोई चुनौती नहीं देते।

कर्मचारी कार्य कर देने भर के लिए कार्य करते है और उस कार्य को करने में उनका कोई लगाव नहीं होता। ज्यादातर ऐसा देखा गया है कि सरल कार्य को करते समय तीव्रबुद्धि कर्मचारी एकरसता के लक्षणों का प्रदर्शन अधिक करते है ओर मंदबुद्धि कर्मचारी कम।

3. **विश्राम की कमी** – कार्य के दौरान विश्राम की कमी भी कर्मचारियों में एकरसता उत्पन्न करता है। जो कमचारी लम्बे समय तक बिना विश्राम के लगातार काम करते हे उन कर्मचारियों में एकरसता की अनुभूति बढाती है। बर्नन ने अपने अध्ययन में पाया कि जिन कर्मचारियों को बिना विश्राम के लम्बे समय तक कार्य करने को दिया गया उन्हें एकरसता की अनुभूति अधिक हुई बजाय उनके जिन्हें उतने ही लम्बे कार्यकाल में समय–समय पर विश्राम दिया गया था।

4. **भुगतान विधि** – कर्मचारी को भुगतान करने की विधि पर भी एकरसता का प्रभाव पड़ता है। समय दर से भुगतान होने पर कर्मचारियों को एकरसता का अनुभव अधिक होता है अ त जिन कर्मचारियों को समय दर के अनुसार भुगतान किया गया उन्हें एकरसता का अनुभव अधिक हुआ जबकि उन कर्मचारियों मे एकरसता कम हुवी जिन्हें कार्य–दर से भुगतान किया गया था।

5. **कार्य करने के तरीके** – कार्य करते समय जब कर्मचारी को अपनी कार्य स्थिति में परिवर्तन लाने की स्वतंत्रता और संभावना अधिक दिखती है तब उनमें एकरसता की अनुभूति कम होती है। इसके विपरीत जब कर्मचारी को अपनी कार्य स्थिति में परिवर्तन लाने की स्वतंत्रता और संभावना नही होती है तब उनमें एकरसता की अनुभूति ज्यादा होती है।

11.4.2. एकरसता के व्यक्तिगत कारक –

व्यक्तिगत कारक का तात्पर्य उन कारकों से है जिनका संबंध कर्मचारियों से होता है। इन्हीं व्यक्तिगत कारकों के कारण एक ही कार्य तथा एक ही कार्य परिस्थिति में विभिन्न कर्मचारियों में एकरसता की अनुभूति विभिन्न मात्राओं में देखी जाती है। ये व्यक्तिगत कारक निम्नलिखित प्रकारों के हो सकते है –

1. **कर्मचारी की बुद्धि** – कर्मचारियों में एकरसता की उत्पत्ति का एक कारण उनकी बौद्धिक योग्यता की मात्रा है। आवृत्तिक कार्य करते समय जहॉ तीव्र बुद्धि वाले कर्मचारियों को एकरसता की अनुभूति होती है वहीं मन्दबुद्धि कर्मचारियों को यह अनुभूति नहीं होती या कम होती है। वाइटले ने एक अध्ययन में पाया कि अधिक तीव्र बुद्धि की लडकियों में मंदबुद्धि लड़कियों की अपेक्षा कार्य परिवर्तन अधिक हुआ। उन्होंनें बताया कि तीव्र बुद्धि लड़कियों ने ऊबाऊ काम को करना पसन्द नहीं किया और ऐसे काम को पसन्द किया जो उनकी

योग्यताओं के अनुरूप तथा चुनौतीपूर्ण था। मंदबुद्धि कर्मचारियों की अपेक्षा तीव्रबुद्धि के कर्मचारियों में एकरसता की अनुभूति अधिक होती हैं

2. **रूचि** – उन कर्मचारियों में एकरसता की अनुभूति अधिक होती है ।जो कार्य कर्मचारियों के लिए रुचिकर नही होते उन कायों में एकरसता का अनुभव अधिक होता है। उन कर्मचारियों को एकरसता की अनुभव कम होता हैं अथवा नहीं भी होता है जो अपने कार्य को रुचि के अनुसार करते है।

3. **कर्मचारी का स्वभाव तथा संवेगात्मक अस्थिरता** – कर्मचारियों के स्वभाव तथा संवेगात्मक अस्थिरता का भी प्रभाव एकरसता की उत्पत्ति पर पड़ता है। चंचल तथा अस्थिर स्वभाव के कर्मचारियों में एकरसता के उत्पन्न होने की संभावना अधिक होती है क्योंकि ये कर्मचारी अपने कार्य को गंभीरतापूर्वक नहीं लेते और इस कारण उनका समायोजन अपने कार्य के साथ नहीं हो पाता। इसी प्रकार जो कर्मचारी संवेगात्मक अस्थिरता के शिकार होते है वे अधिक एकरसता अनुभव करते है जबकि संवेगात्मक स्थिरता वाले कर्मचारियों में यह अनुभूति कम होती है।

4. **व्यक्तित्व के भीलगुण** – एकरसता की अनुभूति पर कर्मचारी के व्यक्तित्व के शीलगुण का भी निश्चित प्रभाव पडता है। अन्तर्मुखी कर्मचारियो की अपेक्षा बहिर्मुखी कर्मचारियों को एकरसता की अनुभूति अधिक होती है। जो कर्मचारी अपने सामान्य जीवन से असंतुष्ट रहते है और जिनका पारिवारिक समायोजन असंतोषजनक होता है वे अपने कार्य से भी असंतुष्ट रहते है तथा एकरसता और नीरसता का अनुभव दूसरों की अपेक्षा अधिक करते है।

11.5 एकरसता को दूर करने के उपाय

औद्योगिक कुशलता को बढाने के उद्देश्य से एकरसता को कम करना अत्यन्त आवश्यक है। जिसके लिए निम्नलिखित उपायों का उपयोग किया जा सकता है–

1. **कार्य में विविधता** – एकरसता के प्रभाव को कम करने का एक उपाय यह है कि कर्मचारी को अलग–अलग तरह के काय दिये जायें यानि उसके आवृत्तिक कार्यो में विविधता लाने का प्रयास किया जाए। कार्य की एकरूपता के कारण एकरसता बढ़ती है। इसलिए कार्य में विविधता लाकर, इस कारण से उत्पन्न होने वाली एकरसता को नियंत्रित किया जा सकता है।

2. **विश्राम** – एक ही तरह के कार्य को करते समय कर्मचारियों को उचित विश्राम दिया जाए। किसी कार्य को लगातार, बिना विश्राम के करते जाने से एकरसता बढ जाती है। अतः

इस कारण से उत्पन्न होने वाली एकरसता को कर्मचारियों को विश्राम देकर नियंत्रित किया जा सकता है।

3. **भुगतान विधि** – कर्मचारियों को कार्य के अनुसार भुगतान कर दिया जाना भी एकरसता को दूर करने का एक अत्यन्त सरल तथा लाभप्रद उपाय है जिसका प्रभाव तात्कालिक रूप से देखा जा सकता है। जब कर्मचारियों को समय दर विधि से भुगतान किया जाता है तब उन्हें एकरसता की अनुभूति अधिक होती है क्योंकि उनका ध्यान कार्य में लगे रहने की अपेक्षा कार्य काल में लगा रहता है। दूसरी ओर भुगतान विधि में कर्मचारियों की रूचि कार्य में अधिक रहती है क्योंकि जितना अधिक वह कार्य करेगा पारिश्रमिक उतना अधिक मिलेगा। इस कारण उनमें एकरसता की अनुभूति नही ंके बराबर होगी।

4. **कार्य करने की विधि में परिवर्तन** – एकरसता को क्रम करने की एक विधि यह भी है कि कर्मचारियों को इस बात की छूट रहे कि वे अपने काम को करने में अपने अनुसार मामूली परिवर्तन कर सके। जब कर्मचारी किसी आवृत्तिक कार्य को लगातार एक ही विधि से करते है तो उन्हें एकरसता की अनुभूति अधिक होती है। लेकिन जब वे अपनी कार्यप्रणाली में थोडा बहुत परिवर्तन कर देते है, तब एकरसता की अनुभूति घट जाती है।

5. **वार्त्तालाप** –कर्मचारियों को कार्य के दौरान जब आपस में बातचीत करने की छूट दी जाती है तब एकरसता की अनुभूति घट जाती है क्योंकि कर्मचारियों का ध्यान कार्य की एकरूपता पर नहीं जाता। आवृत्तिक कार्य करते समय वार्तालाप करने या गीत गाते रहने से एकरसता अथवा नीरसता की अनुभूति में कमी आती है।

उपर्युक्त उपायों से उद्योग में एकरसता को दूर या कम किया जा सकता है। एकरसता को रोकने, दूर करने या कम करने के उपायों का चयन करते समय कर्मचारी के स्वरूप, कार्य के स्वरूप तथा कार्य परिस्थिति को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है।

11.6 उब (Boredom)

एक सा कार्य करते रहने से एकरसता या नीरसता उत्त्पन्न होती है यानि अरूचि की भावना उत्त्पन्न होने लगती है। यह एक प्रकार की मानसिक स्थिति होती है।

उब भी एक प्रकार की मानसिक स्थिति होती है। जिसमें किसी कार्य विशेष के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति अनुकूल नहीं होती है। अर्थात् इस स्थिति के कारण वह उस कार्य को नहीं कर सकता। दोनों ही स्थितियॉ मानसिक अभिवृत्ति का परिणाम होती है। दोनों से ही थकान बढ़ती है। जब कार्य के प्रति एकरसता होती है तो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न हो जाता है

और इस तनाव के कारण उब उत्पन्न होती है। औद्योगिक परिस्थियों में कौन सा कार्य उबाने वाला है यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार निर्धारित होता है।

11.7 औद्योगिक दुर्घटना

दुर्घटना का तात्पर्य उस घटना से है जो अप्रत्याशित रूप से घटित होती है । यहॉ दुर्घटना का तात्पर्य कर्मचारियों द्वारा उत्पन्न की गयी ऐसी घटना से है जो अप्रत्याशित हो तथा जिससे औद्योगिक कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो।

इन दुघर्टनाओं से कर्मचारियो को शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक क्षति तो पहुॅचती ही है जिनका प्रभाव उनके पारिवारिक जीवन पर पड़ता है और फिर वह एक सामाजिक समस्या के रूप में सामने आता है, साथ ही एक कुशल कर्मचारी के क्षतिग्रस्त हो जाने से अनेक औद्योगिक समस्याएॅ उत्पन्न हो जाती है। दुर्घटनाएं कर्मचारियों के साथ घटित वे अप्रत्याशित घटनाएॅ है जो कर्मचारियों को शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक क्षति पहुॅचाने के साथ औद्योगिक कार्यकुशलता मे भी बाधा डालती हैं।

आमतौर पर जब कोई दुर्घटना होती है तो उसका कारण कर्मचारी की असावधानी या लापरवाही माना जाता है और संयोग एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। दुर्घटनाएॅ अपने आप संयोगवश नहीं होती है, बल्कि कुछ व्यक्तियों द्वारा आमतौर पर होती है और अन्य विभिन्न परिस्थितियों के कारण दुर्घटना कर बैठते है।

दुर्घटना की परिभाषा

दुर्घटना की परिभाषा भी विभिन्न उद्योगों में विभिन्न कार्यो एवं विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। ''औद्योगिक क्षेत्र में होने वाली ऐसी दुर्घटनाएॅ जो आकस्मिक, अप्रत्याशित तथा अदूरदर्शी हो, जिनकी उत्पत्ति कार्य–परिस्थिति या कर्मचारी, या दोनो से होती हो और जिनसे कर्मचारी, उद्योग तथा उद्योगपति को या किसी अन्य को भी हानि पहुॅचती हो, दुर्घटनाएॅ कही जा सकती है''।

11.8 दुर्घटना के प्रभाव

11.8.1. कर्मचारियों पर दुर्घटना का प्रभाव–

औद्योगिक दुर्घटना का तात्कालिक प्रतिकूल प्रभाव उन कर्मचारियों पर पड़ता `हे जो दुर्घटनाग्रस्त होते है। ऐसे प्रभावों को अलग–अलग समझने के लिए उन्हें निम्नलिखित भागों में बॉटा जा सकता है–

1. **भाारीरिक क्षति** – दुर्घटना के कारण कर्मचारियों को किसी भी प्रकार की ओर कितनी भी मात्रा में?

शारीरिक क्षति हो सकती है। कभी कर्मचारी का कोई अंग विशेष कट जाता है, कभी दुर्घटना वश ऑखे नष्ट हो जाती है तो कभी सुनने की शक्ति समाप्त हो जाती है। अनेक बार दुर्घटना में कर्मचारियों की मृत्यु तक हो जाती है।

दुर्घटना में शारीरिक क्षति हो जाने के बाद अथवा विकलांग हो जाने के बाद कर्मचारी को कुछ मुआवजा देकर नौकरी से अलग कर दिया जाता है, या कभी–कभी उसे किसी हल्के काम पर लगा दिया जाता है जहॉ पहले की अपेक्षा उसकी आय कम हो जाती है। इन दोनो परिस्थितियों में कर्मचारियों को तथा उन पर आश्रित परिवार जनों को अनेक प्रकार के आर्थिक, सामाजिक तथा मानसिक संकटों का सामना करना पड़ता है और उनकी जिन्दगी की दिशा ही बदल जाती हैं

2. **मानसिक क्षति** – दुर्घटनाओं का प्रतिकूल प्रभाव कर्मचारी की मानसिकता पर भी पड़ सकता है।

दुर्घटनाग्रस्त कर्मचारी पंगु हो जाने पर चिन्ता, द्वंद्व, हीनता की भावना, चिडचिडापन तथा भय आदि के शिकार हो जाते है। दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के उपरान्त कर्मचारी मानसिक रूप से भी असंतुलित हो जाते है।

3. **आर्थिक क्षति** – दुर्घटना में कर्मचारी की मृत्यु हो जाने पर कंपनी की ओर से क्षति पूर्ति कर देने के बाद भी उसके परिवार की नियमित आय का स्रोत बंद हो जाता है। इसी प्रकार कर्मचारी के पंगु हो जाने पर भी कार्य करने की क्षमता नष्ट हो जाने या घट जाने के कारण उसे आर्थिक क्षति पहॅुचती है। यहॉ तक कि दुर्घटना में किसी कर्मचारी की मृत्यु हो जाने पर या उसके पंगु हो जाने पर उसका पूरा परिवार गरीबी और विघटन के कगार पर पहॅुच जाता है।

11.8.2. उद्योग पर दुर्घटना का प्रभाव –

औद्योगिक दुर्घटनाओं का प्रभाव सिर्फ कर्मचारियों पर ही नही पड़ता ह ैबल्कि औद्योगिक संगठनों पर भी उनका दुष्प्रभाव अत्यन्त गंभीर रूप से पड़ता है जो निम्न प्रकार है–

i. उत्पादन मे कमी – उद्योग पर दुर्घटना का तात्कालिक दुष्प्रभाव उत्पादन मे कमी के रूप में पड़ता है। दुर्घटनाग्रस्त कर्मचारी अपने कार्य को उतनी कुशलता के साथ नहीं कर पाता जितनी कुशलता के साथ दुर्घटनाग्रस्त होने से पहले कर लेता था। कार्य में उसकी रूचि चेतन या अचेतन रूप से कम हो जाती है जो उत्पादन मे कमी का एक प्रमुख कारण है। कभी–कभी दुर्घटनाग्रस्त कर्मचारी के स्थान पर अस्थायी रूप से ऐसे कर्मचारियों को लगा दिया जाता है जिन्हें उस कार्य विशेष को करने का कोई अनुभव नहीं होता या कम

होता है। ऐसी स्थिति में भी उत्पादन में मात्रात्मक तथा गुणात्मक कमी होती है।

ii. सम्पत्ति का नुकसान – दुर्घटना के कारण मशीनों में खराबी आ जाती है जिससे न केवल उत्पादन में कमी होती है बल्कि उसके बदलने या उसकी मरम्मत के लिए भीं उद्योगो को अतिरिक्त व्यय का करना पड़ता है। कभी–कभी आगजनी के कारण दुर्घटना घट जाती है जिससे उद्योग की सम्पत्ति भारी मात्रा में नष्ट हो जाती है।

iii. हड़ताल एवं तालाबंदी – उद्योगों में दुर्घटना को कभी हड़ताल तो कभी तालाबंदी के रूप में भी देखा जाता है। दुर्घटना के उपरान्त प्रबंधकों और कर्मचारियों के बीच मुआवजे को लेकर यदि समझौता नहीं हुआ तो कभी कर्मचारी हड़ताल कर देते है और कभी प्रबंधक तालाबंदी की घोषणा कर देते है। इन दोनों परिस्थितियों में कर्मचारियों को तो अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ता है उद्योगों को भी भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

iv. कुशल कर्मचारी की क्षति – औद्योगिक दुर्घटना में नुकसान होता हे वह कुशल कर्मचारियों के नुकसान के रूप में सामने आता है। दुर्घटना में मृत्यु हो जाने पर या विकलांग हो जाने पर एक कुशल कर्मचारी के स्थान पर नये कर्मचारी को रखा जाता है तब उसके प्रशिक्षण पर लगाए गए समय तथा धन का प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है क्योंकि उसके पूरी तरह प्रशिक्षित होने तक उत्पादन या तो बंद रहता है या धीमी गति से चलता है। प्रशिक्षित हो जाने के बाद भी एक नया कर्मचारी, पुराने तथा अनुभवी कर्मचारी के जेसा काम कर को पायेगा या नहीं यह भी नही कहा जा सकता है।

v. समाज एवं राष्ट्र पर औद्योगिक दुर्घटना का प्रभाव – औद्योगिक दुर्घटनाओं का दुष्प्रभाव समाज तथा पूरे राष्ट्र पर भी पड़ता है। उद्योग हमारे समाज का एक अंग है । यह एक वास्तविकता है कि समाज एवं राष्ट्र के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में उद्योग एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका का निभाता है। किसी देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की आधारशिला ही उद्योग है। इसलिए दुर्घटना के कारण उद्योग पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों से समाज एवं राष्ट्र का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होना स्वाभाविक है।

11.9 दुघर्टनाओं के कारण

दुघर्टनाओं के कारणों को तीन भागों में बॉट सकते है जो निम्न प्रकार हे–

11.9.1. कार्य परिस्थितियॉ –जिन परिस्थितियों में कर्मचारी कार्य करते है, वे आमतौर पर कर्मचारी को दुर्घटना उन्मुख बना देती है। चूँकि ये कार्य परिस्थितियॉ कर्मचारी और कार्य के

अनुकूल नहीं होती है, इसलिए कर्मचारी दुर्घटनाओं का शिकार हो जाता है। इन कार्य–परिस्थितियों में निम्नलिखित मुख्य है–

1. **तापमान** – उच्चतम तथा न्यूनतम तापमान मे ज्यादा दुर्घटनाए होती हे जबकि मध्यम तापमान में कम दुर्घटनाए होती है। इसका तात्पर्य यह है कि उच्चतम तथा न्यूनतम तापमान में कर्मचारी का मानसिक संतुलन बिगड़ सकता है जिससे दुर्घटनाओं की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके विपरीत, मध्यम तापमान में कर्मचारी का मानसिक संतुलन ठीक बना रहता है और शारीरिक अंग स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते रहते है इसलिए दुर्घटनाओं की सम्भावना बहुत कम रहती है।

2. **प्रकाश**– कर्मचारी की कार्य करने की परिस्थिति में उचित प्रकाश का होना बहुत आवश्यक होता है। जो कारखाने घनी बस्तियों में होते है या जिनमें दिन में रोशनी नहीं पहॅुच पाती है, वहॉ बिजली के प्रकाश का प्रबंध होता है। रात में होने वाली दुर्घटनाओं की संख्या अधिक होती है। किन्तु यदि प्रकाश की समुचित व्यवस्था कर दी जाए तो रात की दुर्घटनाओं में कमी हो सकती है। इस संबंध में आप अधिकतर यह पायेंगें कि रेल दुर्घटनाएॅ अधिकतर रात में ही होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि रात में प्रकाश की कमी रहती है। इसके ठीक विपरीत, रात में मोटर दुर्घटनाएॅ कम होती है। इसका कारण उचित प्रकाश और रात के समय सड़क का खाली रहना है।

3. **पाली** – कार्य–परिस्थितियों में दुर्घटनाओं के घटाने या बढाने में पालियों का भी बहुत बड़ा योगदान है। आजकल बहुत से उद्योगों में दिन–रात कार्य होता रहता है, इसलिए कार्य करने के लिए तीन पलियॉ बना दी जाती है, ताकि कर्मचारी को अपनी शक्ति से अधिक कार्य न करना पडे। अधिक कार्य करने से थकान होगी और थकान के कारण दुर्घटना होती है ।

11.9.2. कार्य विधियॉ–

जिस प्रकार कार्य परिस्थितियॉ दुर्घटनाओं के लिए उत्तरदायी होती है, उसी तरह कार्य विधियॉ भी दुर्घटनाओं का प्रधान कारण होती है जो निम्नलिखित है–

1. **कार्य की लम्बाई**– अधिकतर दुर्घटनाएॅ उन कर्मचारियों द्वारा होती है जो अपने निश्चित घण्टों के अलावा कार्य करते है,क्योकि ज्यादा काम करने से थकान ज्यादा होती है अर्थात् कार्य करने का समय अधिक होने पर दुर्घटनाओं की संख्या बढ जाती है तथा कम समय कर देने से दुर्घटनाओं में भी कमी आ जाती है।

2. **कार्य की कठोरता** :– कार्य की कठोरता का तात्पर्य अधिक शारीरिक परिश्रम से है, अर्थात् जिन कार्यो के करने से अधिक शारीरिक परिश्रम करना पड़े उन कार्यो को कठोर

कहते है। जिन कार्यो में कठोर शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है उनमें दुर्घटनाएँ अधिक होती है। जैसे–जैसे कार्य के घण्टे बढ़ते है, उसी अनुसार कर्मचारी की थकान बढ़ती जाती है, जिसके कारण दुर्घटना की सम्भावना भी बढ़ जाती है। इस प्रकार जिस कार्य के लिए अधिक शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता पडेगी, उससे दुर्घटनाओं की सम्भावना एवं संख्या बढ़ जायेगी।

3. **उत्पादन गति** :– जैसे–जैसे उत्पादन गति बढ़ेगी, वैसे–वैसे दुर्घटनाओं की सम्भावना बढ़ती जायेगी। जिन कार्यो की उत्पादन गति कम होती है, उनमें दुर्घटनाओ की संख्या कम होती है।

उदाहरण – यदि कोई व्यक्ति तेज गति से साइकिल चलाता है वह मन्द गति से साइकिल चलाने वाले की व्यक्ति की अपेक्षा अधिक दुर्घटनाओं का शिकार हो सकता है।

4. **थकान** :– थकान के प्रभाव से कर्मचारी दुर्घटना के शिकार बन जाते है। अधिकतर दुर्घटनाएँ उस समय होती है जब चालक बुरी तरह से थका होता है। जैसे–जैसे कार्य के घण्टे बढ़ते जाते है, वैसे ही थकान का प्रभाव बढ़ता जाता है। इस स्थिति में दुर्घटनाओं की सम्भावना बढ़ जाती है और यह भी पाया गया है कि दुर्घटनाएँ इसी समय होती है।

5. **कर्मचारी** :– दुर्घटनाओं को करने वाला कर्मचारी होता है। दुर्घटनाओं का सम्बन्ध सबसे पहले कर्मचारी से ही होता है। कर्मचारी से बहुत से पक्ष है जो दुर्घटना के लिए उत्तरदायी होते है–

i. आयु :– अपरिपक्व आयु के व्यक्ति परिपक्व आयु वाले व्यक्यिों की अपेक्षा अधिक दुर्घटना के शिकार होते है।

ii. अनुभव :– अनुभव भी दुर्घटना से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। अनुभवहीन कर्मचारी अनुभवी कर्मचारियों की अपेक्षा दुर्घटनाओं के शिकार होते है।

iii. स्वास्थ्य तथा भारीरिक दुर्बलता :– प्रत्येक कार्य मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता है जिन व्यक्तियों में शारीरिक दोश या किसी प्रकार के रोग पाये जाते है, वे व्यक्ति दुर्घटनाओं के अधिक शिकार होते है।

iv. लिंग :– अधिक शारीरिक परिश्रम वाले कार्यो में स्त्रियॉ अयोग्य होती है। आसान एवं सहज कार्यों में जहॉ शारीरिक परिश्रम कम करना पड़ता है, स्त्रियों द्वारा दुर्घटनाएँ कम होती है। स्त्रियों का स्वभाव कोमल होता है अतः खतरनाक परिस्थितियॉ होने पर वे अपने को

सम्भाल नहीं पाती है। फलस्वरूप दुर्घटनाओं का शिकार बहुत जल्दी हो जाती है। कार दुर्घटनाएँ स्त्रियों से पुरूषों की अपेक्षा अधिक होती है।

i. मानसिक तथा संवेगात्मक अवस्था :–जब व्यक्तियों की मानसिक अवस्था ठीक नही होती है या जो मानसिक स्तर पर अस्वस्थ होते है, वो दुर्घटनाओं के शिकार अधिक होते है। 50 प्रतिशत दुर्घटनाएँ उस समय होती हैं जब सम्बद्ध कर्मचारी की संवेगात्मक स्थिति ठीक नही होती, अर्थात् जब–जब मानसिक सन्तुलन बिगडेगा तब–तब कर्मचारी दुर्घटनों का शिकार होगा।

11.10 वस्तुनिष्ट प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के सत्य/असत्य उत्तर दीजिये।

1. निम्न वेतनमान नीरसता का एक मुख्य कारण है।
2. जिन कार्यो मे परिवर्तन होता रहता है, उनसे नीरसता का अनुभव अधिक होता है।
3. नीरसता का सम्बन्ध शारीरिक थकान से होता है।
4. औद्योगिक दुर्घटना का प्रभाव उस उद्योग के उत्पादन पर पडता है।
5. दोपहर के विश्राम के बाद दूसरी पाली के प्रारम्भ में दुर्घटना की दर बढ़ जाती है।
6. कार्य अवधि औद्योगिक दुर्घटना का एक महत्वपूर्ण कारक है।
7. औद्योगिक दुर्घटनाओं को रोकने का तरीका कर्मचारियों का प्रशिक्षण है।
8. औद्योगिक दुर्घटनाओं को रोकने का अप्रत्यक्ष तरीका थकान का निराकरण है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. असत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. असत्य
6. सत्य
7. सत्य
8. सत्य

11.11 सारांश

एकरसता या नीरसता एक मानसिक स्थिति है। जो किसी काम को लम्बे समय त क बार–बार दोहराने से उत्पन्न होती हैं

- एकरसता की स्थिति में मानसिक कमी, रूचि में कमी, बैचेनी, कार्य में कमी आदि विशेषतायें देखी जाती है।
- एकरसता के कारणों को दो भागों में बॉटा गया है। 1. सामान्य कारक 2. व्यक्तिगत कारक
- एकरसता को दूर करने के मुख्य रूप से निम्नलिखित उपाय है। 1. कार्य में विविधता 2. विश्राम 3. भुगतान विधि 4. कार्य विधि में परिवर्तन
- औद्योगिक दुर्घटना एक अप्रत्याशित घटना होती है जिसका प्रभाव औद्योगिक कार्यकुशलता पर पड़ता है।
- दुर्घटना के प्रभाव मुख्य दो प्रकार से पड़ते है।

1. कर्मचारियों पर दुर्घटना का प्रभाव
2. उद्योग पर दुर्घटना का प्रभाव

- औद्योगिक दुर्घटना के मुख्य रूप से तीन कारण है।

1. कार्य परिस्थितियॉ
2. कार्य विधियॉ
3. कर्मचारी

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एकरसता तथा थकान में अन्तर स्पष्ट करिये! औद्योगिक नीरसता को कम करने के उपायो को बताइये।
2. एकरसता या नीरसता को परिभाषित करिये तथा इसकी प्रकृति को बताइये।
3. नीरसता के मुख्य कारणों का वर्णन करिये।
4. सामान्य दुर्घटना एवं औद्योगिक दुर्घटना में अन्तर बताइये और औद्योगिक दुर्घटना के कारणों को बताइये।

5. औद्योगिक दुर्घटनाओं को रोकने की विधियों का वर्णन करिये।

6. दुर्घटना को परिभाषित करिये और इसके प्रभावों की विवेचना करिये।

11.13 संन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा. मौहम्मद सुलेमान एवं डा. विनय कुमार चौधरी – आधुनिक औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान।

2. डा. आर. के. ओझा – औद्योगिक मनोविज्ञान

3. डा. मोहम्मद सुलेमान एवं डा. दिनेश कुमार – संगठनात्मक व्यवहार

4 H.L. Kaila- Industrial and Organitional Psychology

5 के. के. आहूजा – औधोगिक मनोविज्ञान एवं संगठनात्मक व्यवहार

इकाई–12 : स्वास्थ्य मनोविज्ञान का अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 स्वास्थ्य से आशय

12.4 स्वास्थ्य मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

12.5 स्वास्थ्य मनोविज्ञान का विकास

12.6 स्वास्थ्य सम्बन्धित बीमारियाँ

12.7 उपचार एवं रोकथाम

12.8 स्वास्थ्य मनोविज्ञान का क्षेत्र

12.9 सारांश

12.10 शब्दावली

12.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.13 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

आज मनुष्य दिन प्रतिदिन भौतिकवादि होता जा रहा है फलस्वरूप व्यक्तित्व का पर्यावरण भी अभौतिक से भौतिक होता जा रहा है पर्यावरण में हर प्रकार के परिवर्तन के फलस्वरूप समाज में नयी समस्याएँ व्यक्ति के व्यवहार को जटिलता की ओर ले रही है। आज के व्यक्ति के सामने समस्याएँ और बाधाएँ अपेक्षाकृत अधिक है क्योकि प्रतिस्पर्धा के कारण उसका व्यवहार अधिक गतिशील और अधिक जटिल हो गया है यही कारण है कि आज का व्यक्ति शारीरिक रोगो के साथ–साथ मानसिक रोगो से अधिक पीड़ित होने लगा है। व्यक्ति के जीवन की विभिन्न परिस्थिस्तियों में प्रभावपूर्ण समायोजन मुख्यतः मानसिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता है पाश्चात्यदेशो में स्वास्थ्य की बाधाएँ रखने के लिए स्वास्थ्य मनोविज्ञान के सिद्धान्तो, नियमो आदि का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए मनोवैज्ञनिक नियमों, सिान्तों और तकनीको आदि का उपयोग किया जाता है।

12.2 उद्देष्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- स्वास्थ्य के बारे में जान सकेगें।
- स्वास्थय मनोविज्ञान का अर्थ जान पायेगें।
- स्वास्थ्य सम्बन्धी विकृतियों के बारे में जान सकेगें।
- बीमारी की रोकथाम कैसे की जा सकती हे।
- स्वास्थ्य मनोविज्ञान का क्षेत्र के बारे में जान सकेगें।

12.3 स्वास्थ्य से आषय

स्वास्थ्य एक धनात्मक अवस्था है। यदि किसी व्यक्ति में कोई बीमारी नहीं है तो इसका आशय यह नहीं है कि वह पूर्णतः स्वस्थ है। शारीरिक रोगों के अभाव में भी वह पूर्ण स्वस्थ नहीं हो सकता है। कभी–कभी स्वस्थ व्यक्ति इतना थका–थका अनुभव करता है कि वह कोई कार्य नही करना चाहता है अर्थात वह पूर्णतः स्वस्थ नहीं है कभी–कभी व्यक्ति शारीरिक कठिनाईयों से प्रभावित हो जाता है उसमें किसी भी बीमारी का संक्रमण हो सकता है उसमें कार्यक्षमता की कमी आ सकती है या वस्तुओं पर ध्यान देने में कठिनाई हो सकती है। ये लक्षण यह संकेत करते है कि व्यक्ति पूर्णतः स्वस्थ नहीं है किसी भी व्यक्ति का स्वास्थ्य हर समय पूर्णतः ठीक नहीं रहता है, यदि किसी व्यक्ति का स्वास्थ्य प्रायः ठीक रहता है तो उसे स्वस्थ कहा जा सकता है।

विश्व स्वास्थ्य सगंठन (1984) के अनुसार, ''स्वास्थ्य का आशय शारीरिक, मानसिक, सामाजिक दृष्टि से पूर्णतः स्वस्थ होने से है न कि केवल शारीरिक बीमारी की अनुपस्थिति मे।''

आयुर्वेद में स्वास्थ की अवस्था को प्रकृति और अस्वास्थ्य या रोग की अवस्था को विकृति कहा जाता है। चिकित्सक का कार्य रोगात्मक चक्र में हस्तक्षेप करके प्राकृतिक सन्तुलन को कायम करना और उचित आहार और औषधि की सहायता से स्वास्थ्य प्रक्रिया को दुबारा शुरू करना है। औषधि का कार्य खोये हुए सन्तुलन को फिर से प्राप्त करने के लिए प्रकृति की सहायता करना है। आयुर्वेदिक मनीषियो के अनुसार उपचार स्वयं प्रकृति से प्रभावित होता है। चिकित्सक और औषधि इस प्रक्रिया में सहायता करते है।

रोडिन और सडोवे (1989) के अनुसार '' मनोवैज्ञानिक कारको का स्वास्थ्य के प्रत्येक

पक्ष पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि जितने भी रोग है उनमें से 80% रोग मनोवैज्ञानिक कारणो द्वारा होता है।''

स्वास्थ्य के प्रकार–

1. **शारीरिक स्वास्थ्य**– शारीरिक रूप से स्वास्थ्य व्यक्ति किसी भी कार्य को पूर्णतः धनात्मक रूप से करता है। स्वस्थ्य व्यक्ति सर्तक क्रियाशील, ऊर्जायुक्त एवं ओजस्वी प्रतीत होता है।

2. **मानसिक स्वास्थ्य**– मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उचित समायोजन स्थापित कर सकता है।

मैस्लो (1954) के अनुसार ''मानसिक स्वास्थ्य का आशय आरोग्य एवं व्यवधान डालने वाले उन लक्षणें की मुक्ति से है जो मानसिक कुशलता, सेवात्मक स्थिरता एवं मन की शान्ति में बाधा उत्पन्न करते है।''

जहोदा (1950) के अनुसार ''उत्तम मानसिक स्वास्थ्य के पाँच मापदण्ड है–मानसिक बीमारी की अनुपस्थिति, व्यवहार में सामान्यता, वातावरण के साथ समायोजन, सगंठित व्यक्तित्व एव वास्तविकता का सही प्रत्यक्षीकरण।''

3. **सामाजिक और सास्कृंतिक स्वास्थ्य**– सामाजिक और सांस्कृतिक स्वास्थ्य में अपनी संस्कृति के प्रति सामान्य व्यवहार दिखलाता है साथ ही अपने दोस्त एवं परिवार के सदस्यों के साथ अन्तः क्रिया तथा सामाजिक रूप से उनको मदद करता है। अन्तःक्रिया जितनी अधिक होगी सामाजिक स्वास्थ्य उतना ही अच्छा होगा।

4. **आध्यात्मिक स्वास्थ्य**– आध्यात्मिक स्वास्थ्य से तात्पर्य स्वस्थ व्यक्ति ऐसी मान्यताओं को स्वीकार करता है तथा तदनुसार व्यवहार भी करता है। प्रत्येक समाज में कुछ धार्मिक एवं नैतिक मान्यताएँ होती है जैसे दूसरे की सहायता करना, धर्म के प्रति आस्था किसी को कष्ट न पहुचाना, परमार्थ करना, मान्यताओं को मानना आदि।

एक स्वस्थ्य व्यक्ति में ही ऐसे लक्षण पाये जाते है।

12.4 स्वास्थ्य मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को समझने के लिए व्यावहारिक विज्ञान की शुरूवात 1970 दशक में हुई (स्वीवड्ज एवं वीज) सामान्य मनोविज्ञान में लम्बे समय से औषधि की जरूरत मनोरोग विज्ञान तथा नैदानिक मनोविज्ञान में थी। नैदानिक मनोचिकित्सक का क्षेत्र मानसिक स्वास्थ्य में परामर्श तथा स्वास्थ्य मनोविज्ञान से है।

वास्तव में स्वास्थ्य मनोविज्ञान का सम्बन्ध जीवविज्ञान, जैविक, शारीरिक तन्त्र, दर्शनशास्त्र तथा सामाजिक विज्ञान से है। मनोविज्ञान सिद्धान्त के आधार पर स्वास्थ्य मनोविज्ञान बीमारी तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवहार का अध्ययन है। विशिष्ट तौर पर स्वास्थ्य, बीमारी, चोट, स्वस्थ होना, मानव जीवन पर प्रभाव डालता है इस क्षेत्र में मनौविज्ञानिक, सामाजिक सास्कृतिक प्रभाव का विकास होता है जिसमें बीमार और चोटिल व्यक्ति के निदान उपचार तथा पुर्नवास किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने बीमारी तथा चोट की रोकथाम के लिए स्वास्थ्य मनोविज्ञान पर जोर दिया तथा हमे स्वास्थ्य नीति का निर्माण किया है।

व्यक्ति को सामाजिक वातावरण में रहना होता है और यह वातावरण उसके व्यक्तिगत शीलगुणो को आकार देता है जब वह अपने सामाजिक वातावरण में दूसरे व्यक्तियों के साथ अन्तः क्रिया करता है तो व्यवहार करना सीखता है। यदि सामाजिक वातारण अस्वस्थ है तो वह अस्वस्थ व्यवहार ही सीखता है। बहुत अमीरी तथा गरीबी दोनों ही व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते है जैसे अधिक मात्रा शराब पीना या अधिक कामुकता रखना। ऐसी आदते उनमे स्वास्थ पर काफी प्रभाव डालती है उनका मोटापा बढ़ता है अनेक बीमारियाँ आ जाती है जैसे – मधुमेह, हृदय रोग, रक्तचाप आदि रोगो को जन्म देता है। जबकि गरीब लोगो को अच्छा पोषण नही मिलता है, वे गन्दी बस्तियों में रहते है। उनको अछूत बीमारियो से बचाने के प्रयास नहीं किये जाते है।

परिभाषा–

मार्क्स (1999) के अनुसार स्वास्थ्य मनोविज्ञान, परिर्वतन तथा पुननिर्माण करने के एक एजेन्ट जैसे है।

बैरन एवं बादूरनी (1997) के अनुसार "स्वास्थ्य मनोविज्ञान एक ऐसी विशिष्ट शाखा है जिसमें शारीरिक रोगो की उत्पत्ति, रोकथाम एवं उपचार पर मनोवैज्ञानिक कारको के प्रभावो का अध्ययन किया जाता हे।"

फर्नाल्ड एवं फर्नाल्ड (1999) के अनुसार "स्वास्थ्य मनोविज्ञान स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं निष्कर्शो को प्रयुक्त करता है। इसके अन्तर्गत शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रखने हेतु रोकथाम, उपचार, शिक्षा एवं अन्य उपयों का प्रयोग किया जाता है।"

स्वास्थ्य मनोविज्ञान का उद्वेश्य स्वास्थ्य सम्बन्धी मुद्वो के अध्ययन तथा ज्ञानों का प्रयोग करना है ताकि मानव जीवन को सुखद बनाया जा सके। आधुनिक समय में इसके महत्व

एवं क्षेत्र का विस्तार इतना अधिक हो चुका है कि मानव स्वास्थ्य सम्बन्धी सब पक्ष इसमें सम्मिलित हो गये है।

स्वास्थ्य व्यवहार का अध्ययन मनोविज्ञान की जिस शाखा में किया जाता है उसे स्वास्थ्य मनोविज्ञान कहा जाता है।

स्वास्थ्य मनोविज्ञान का विकास–

स्वास्थ्य मनोविज्ञान का विकास अमेरिका तथा यूरोप में पिछले दो तीन दशको से तेजी से हो रही है लेकिन भारतवर्ष पिछले कुछ ही वर्षो से ध्यान में आया है प्राचीन काल से ही भारत में मनोस्थिति तथा रोग के सम्बन्धो पर आधिकाधिक ध्यान दिया जाता रहा है योग साधना तथा मन के बीच समन्वय प्राप्त करने के लिए सम्यक बल देता है जिससे शरीर स्वस्थ तथा मन शुद्ध हो जाता है।

मार्क्स तथा मरे ने अपने अध्ययन के आधार पर स्वास्थ्य मनोविज्ञान के विकास के तीन कारण बताये है–

1. मार्क्स आदि के अनुसार 1997 में इंलैण्ड एवं वेल्स में जो व्यवहार अधिकतर मृत्यु के लिए उत्तरदायी पाये गये। वे इस प्रकार है–

- धुम्रपान–दोनों सक्रिय तथा निष्क्रिय
- अल्प पोषण
- अत्यधिक शराब पीना
- व्यायाम की कमी
- तनाव
- असावधानी पूर्वक या तेज गति से गाड़ी चलाना।

1. यक्ति स्वयं ही अपने स्वास्थ्य के लिए जिम्मेदार है यह दृष्टिकोण प्रत्येक व्यक्ति पर यह उत्तरदायी प्रभाव डाल देता है कि उसे स्वयं अपने स्वास्थ के बारे में उचित कदम लेने चाहिए। उसमें जीवन शैली का प्रभाव उसमे स्वास्थ्य पर पड़ता है हमारे देश में ऐसे उद्योग प्रारम्भ हो गये है जो व्यक्ति को स्वस्थ जीवन की ओर आकर्षित करते है। स्वस्थता उद्योग, (Fitnes industry) आधार उद्योग (Diet industry), डेयरी उद्योग आदि इस देश की जनता को स्वस्थ जीवन के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

2. चिकित्सा शास्त्र द्वारा स्वास्थ्य कल्याण मे सम्बन्ध में मोह भंग होना है। यद्यपि बायोमेडिकल स्वास्थ्य कल्याण संस्थाओं के ऊपर बहुत खर्च आता है फिर भी कुछ व्यक्ति इसे अप्रभावशाली तथा अकुशल मानते है इसके अनुसार चिकित्सक तथा मरिज के बीच में निकट सम्पर्क नही होता है और इसके लिए इस प्रकार के स्वास्थ्य कल्याण के उपाय उपयुक्त नहीं समझे जाते है। बीसवीं शताब्दि में बीमारी की कमी अच्छी उपचार सुविधाओं के कारण उतनी नहीं है जितनी कि अच्छा स्वास्थ्य सम्बन्धी देखरेख और गरीबी उन्मुलन प्रयासो के कारण हुई है।

12.6 स्वास्थ्य सम्बन्धित बीमारी

ऐसे अनेक कारक है जो व्यक्ति के स्वास्थ्य को हानि पहुचाते है पहले यह असाधारण रोग माने जाते थे। किसी–किसी को होता था परन्तु आज यह एक सामान्य बीमारी का रूप ले चुका है। इस रोग में व्यक्ति अपने सांवेगिक तनावों की अभिव्यक्ति उन भागों में रोग उत्पन्न करके करता हे जो पाचन सस्थान से जुड़े होते है जब व्यक्ति तनाव पूर्ण स्थिति में काफी दिनो से होता है तो सामान्त स्वायन्त कार्य प्रभावित हो जाते है जिनसे पाचन संस्थान की क्रियाओं में गडबड़ी हो जाती है इस श्रेणी में प्रमुख बीमारियाँ आती है।

- **बुलिमिया (Bulimia)**– यह एक ऐसी बीमारी है जिसमें रोगी अत्यधिक खाना खाता है जिसके कारण उसमें मोटापा बढ़ जाता है कुछ मनोरोगविज्ञानियों ने बुलिमिया में अत्यधिक खाने के व्यवहार को किसी अपूर्ण आवश्यकता का एक प्रतिस्थापित सन्तुष्टि माना है मोटापा स्वयं में एक समस्या है इससे अन्य रोगों की सम्भावना भी बढ़ती है। जैसे हृदय रोग, मधुमेह, फेफड़े की समस्या, शल्य चिकित्सा में समस्या, बुढ़ापे में दुर्धटना, हड्डी टूटना आदि समस्याएँ आती है।

- **एनोरेक्सीया नरभोसा (Anorexia Nervosa)** – इस बीमारी में रोगी को भूख नहीं लगती है। रोगी के शरीर का वजन धीरे– धीरे कम होता जाता है और बिना किसी कायिक रोग के रोगी में भूख धीरे–धीरे कम होती चली जाती है। इस रोग की शुरूवात बचपनावस्था में ही हो जाती है। ऐसे बालक जिन्हें भूख कम लगती है अपने आप में एक संवेगात्मक समस्या बन जाते है और फिर माता–पिता द्वारा खाना खाने पर बल दिया जाना ऐसी संवेगात्मक समस्या को और भी चढ़ा–चढ़ा देता है जिससे रोग की प्रगति तेज हो जाती है लेसर (स्मेमत 1980) ने अपने अध्ययन के आधार पर बतलाया है कि इस तरह की बीमारी उन बालको या व्यक्तियों में अधिक विकसित होती है। जिन्हें मातृत्व अतिरक्षा मिला होता है।

- **आँत का घाव (Peptic Udeer)**– इस रोग में प्रायः छोटी आँत के ऊपरी हिस्से में या आमाशय में एक खुला मुहँ का जख्म या घाव हो जाता है इस रोग का मुख्य लक्षण भोजन करने के एक्राध–धण्टे बाद पेट में दर्द होना है। दर्द के साथ–साथ प्रायः उल्टी होती है या मिचली भी आती है। अत्यधिक गभीर अवस्था होने पर रोगी के पेटभीतर रक्त निकलता है जो मुँह के रास्ते से कभी–कभी उल्टी द्वारा बाहर भी निकलने लगता है।

आँत के घाव की उत्पत्ति में सतत् सांवेगिक तनाव का काफी महत्व बतलाया गया है। जब व्यक्ति इस तरह के सावेगिक तनाव में अधिक दिनों से होता है तो उसके वेगस तंत्रिका (Vagues nerve) का कार्य प्रभावित हो जाता है। वेगस तंत्रिका एक ऐसा तंत्रिका तंत्र होता है जो अत्माशथ रस तथा आमाशाय क्रमाकुंचक गति (Peristastic Motions) को नियंत्रित करता है। चिरकालिक सावेगिक तनाव होने से वेगस तंत्रिका पर नियन्त्रण करीब–करीब हट जाता है और काफी अधिक मात्रा में आमाशय रस निकलने लगता है और धीरे–धीरे आमाशय की दिवाल को गलाने लगता है जिससे अंततः आँत का घाव उत्पन्न हो जाता है।

- **वृहदान्त शोथ (Colitis)** – इस बीमारी में बहुत तरह के लक्षण पाये जाते है जैसे अतिसार (Dianhoea) कब्जियत, पेट में र्दद तथा पैरवाना में खून का आना सम्मिलित है। व्हाईट (White1939) ने अपने अध्ययन में पाया कि इस रोग की उत्पत्ति में सावेगिक तनाव की भूमिका का अधिक महत्व होता है। उन्होने इस रोग को दो भागों में बाटा है। म्यूकस वृहदान्त्र शोथ (Mucous Colitis) तथा अल्सरेटिव वृहदान्त्र शोथ (Ulceratie Colitis)।

म्यूकस वृहदान्त शोथ में रोगी को खून तथा म्यूक्स मिला हुआ पैरवाना होता है।

सामान्यतः रोगी को भूख कम लगती है और अपच का शिकार हो जाता है। रोगी का पेट भारी रहता है तथा खाना खाने के बाद पेट में र्दद का अनुभव प्रारंभ हो जाता है। अल्सरेटिव वृहदान्त्र शोथ में वृहदान्त्र का म्युकस कमजोर पड़ जाता है जिससे उसमें घाव हो जाते है और उससे खून निकलने लगता है यदि म्यूकस वृहदान्त्र शोथ हो या अल्सरेटिव वृहदान्त्र शोथ इसकी उत्पत्ति प्रायः सावेगिक कारणो से होती पायी गयी है। सांवेगिक कारणों में परिवार में किसी की मृत्यु, सबंध–विच्छेद, नौकरी का छूटना आदि कारणों द्वारा इस रोग की उत्पत्ति होती है।

- **जठर शोथ (Gastrilis)**– इसमें रोगी में अपच, अतिअम्लता, मिचली, अत्यधिक गैस का होना आदि लक्षण पाये जाते है कई अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि जठर शोथ के लक्षण का सम्बन्ध चिन्ता, क्रोध तथा आत्मदोष जैसी भावनाओं से अधिक है।

कुपोषण सम्बन्धी विकृतियाँ–

हमारे देश में स्वास्थ्य सम्बन्धी बहुत कुछ प्रगति की गई है किन्तु यह प्रगति मुख्यतः समाज के इस सम्पन्न वर्गो तक ही सीमित रही है पिछड़े तथा दरिद्रवर्ग के लोगो के लिए अब भी स्वास्थ्य कल्याण का एक सपना ही है अमीर तथा गरीब का भेदभाव स्वास्थ्य सेवा के सम्बन्ध में बहुत अधिक है।

यदि कोई व्यक्ति कुपोषण या बीमारी का शिकार होता है तो उसमें अनेक प्रकार की स्वास्थ्य सम्बन्धी विकृतिया उत्पन्न हो सकती है।

प्रोटीन न्यून्ता– प्रोटीन की कमी से अनेक प्रकार बीमारी उत्पन्न हो सकती है इसका स्वास्थ्य पर पर बड़ा ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बच्चों में प्रोटीन की कमी प्रायः पाई जाती है इसकी कमी से वजन घटता है, त्वचा सिकुड़ती जाती है, विकास की गति अवरूद्ध हो जाती है। इसके लिए गरीबी, मातृकुपोषण सक्रंमण, प्रदूषण, अज्ञानता और अनुचित या असन्तुलित खानपान उत्तरदयी है।

विटामिन 'ए' की न्यूनता–विटामिन 'ए' की कमी से नेत्र ज्योति कमजोर पड़ जाती है। व्यक्ति को रतौधी हो जाती है और नेत्रों की बीमारियाँ हो सकती है।

रक्तदाणिता–रक्तदाणिता की दशा में रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी पड़ जाती है। हीमोग्लोबिन में आयरन एवं प्रोटीन पाया जाता है। इससे कार्य करने की क्षमता धटती है। एक अनुमान के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रो एवं गन्दी बस्तियों की लगभग 60-70% गर्भित महिलाएँ रक्तक्षीणता (कमजोर) की शिकार है।

आयोडीन की कमी–भारत में स्वास्थ्य सकटं का एक प्रमुख कारण आयोडीन की कमी है। लगभग 200 मिलियन लोगो में इसकी कमी का अनुमान लगाया जाता है इससे शारीरिक, व्यावहरिक एवं मानसिक विकास बाधित होता है और अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न होती है धेंधा रोग इसी का परिणाम है। इसकी कमी से बौनेपन की भी समस्या बढ़ती है।

12.7 उपचार एवं रोकथाम

स्वास्थ्य को उचित रूप से बनाये रखना आवश्यक है। इसके लिए बीमारी से बचाव पर ध्यान देना अधिक लाभकारी होता है। वैसे समाज में आरोग्यकर चिकित्सा का प्रचलन अधिक है। इससे रोगी व्यक्ति किसी डाक्टर की सलाह लेकर दवाएँ खाता है। और रोग से मुक्ति पाने का प्रयास करता है।

स्वास्थ्य हेतु दवाखाना कभी–कभी अपरिहार्थ भी हो सकता हे परन्तु यदि व्यक्ति प्रारम्भ से ही रोकथाम या बचाव के उपाय प्रयोग में लेता रहे तो वह अनेक बीमारियों से छुटकारा पा सकता है इसे स्वास्थ्य अनुरक्षण भी कहा जाता है। इस चिकित्सा का उद्देश्य बीमारी को उत्पन्न होनेसे ही रोक देना होता है जैसे स्वास्थ्य की समय–समय पर जाँच कराना, उचित भोजन लिया जाय, घर पर खतरों से निपटने के लिए सुरक्षा के पर्याप्त उपाय किये जायें इत्यादि। इसके लिए अभियानों की आवश्यक्ता पड़ती है। ऐसे अभियानों से स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ती है। संचार के माध्यम भी इसमें अहम भूमिका है।

स्वास्थ्य जागरूकता अभियान चलाने में मनोवैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिक उपायों का अत्यधिक महत्व है क्योंकि मनोतिज्ञान में व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और बीमारी की रोकथाम भी एक तरह का व्यवहार ही है। अध्ययनों से इस बात की पुष्टि हुई है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी, सूचनाएँ यदि लोगो में भय पैदा कर सकें तो लोग बचाव के प्रति शीध्रता से तत्पर हो जाते है (Suntein 1993, Jarvis 1991- Sheron1994)रोग के रोकथाम के लिए इस देश में 1985–86 में सार्वजनिक प्रतिरक्षा कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है।

टीकाकरण – इस कार्यक्रम के तहत टीके द्वारा रोके जाने वाले रोगों की रोकथाम की जाती है तथा व्यक्तियों को रोगों से बचाव की ओर ले जाया जाता है। पोलियों से प्रतिरक्षा का अभियान बहुत कुछ सफल इस कारण हो रहा है कि प्रचार द्वारा इस लाभ के सम्बन्ध में विश्वास उत्पन्न करने के प्रयास किये गये है।

- **प्रदूषित वातावरण**– वातावरण में प्रदूषण से भी बहुत से रोग फैलते है। जैसे– सॉस की बीमारी, फेफड़े की बीमारी, आँखो की बीमारी त्वचा की बीमारी, पेट की बीमारी आदि फैल जाते है। इसव करण आवश्यक है कि प्रदूषण फैलने से रोका जाय। स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिक का परम कर्तत्व होता है कि वह जनता को प्रदूषण जहरीले प्रभाव से बचने के लिए प्रयास करें तथा उन्हें जागरूप करने का भी प्रयास करें।

- **शुद्व पीने का पानी तथा स्वच्छता का प्रबन्ध**– हमारे देश में बहुत से रोग गंदे पानी पीने से तथा गन्दगी में रहने से फैलते हैं जैसे पीलिया, दस्त पेचीस आदि। व्यक्तियों को स्वच्छता से रहने की विधियाँ तथा गन्दे पानी से फैलने वाले रोगो से बचने के उपाय बताये जाय।

- **परम्पराएँ, रीतिरिवाज तथा अन्ध विश्वास**– हमारे देश की संस्कृति एवं सभ्यता काफी पुरानी रही है। इसमें बहुत से प्रथाएँ, परम्पराएँ, रीतिरिवाज एवं अन्धविश्वास पलते

रहे। इसलिए इसका प्रभाव जनमानस पर हमेशा ही पड़ता रहा है। इसके पीछे मुख्य कारण अशिक्षा तथा अज्ञानता रही है। इसका ज्यादातर प्रभाव निम्नवर्ग के लोगों में ज्यादा पाया जाता है। वे बिल्कुल अधंविश्वासों में पलते रहे है। यदि उनके धरो में किसी की तबियत खराब है तो अनका पहला इलाज ओझों के द्वारा किराया जाता है जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिको के लिए दूषित विश्वासों, परम्पराओं तथा रीतिरिवाजों आदि से व्यक्तियों को छुटकारा दिलाने में मदद करना।

- **बदलती जीवन शैली**– आज बढ़ते पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव, बदलते खान पान, रहन सहन एवं वंशेभूषा तथा तामसी प्रवृत्तियो ने समुचे समाज को झकझोर दिया है। नैतिकता का हास होता जा रहा है यह अत्यन्त ही मानव विकास के भविष्य में रोग हो सकता है। समाज का सन्तुलन बिगड़ समता है। इसके परिणाम स्वस्थ्य विकास मानसिक तथा शारीरिक रूप से विकृत तथा रोग ग्रस्त हो जायेगा।

12.8 स्वास्थ्य मनोविज्ञान का क्षेत्र

स्वास्थ्य मनोविज्ञान स्वयं में मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं जैसे– औधोगिक मनोविज्ञान, व्यक्तित्व मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, ज्ञानात्मक मनोविज्ञान, जैविक मनोविज्ञान, विकासात्मक मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान, नैदानिक मनोविज्ञान, योग मनोविज्ञान, पर्यावरण मानोविज्ञान, शारीरिक मनोविज्ञान, आदि के कार्य कारणों का समावेश है इन्ही कारणों से स्वास्थ्य मनोविज्ञान का क्षेत्र स्पष्ट हो जाता है जो इस प्रकार है–

- मानव स्वास्थ्य का सरंक्षण तथा उसे समुन्नत बनाना।
- उपभोक्ताओं के हितों का सरंक्षण करना, जैसे– यह पता लगाना कि पेय पदार्थ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तो नहीं है।
- अस्पतालों में भर्ती रोगियों पर अस्पताल के वातावरण के प्रभाव का मूल्यांकन करना।
- मनोशारीरिक रोगों का अध्ययन करना जैसे– पेष्टिक अल्सर आदि।
- बुजुर्ग रोगियों के जीवन को सुखद बनाने का प्रयास करना।
- स्वास्थ्य कल्याण तथा स्वास्थ्य कल्याण सस्ंथाओं के कार्यर्क्रमों में सुधार का प्रयास करता है।
- स्वास्थ्य सम्बन्धी नीति के निर्माण में सहायता प्रदान करता है।

12.9 साराश

स्वास्थ्य मनोविज्ञान को वर्तमान समय में अधिक मान्यता इस कारण प्राप्त हुई है कि स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिकों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अनुसंधान कार्य प्रणाली को विकसित करने की ओर दिया है अनेक ऐसी चिकित्सा सम्बन्धी समस्याएँ है जिनके हल की खोज के लिए ठोस अनुसधांन की आवश्यकता होती है। स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिक इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धी गभीर तथा बड़ी समस्याओं को मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक सन्दर्भ में समझा जा सकता है। गभीर समस्याएँ दीर्धकालीन रोगों के उत्पन्न होने और उपचार के सम्बन्ध में तथा स्वास्थ्य कल्याण के मुददों की ओर ध्यान देता है इन मुद्दो का सामाजिक एवं आर्थिक अहमियत बहुत अधिक है। स्वास्थ्य मनोविज्ञान द्वारा कठिन स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के हल की ओर दिशा मिली है।

12.10 शब्दावली

- संक्रमणः छुआछूत
- ओजस्वीः कीर्तिवान
- उर्जायुक्तः उर्जावान
- रक्तक्षणिताः खून की कमी
- विकृतियाँः बीमारी
- तामसीः नशा करने वाला
- न्यूकसः बलगम, श्लेष्मा
- एनोरेक्सीयाः भूख की कमी

12.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रशन

- रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए–

1. शारीरिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति किसी भी कार्य को.......................रूप से करता है।
2. विटामिन ए की कमी से..........................कमजोर पड़ जाती है।
3. रक्तक्षीणता की दशा में रक्त में.....................की कमी पड़ जाती है।
4. मार्क्स के अनुसार स्वास्थ्य मनोविज्ञान ....तथा......................करने के एक एजेन्ट जैसे है।

5. आयोडिन की कमी से.......................... की भी समस्या बढती है।

- **सत्य, असत्य बताइये–**

1. मनोरोग विज्ञान में मानसिक विकृतियों का अध्ययन किया जाता है (सत्य/असत्य)
2. मोटापा एक रोग है (सत्य/असत्य)
3. रोग के लक्षणों की अनदेखी घातक हो सकती है (सत्य/असत्य)
4. निवारण से रोकथाम अधिक अच्छा है (सत्य/असत्य)
5. चिन्तानिरोधक दवाएँ नकारात्मक प्रभाव नही छोड़ती है (सत्य/असत्य)

उत्तररू रिक्त स्थान–

1. धनात्मक
2. नेत्रज्योति
3. हीमाग्लोबिन
4. परिवर्तन तथा पुननिर्माण
5. बौनापन

सत्य असत्य–

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. असत्य

12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- स्नूक्स मारग्रेट कोन्ज, स्वास्थ्य मनोविज्ञान , जोन्स तथा बार्टलट पब्लिशर्स, सिंगापुर।
- टेलर सैली ई, स्वास्थ्य मनोविज्ञान, टाटा मैग्रो हिल पब्लिकेशनस कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
- डा. सिह आर.एन., आधुलिक समाज मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा–22010।

• डा. सिह आर. डी. स्वास्थ्य मनोविज्ञान, जगदम्बा पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली 2012

12.13 निबन्धात्मक प्रशन

- स्वास्थ्य से क्या तात्पर्य है? इसमे आयाम स्पष्ट कीजिए।
- स्वास्थ्य मनोविज्ञान को परिभाषित कीजिए।
- स्वास्थ्य मनोविज्ञान का विकास का वर्णन कीजिए।
- स्वास्थ्य सम्बन्धी विकृतियाँ कौन–कौन सी है?
- रोग या बीमारी को रोकने के लिए कैसी रोकथाम की जा सकती है?
- अस्वस्य व्यक्तियों का उपचार कैसे किया जा सकता है?
- स्वस्थ्य मनोविज्ञान के क्षेत्र का वर्णन कीजिए?

ईकाई–13 : पीड़ा (दर्द) परिभाषा, प्रकार और सिद्धान्त

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 पीड़ा का स्वरूप तथा परिभाषा

13.4 पीड़ा के पहलूरू–

13.4.1 जैविक पहलू

13.4.2 मनौवैज्ञानिक पहलू

13.5 पीड़ा के प्रकाररू–

13.5.1 मनोदैहिक हृदयवाहिका विकार

13.5.2 मनोदैहिक श्वसन विकार

13.5.3 त्वचा सम्बन्धी विकार

13.6 पीड़ा के सिद्धान्त

13.6.1 पीड़ा तन्तु

13.6.2 कूटसंकंतन

13.6.3 द्वारा नियन्त्रण सिद्धान्त

13.7 सारांश

13.8 पारिभाषिक शब्दावली

13.9 अभ्याश प्रशनों के उत्तर

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.11 निबन्धात्मक प्रशन

13.1 प्रस्तावना

चिकित्सा विज्ञान में दर्द को दुखदायी एवं संवेदना के रूप में परिभाषित किया गया है। यह बीमारी व घाव के प्रति आपको सचेत करता है। दर्द आपकी निद्रा, दिन–प्रतिदिन के क्रियाकलापों को प्रभावित करता है। दर्द एक शरीर के लिए एक पूर्वानुमान है जो किसी

खतरे से व्यक्ति को सचेत करता है। दर्द की संवेदना व्यक्ति से व्यक्ति अलग–अलग होती है जो शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक अन्तर में परिलक्षित होता है।

स्वास्थ्य मनोविज्ञान में दर्द एक शोध विषय है नैदानिक मनोविज्ञान में दर्द एक शोध विषय है नैदानिक मनोवैज्ञानिक चिकित्सो के साथ दर्द निवारण में रोगियों की सहायता करते है। एक रोगी को विभिन्न स्त्रोत मित्र, परिवार के सदस्य तनाव, डर, दर्द तथा असहणता को कम करने के लिए मनोविज्ञानिक रूप से सहायता करते है। वास्तव में दर्द को समझने के लिए स्वयं का अनुभव होना महत्वपूर्ण है। लेकिन हमारा दुख हमारे परिवार एवं दोस्तों को प्रभावित करता है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- पिड़ा के बारे में जान सकेगे।
- पिड़ा के पहलू जैविक पीड़ा व मनोवैज्ञानिक पीड़ा के बारे में जान सकेगे।
- पिड़ा के प्रकार तथा सिद्धान्त के बारे में जानेगें।

13.3 पिड़ा का स्वरूप तथा परिभाषा

दर्द शब्द का व्यापक रूप से उपयोग मनोवैज्ञानिक या संवेग तनावमुक्ति से है। दर्द के अनेक शब्दिक अर्थ है। वेदना का तेज दर्द लम्बे समय के लिए होता है अनेक बार दर्द के कारण लोग मूच्छित हो जाते है तेज दर्द लोगो की मृत्यु का एक कारण हो सकता है। (अमेरिकन नेशनल रैड फ्रॅास 2005) तनाव और दर्द एक दूसरे के प्रतिपूरक है। सम्भवतः तनाव का सम्बन्ध सिरदर्द से है। माहग्रेन एक तेज सिरदर्द है यदा कहा इसका परिणाम जैविक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारको के साथ में तनाव से मिलता है।

"संवेदन के कारण शरीर में असहनीय स्थिति का पैदा करता है उसे दर्द कहते है।" "दर्द मनोवैज्ञानिक व चिकित्सा से सम्बन्धित महत्व है। जैसे विवाद और चिन्ता दोनों का अनुभव दर्द से भी बुरा है।" (काफि और सहयोगी 2002)

दर्द एक सामान्य एवं गभीर स्वास्थ्य समस्या है। इससे व्यक्ति के आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक गतिविधियाँ प्रभावित होती है प्रतिवर्ष करोड़ो मुर्दा इसके निवारण में व्यय होती है (गैटचेल तथा मेयर 2000) दर्द के अध्ययन के लिए अन्तराष्ट्रीय संगठन (1979) दर्द का अध्ययन उसका सम्बन्ध, परिभाषा तथा उसका उपयोग निम्न तालिका में दिखलाया है।

डाक्टर के दौरे के 20 मुख्य सामान्य कारण

क्रम	कारण	क्रम	कारण
1.	प्रगति दौरा	11.	स्त्री रोग सम्बन्धी परीक्षण
2.	शारीरिक परीक्षण	12.	चिकित्सा दौरे
3.	दर्द आदि–कम दर्द	13.	बिना चिकित्सा दौरे
4.	प्रसूति परीक्षण	14.	सिर दर्द
5.	गले का दर्द	15.	थकान
6.	दर्द, आदि–तेज दर्द	16.	छाती में दर्द
7.	दर्द, आदि– पीठ सम्बन्धी	17.	बाल रोग परीक्षण
8.	खासी	18.	बुखार
9.	पेट दर्द	19.	त्वचा सम्बन्धी रोग
10.	सर्दी जुकाम	20.	अन्य लक्षण

स्त्रोत– एडलिन, जी और गोलैन्टी, ई (2007) स्वास्थ्य एवं स्वस्य, सुधबरी एम. ए. जान्स तथा वार्टलैट पबलिसर।

उपरोक्त तालिका के अनुसार आठ व्यक्तियों में से एक व्यक्ति बिना किसी शिकायत या लक्षण के डाक्टर के पास आते है।

13.4 पिड़ा के पहलू

13.4.1 जैविक पिड़ा– जैविक दर्द अनेक तरह के होते है। इससे रोगी गंभीर एवं स्थायी तौर पर दर्द का अनुभव करता है आंगिक दर्द त्वचा, स्नायु मांसपेशियाँ हड्डियाँ या सन्धि में संवेदन उत्पन्न होने से होता है।

इस तरह के दर्द में काई दैहिक आधार नहीं होता है इस तरह का दर्द प्रायः हृदय या अन्य महत्वपूर्ण अगो के क्षेत्र से सम्बद्व होता है। गहन मेडिकल जॉच में ऐसे रोगियो के दर्द का कोई भी स्पष्ट आधार नही मिलता है सामान्यतः इस दर्द की उत्पत्ति का सम्बन्ध किसी प्रकार के संधर्ष या तनाव से होता है या जब व्यक्ति किसी दुखद परिस्थिति से छुटकारा पना चाहता है या अन्य लोगो की सहानुभूति या ध्यान को अपनी ओर खीचना होते देखा गया है। मनश्चिकित्सों का मत है कि इस रोग के निदान में काफी परेशानी इस लिए होती है क्योकि

दर्द एक पूर्णतः आत्मनिष्ठ अनुभुति है जो मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित होने वाली धटना है। अतः यह पहचान करना मुश्किल हो जाता है। कि व्यक्ति में होने वाला दर्द का स्वरूप कायाप्रारूप है या यह वास्तविक दर्द है।

दर्द में रोगी को बहुकायिक शिकायतें होती है जबकि दैहिक रूप से वह चंगा रहता है। इसमें रोगी को अनेक तरह दर्द के लक्षण पाये जोते है– इसमें दर्द सिर, पेट, पीठ, छाती, पेशाब करने के दौरान, मासिक धर्म के दौरान, आदि होते है।

नोसीसैपसन (Nociception) इससें शरीर के ऊतको के हानि के कारण जो दर्द उत्पन्न होता है।

विससरिल (Visceral) दर्द– जब शरीर के किसी भाग में बीमारी या चोट, छाती या उदर सम्बन्धी संवेदनीय दर्द होता है।

थनडरनैस (Tenderness) दर्द – जब शरीर के रोग से प्रभावित क्षेत्र में छूने से या दबाने से दर्द होता है।

डिसट्रौटेड एमबुलेशन (Distorted Ambulation) – शरीर के किसी भाग में धूमने से किसी प्रकार का दर्द का अनुभव होना जैसे– पैर, टखना या कूल्हा।

13.4.2 मनोवैज्ञानिक पिड़ा– इस तरह के दर्द में रोगी अपने सावेगिक संधर्षों एवं चिन्ताओं की अभिव्यक्ति वास्वविक शारीरिक लक्षणों के रूप में करता है हस रोग में रोगी को कुछ वास्तविक शारीरिक बीमारियाँ होती है परन्तु उनका कारण मनोवैज्ञानिक होता है।

आधुनिक युग में प्रत्येक व्यक्ति तनाव, चिन्ता और प्रतिबल परिस्थितियों से ग्रस्त है जिसके कारण उसमें कुण्ठा की आवृत्ति और मात्रा दिनप्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कुण्ठा की परिस्थिति में व्यक्ति तनाव और परेशानी का अनुभव करता है उसमें मन में सवेगात्मक उथल पुथल रहती है। फलस्वरूप उसकी आशॉए और इच्छाँए भग्न हो जाती है।

कुण्ठा– मनोजन्य दर्द कुण्ठा, तनाव, विषाद के कारण होता है। जब व्यक्ति को सुख प्राप्ति व्यवहार या दुख हटाने वाले व्यवहार में बाधा उत्पन्न होती है और व्यक्ति को असफलता की आशंका होती है। तब उसमें कुण्ठा की भावना उत्पन्न होती है तथा उसमें धीरे–धीरे हीनता की भावना भी आने लगती है जिसमें कारण व्यक्ति विद्रोहात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करता है। इन प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप उसमें अनेक प्रकार के मानसिक लक्षण उत्पन्न हो जाते है। कुण्ठा अनेक कारणों से होती है समाज के अधिकाँश व्यक्ति अपने पद, प्रतिष्ठा, आर्थिकस्तर उच्च आकांक्षा स्तर, असफलता, साधनों का अभाव आदि में दूसरे व्यक्ति

से पीछे रह जाता है। पीछे रहने वाला व्यक्ति जब बाधाओं में सफलता पाने में असमर्थ समझता है तब उसे उस अवस्था में कुण्ठा उत्पन्न होती है।

तनाव– तनाव या प्रतिबल आधुनिक समाज की एक बड़ी समस्या है हृदय रोग एवं कैसंर जैसी जान लेवा बीमारी तनावके कारण होती है। जब व्यक्ति एक विशेष तरह की मनोवैज्ञानिक अनुक्रियाएँ जैसे चिन्ता, क्रोध, आक्रमता आदि एवं दैहिक अनुक्रियाएँ जैसे पेट की गड़बड़ी, नीद न आना, रक्तचाप में वृद्धि आदि दिखलाता है। तो हमें तनाव की श्रेणी में रखेगे। तीव्र तनाव से व्यक्ति के शरीर में इसढगं से परिवर्तन आता है कि वह दैहिर रूप से विभिन्न तरह वैक्ट्रीया तथा वाइरस आदि के आक्रमणो से अपने आप को नहीं बचा पाते हे। इस तरह के गंभीर तनाव का मनोवैज्ञानिक स्तर पर काफी प्रभाव पड़ता है इससे शारीरिक तन्त्रों पर कुप्रभाव पड़ता है। गंभीर तनाव की स्थिति मे जैविक क्षतिपूरणहिनता मनोवैज्ञानिक क्षतिपूरणहीनता तथा सामाजिक–सांस्कृतिक क्षतिपूरणहीनता भी होती है जिससे व्यक्ति की कार्यात्मक क्षमता में स्थायी रूप से कमी आ जाती है।

13.5 पिड़ा के प्रकार

दर्द दो तरह का होता हे। जो दर्द लम्बे समय तक चलता है उसे चिरकालिक दर्द कहा जाता है और जो दर्द जल्दी ठीक हो जाता है उसे तीव्र दर्द कहा जाता है तीव्र दर्द का समय कम से कम 30दिन तथा अधिक से अधिक छः महीना होता है जबकि चिरकालिक दर्द का कोई निश्चित समय नही होती है इसमें चिकित्सा की अवधि दर्द के ऊपर निर्भर होती है। पुराने कैंसर का दर्द इसमें अन्तर्गत आता है।

13.5.1 मनौदैहिक हृदयवाहिका विकार– सावेगिक तनावों के प्रति हृदय सबसे अधिक संवेदनशील अगं है। तीव्र उत्तेजन की संवेगात्मक अवस्था उत्पन्न होते ही हृदय की घड़कन अनियमित हो जाती है। रक्त चाप में वृद्धि हो जाती है। विषाद की संवेगात्मक अवस्था उत्पन्न होने पर हृदयगति मन्द पड़ जाती है। तथा रक्त चाप की घट जाता है। मेंनजर तथा क्राउस ने अपने अध्ययन में पाया कि हर तरह मनोवैज्ञानिक अवस्था अर्थात सांवेगिक अवस्था के सतत् बने रहने से व्यक्ति में एलेक्ट्रोकार्डियोग्राम की गड़बढी उत्पन्न हो जाती है।

- **हृदयगति में वृद्धि**– यह एक ऐसी बीमारी है जिनमें रोगी के हृदय में वृद्धि होने को साथ ही साथ हृदय सांमजस्य मे अनियमितता होती है। हर तरह के रोगी जो अपने आन्तरिक संघर्षो की अभिव्यक्ति तीव्र हृदय गति एवं अनियमित हृदय सांमजस्य के माध्यम से

करता है कमजोरी महसूस करता है। कभी–कभी असे सॉस लेने में कठिनाई का भी अनुभव करता है। बीमारी जब गंभीरता की स्थिति में आ जाती है। तो रोगी में मानसिक शून्यता या बेहोशी भी उत्पन्न हो जाती है। अध्ययनों में यह स्पष्ट हो गया है। कि इम बीमारी मे नाड़ी की गति तो सामान्यतः 72 स्पन्दनप्रति मिनट होता है बढ़कर 150 स्पन्दन या उससे अधिक हो जाती है।

- **एनजाइनल संलक्षण**– इस तरह की बीमारी में रोगी की छाती में अचानक तीव्र एवं जानलेवा दर्द हो जाता है। कभी–कभी इस दर्द का कारण कायिक हदय रोग होता है परन्तु जब इा रोग का स्वरूप मनोदैहिक होता है तो इस तरह के दर्द का कारण कोई न कोई सावेगिक संघर्श होता है इस रोग के कई कारण बताए गए है जिसमें शारीरिक तंत्र का कमजोर होना, सामाजिक अनुबन्धन तथा किसी सघर्ष को सांकेतिक रूप से व्यक्त करने की आवश्यकता आदि प्रधान है।

- **आवश्यक हाइपरटेंशन या उच्च्व रक्त चाप** – रक्त चाप के बढने से रोगी मे सिरदर्द, चिडचिडापन, अन्यमन्यस्कता आदि के लक्षण दिखायी देते है ऐसे रोगियों में जिन्दगी की कठिनाइयो से बचने के लिए कुछ विशेष औषध सेवन करने की आदत तथा साथ ही साथ भोजन अधिक करने की प्रवृति विकसित हो जाती है।

- **हदय रक्त धमनी की विकृति**– इस रोग में हद्य में खून की आपूर्ति करने वाली धमनियों में रक्त का थक्का बन जाता है जिसके कारण हदय को खून की आपूर्ति उतनी अधिक नहीं हो पाती है जितनी होनी चाहिए और वह बीमार पड़ जाता है। इससे हद्य के कुछ ऊतक नष्ट हो जाते है और रोगी में दिल का दौरा पड़ता है वह जिन्दगी और मौत के बीच जूझने लगता है। इस रोग से मरने वालों की संख्या भी काफी है। क्रोगर (ज्ञतवहमत 1990)के अनुसार सांवेगिक तनाव तथा चिन्ता के कारण हदय की मांसपेश्यिों में उत्तेजना अधिक बढ़ जाती है तथा रक्त जमने की प्रकिया तीव्र हो जाती है ये सभी कारक आपस में मिलकर हदय को कमजोर कर देते है और व्यक्ति इस रोग का शिकार हो जाता है।

13.5.2 मनौदैहिक श्वसन विकार– इसमें रोगी में श्वास सम्बन्धी कठिनाइयाँ होती है। कभी तो उसे दम घुटने का अनुभव होता है तो कभी उसे फेफड़ों में काफी दबाब का अनुभव होता है । इस श्रेणी में कुछ प्रमुख विकृतियाँ आती है–

- **श्वसनी दमा (Bronchial asthma)**– इसमे श्वसनी मांसपेशियों में ऐंठन से रोगी को श्वास लेने मे कठिनाई होती है इस रोग में श्लेष्मल लेश्मल में फूलन उत्पन्न हो

जाती है तथा साथ ही साथ रोगी की छाती में ऐंठन होती है तथा उसे खासी एवं श्वास में घरघराहट आदि भी होती है। कुछ मनोविश्लेष्को का मानना है कि रोग का कारण क्रोध एवं चिन्ता का दमन होता है।

- **सामान्य सर्दी**– सामान्य सर्दी में सावेंगिक तत्वों की प्रधानता होती है। कुठां चिडचिड़ापन, ध्यान अपने ओर आकृष्टि की आवश्यकता, दुखद परिस्थितियों से दूर रहने की आवश्यक्ता आदि का प्रतिफल होता है । मीरलू (Meerloo' 1980) ने अपने अध्ययन में पाया कि जब व्यक्ति तनावपूर्ण परिस्थिति के होता है तो उससे सामान्य सर्दी विकसित होने की सम्भावना अधिक होती है।

- **अति श्वसन सलक्षण (Hyperventilation Syndrome)**– इसमें रोगी जरूरत से ज्यादा एवं जोर–जोर से श्वास लेता एवं छोड़ता है रोगी में अन्य शारीरिक लक्षण भी विकसित हो जाते हे जैसे चक्कर आना, शरीर सुन्न हो जाना तथा हाथ पाव में झुनझुनी उत्पन्न होना आदि प्रथम रूप से देखने में आते है। कुछ रोगी यह भी बतलाते है कि उनकी छाती मे भारीपन है तथा ह्रदय के अगल बगल पिड़ा हो रही है। अध्ययनों से पता चला है कि अतिश्वसन सलंक्षण की शुरूवात प्रायः ऐसी परिस्थिति से होता है जिसमें रोगी अत्यधिक चितिंत हो जाता है तथा सावेगिक प्रतिक्रियाएँ अधिक गंभीर हो जाती है।

13.5.3

- **त्वचा सम्बन्धी विकार**– त्वचा एक ऐसा माध्य है जिससे सांवेगिक प्रतिक्रियाओं की स्पष्ट झलक मिलती है। सुई या पिन चुबने से, अधिक ठण्डी या गर्म वस्तु से, अधिक देर तक त्वचीय सम्पर्क में रहने पर, तेजाब आदि के त्वचा के सम्पर्क में आने पर पिड़ा संवेदना का अनुभव होता है। हेब (Hebb 1949) के अनुसार तीव्र उद्धीपन नही पिड़ा संवेदना उत्पन्न करता है। त्वचा पर पिड़ा बिन्दुओं की संख्या सर्वधिक होती है। इनकी संख्या लगभग 20 से 40 लाख तक होती है। इनका वितरण समान नही होता है। त्वचा पर जहाँ स्पर्श और दबाब बिन्दु अधिक होते है वहाँ पिड़ा बिन्दुओं की सख्या कम होती है। त्वचा में स्नायु और रक्त नलिकाएँ जहाँ जहाँ ऊपरी परत के समीप होते है वहाँ पिड़ा बिन्दु अधिक मात्रा में पाये जाते है। डलेनबैक (Dallenback) ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों में यह देखा कि प्रारम्भ में तीव्र पिड़ा होती है। फिर धीरे–धीरे कम होती जाती है परन्तु त्वचा के किसी क्षेत्र में अनुकूलन शीध्र और कुछ देर से होता है। त्वचा के पिड़ा अनुकूलन का समय बहुधा इस सेकेण्ड से 10 मिनट तक है। दैनिक जीवन के अनुभवो के आधार पर कहा जा सकता है कि पिड़ा अनुकूलन त्वचा में पाया जाता है।

13.6 पिड़ा के सिद्धान्त

देहली (Threshod) पिड़ादायक उद्धीपक सामान्यतया ऊतकों में ऐसे परिवर्तन उत्पन्न करते है जो ऊतको को सम्भावित क्षति का पूर्वसंकेत होते है। पिड़ा का अनुभव केवल उस समय नहीं होता जब कुछ ऊतक क्षति हो गये हो जबकि पिड़ा उस समय भी उत्पन्न हेती है जब ऊतको के क्षति होने की सम्भावना निकट आ गयी हो। इसका तात्पर्य यह है कि कोई उद्वीपक पिड़ा दापक तभी होगा जब उसकी तीव्रता कम से कम हो कि वह उन ऊतको को क्षति पहुँचा सके जिनमें पिड़ा संग्राहक हैं। पिड़ादायक उद्वीपक की देहली का निर्धारण इसी क्षमता का मापन करके किया जाता हैं।

त्वचा की पिड़ा का इतिहास किसी नयी पिड़ा के अनुभव की देहली को प्रभावित करता है। देहली पर सुझाव (Suggestion), अवधान– विक्षेप (Distraction), तथा गुणारोपण (Attribution) आदि संज्ञानात्मक करकों का भी प्रभाव पड़ता है। यदि प्रयोज्यों को कुछ हृदय औषधि देकर उन्हें बता दिया जाय कि इस औषधि से पिड़ा बहुत कम होती है तो प्रयोज्यों को पिड़ादायक उद्वीपक भी उतने पिड़ादायक प्रतीत नहीं होते। बर्लिन (1968) ने यह भी पाया है कि यदि शरीर के किसी एक स्थान पर पहले से ही पिड़ा हो रही हो तो अन्य स्थान पर पिड़ा की देहली बढ़ जाती है।

13.6.1 पिड़ा तन्तु– कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना है कि सभी प्रकार की पिड़ाओ के लिए अलग–अलग तंत्रिक तन्तु होते है और उनसे आने वाले सावेदिक आंवेग मस्तिष्क के अलग–अलग स्थानों पर पहुँचते है। फलस्वरूप अलग–अलग प्रकार की पिड़ा का अनुभव होता है। कुछ वैज्ञानिक इससे सहमत नही है इनका कहना है कि विभिन्न प्रकार की पीडाओ के लिए दैहिक व्यवस्था अलग–अलग होती है स्वीट (1959) के अनुसार विभिन्न प्रकार की पिड़ाओं का अनुभव स्नायविक आंवेगों में निहित कूट संकेतन की विविधता के कारण होता है। हम जानते है कि त्वचीय संवेदना का सचांलन करने वाले तंत्रिका तन्तुओं को ए–तन्तु तथा सी–तन्तु के दो वगो में विभाजित किया गया है। तथा ए–तन्तु भी दो प्रकार के होते है तीव्र ए तन्तु तथा मन्द ए–तन्तु । इतना तो सही है कि पिड़ा संवेदना का सचांलन दो प्रकार के तन्तुओं मन्द ए तन्तु तथा सी–तन्तुओं द्वारा होता है।

13.6.2 कूट संकेतन (Coding)– परम्परागत रूप से पिड़ा में कूट संकेतन की व्याख्या "स्थान सिद्धान्त" के अनुसार की जाती रही है। इस सिद्धान्त के अनुसार पिड़ा की संवेदना के लिए अलग से एक विशिष्ट दैहिक व्यवस्था होती है इसके आवेगों से को मस्तिष्क तक ले जाने के लिए अलग से पार्श्वोय मेरूदड– थेलेमस स्नायुपथ (Lateral Spine Thalamic Tract) होता है तथा संवेदना मस्तिष्क के एक विशिष्ट नाभिक– थेलेमस के पार्श्वीय

नाभिक (Latera Neuters of Thalamu) में पहुँचती है स्थान सिद्धान्त की मूल्य मान्यता यह है कि पिड़ा संवेदना की सम्पूर्ण दैहिक व्यवस्था अन्य संवेदनाओं की व्यवस्था से अलग होती है और जब किसी उद्दीपक से यह व्यवस्था उद्दीपक होती है तो पिड़ा का अनुभव होता है। पिड़ा का कूट–संकेतन इस दैहिक व्यवस्था की स्थानगत भिन्नता द्वारा सम्पन्न होता है

अनेक ऐसे प्रायोगिक प्रेक्षण है जो स्थान सिद्धान्त को स्वीकार करने में कठिनाइयाँ उत्पन्न करते है वैज्ञानिको ने एक अन्य सिद्धान्त सुझाया है जिसे हम संरूप सिद्धान्त कहते है। इस सिद्धान्त के अनुसार मस्तिष्क में पिड़ा की संवेदना मे लिए विशिष्ट रूप से कोई स्थान निर्धारित नही है और इसी प्रकार संग्राहको तन्तुओ व तंत्रिकाओ का काई भी भाग मात्र पिड़ा के लिए अलग से सुनिश्चित नहीं है। पिड़ा की अनुभुति पूरे मस्तिष्क में होने वाली फायरिग (स्नायविक विधुतीय क्रिया) की मात्रा पर निर्भर करती है। वैसे तो मस्तिष्क मे स्वाभातिक रूप से कुछ न कुछ मात्रा में फायरिग होती रहती है चाहे कोई बाहा उद्दीपन मिले अथवा नहीं। परन्तु जब किसी बाह्य उद्दीपन के कारण मस्तिष्क में स्नायविक आवेग आने लगते है तो फायंरिग की दर बढ़ जाती है जैसे जैसे उद्दीपक की भौतिक मात्रा (तीव्रता) में वृद्दि होती जाती है फायंरिग की दर में भी वृद्दि होती जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब फायरिंग की दर एक निश्चित सीमा से बढ़ जाती है तो पिड़ा का अनुभव होने लगता है।

किसी प्रकार का त्वचीय उद्दीपक चाहे वह यांत्रिकीय हो या तापीय या कोई अन्य सामान्य तीव्रता होने पर तो वह तापीय संवेदना उत्पन्न करता है परन्तु सामान्य से अधिक तीव्रता का होने पर पिड़ा की संवेदना उत्पन्न करने लगता है। इस सिद्धान्त के अनुसार कोई भी उद्दीपक अधिक तीव्र हो जाने पर पिड़ा का अनुभव पैदा करता है तथा पिड़ा के होने और न होने के बीच का गुणात्मक अन्तर स्नायविक फायरिग के मात्रात्मक अन्तर के कारण होता है।

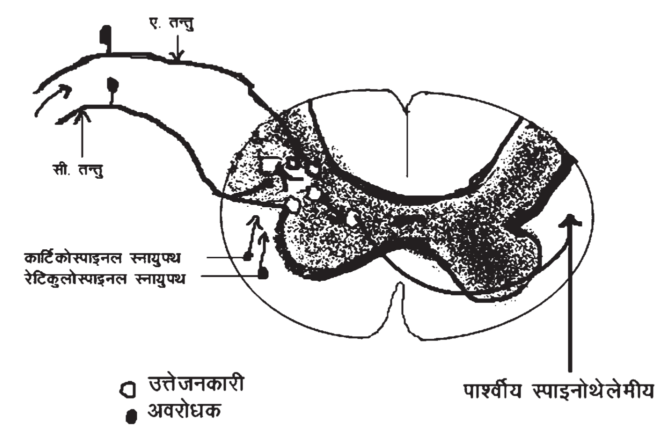

पीड़ा का द्वारा–नियंत्रण सिद्धान्त।

13.6.3 द्वार नियन्त्रण सिद्धान्त (Gate Control Theory)– पिड़ा अनुभवों की व्याख्या के लिए मेल्जाक एवं बाल (1965) ने द्वार–नियन्त्रण सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। हम जानते है कि पिड़ा के अनुभव अनेक विभिन्न एवं अप्रत्याशित कारणों से कम अथवा समाप्त हो जाते है। संगीत सुनने से पिड़ा का अनुभव कम होता है या शरीर के किसी क्षण में पिड़ा कम हो जाती है ऐसे ही अनेक गोचरों की व्याख्या द्वारा नियन्त्रण सिद्धान्त से की जा सकती है इस सिद्धान्त की मूल मान्यता यह है कि पिड़ा के स्नायुपथ में एक द्वारा होता है। जिसमे खुले रहने पर ही पिड़ा हो सकती है। ऐसे अनेक कारण है जो इस द्वार को खोलते हे। पिड़ा के आवेगों का संचालन सी–तन्तुओं द्वारा होता है। परन्तु मात्रा सी–तन्तुओं की फायरिंग ही पिड़ा के अनुभवों के लिए पर्याप्त नहीं है पिड़ा का अनुभव हो, इसके लिए आवश्यक है कि सी–तन्तुओं में फायरिंग हो तथा इस फारयरिग से मुरूंदड की पृष्ठ–सींग कोशिकाओं में भी फायरिंग हों पृष्ठ सींग कोशिकाएँ मस्तिष्क तक पिड़ा आवेगों को पहुचाती है और इन्हीं की फायरिंग से परिकल्पित द्वार खुल जाता है। परिणामस्वरूप किसी उद्दीपक के कारण यदि ए–तन्तु तथा सी–तन्तु दोनों ही सक्रिय हो जाय तो पिड़ा की संवेदना कम हो जाती है और पिड़ा अधिक मात्रा में होती है। ऐसे अनेक कारक (जैसे संगीत या अन्य प्रकार की संवेदनाए) है जो ए–तन्तुओं की फायरिंग प्रारम्भ करा कर अवरोधक प्रभाव उत्पन्न कर देते है जिससे पिड़ा की संवेदना कम हो जाती है।

13.7 साराश

पिड़ा एक महत्वपूर्ण संवेदना है और इस संवेदना के सम्बन्ध में बहुत अधिक मात्रा में शोध भी किये गये है। पिड़ा की संवेदना की दैहिक के ज्ञान का चिकित्सा विज्ञान में भी उपयोग किया जाता है। पिड़ा का अनुभव एक सुरक्षात्मक प्रक्रिया है। जब किसी उद्दीपक के कारण कुछ ऊतक नष्ट हो जाते है अथवा उनके नष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है तो हमें पिड़ा का अनुभव होता है। फलस्वरूप, हम ऐसी उद्दीपक स्थिति से बचने का प्रयास करने लगते है। पिड़ा की सूचना भावी सकंट की पूर्व–सूचना प्रदान करती है।

13.8 पारिभाषिक शब्दावली

देहली : प्रवेश मार्ग, दहलीज

उद्वीपकृ : प्रेरणा

तन्तु : रेशा, तन्तुओं से बनी वस्तु

कूट संकेतन : संकेत व्यवस्था

तापीय	:	ऊष्मा से सम्बन्धित
स्नायुपथ	:	नलिका जैसे जुड़े हुए अंगो का तन्त्र
आवेग	:	प्रतिक्रिया करने के लिए तंत्रिका की गति
श्लेष्मल	:	बलगम, श्लेष्मा

13.9 अभ्यास प्रशनों के उत्तर

1. तनाव का सम्बन्ध ....से है।
2. कीफ व सहयोगी के अनुसार दर्द मनोवैज्ञानिक व ....से सम्बन्धित होता है।
3. मनोवैज्ञानिक पिड़ा है ....
4. लम्बे समय तक चलने वाली पिड़ा को .... कहते है।
5. तीव्र पिड़ा की अवधि कम से कम .... होती है।
6. हृदय गति में वृद्वि के नाड़ी की गति स्पन्दन बढ़कर ....हो जाती है।
7. श्वसनी दमा में .... में फूलन उत्पन्न हो जाती है।
8. पिड़ा बिन्दुओं की संख्या .... लाख होती हैं।

उत्तर–

1. सिर दर्द
2. चिकित्सा
3. कुण्ठा व तनाव
4. चिरकालिक पिड़ा
5. 30 दिन
6. 150 स्पन्दन
7. श्वसनी श्लेष्मा
8. 20 से 40 लाख।

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- असामान्य मनोविज्ञान – अरूण कुमार सिंह
- दैहिक मनोविज्ञान – डा. लाल बच्चन त्रिपाठी
- उच्यतर नैदानिक मनोविज्ञान – अरूण कुमार सिंह
- आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान – डा. प्रीति वर्मा तथा डा. डी. एन. श्रीवास्वव
- स्नूक्स मारग्रेट कोन्ज, स्वास्थ्य मनोविज्ञान , जोन्स तथा बार्टलट पब्लिशर्स, सिंगापुर।
- टेलर सैली ई, स्वास्थ्य मनोविज्ञान, टाटा मैग्रो हिल पब्लिकेशनस कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।

13.11 निबन्धात्मक प्रशन

1. पिड़ा के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
2. पिड़ा को परिभाषित करते हुए उसके पहलू बताइए।
3. पिड़ा कितने प्रकार की होती है। स्पष्ट कीजिए।
4. पिड़ा के सिद्धान्तों को समझाइए।
5. **टिप्पणी लिखिए–**

1. मनोदैहिक हृदयवाहिका विकार
2. कूटसंकेतन
3. द्वार नियन्त्रण सिद्धान्त।

ईकाई – 14 : तनाव एवं समायोजन नीतियां

संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 तनाव की परिभाषा एवं इसका स्वरूप

14.4 तनाव के प्रकार

14.5 तनाव के कारण

14.5.1 हैन्स सेल्ये का दृष्टिकोण

14.5.2 लैजारस का दृष्टिकोण

14.5.3 मनोतांत्रिका प्रतिरक्षा विज्ञान का दृष्टिकोण

14.5.4 कार्यभार की अधिकता एवं तनाव

14.5.5 अन्तर्द्वन्द्वएवं तनाव

14.5.6कुंठा एवं तनाव

14.6 तनाव के अन्य वातावरणीय स्रोत

14.7 तनाव के परिणाम

14.8 तनाव प्रबन्धन या समायोजी नीतियां

14.9 सारांश

14.10 शब्दावली

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

14.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.1 प्रस्तावना

आज हम जिस सामाजिक प्रतिस्पर्धा में जी रहे हैं उसमें विभिन्न तरह की बाधााओं का उत्पन्न होना, विभिन्न क्षेत्रों में असफलता मिलना और इन असफलताओं के कारण कुंठा

उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है। ये बाधाएं ये असफलताएं, ये कुंठा, हमारे जीवन में कभी कम तो कभी अधिक मात्रा में तनाव या प्रतिबल उत्पन्न करती हैं। इन तनावों की अनुकूलतम मात्रा तो हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक एवं लाभप्रद होती हैं, परन्तु जब इसकी मात्रा व्यक्ति की सहन–अवसीमा से अधिक हो जाती है तो उसमें तरह–तरह की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं और उसे बीमार बना देती हैं। अतः आज ज्यादातर शारीरिक रोग भी इन तनावों व प्रतिबलों के कारण मनो–शारीरिक स्वरूप के हो गये हैं। इसीलिए आज चिकित्सा के क्षेत्र में तनाव को विभिन्न बीमारियों का एक महत्वपूर्ण कारण मानते हुए इसके निवारण एवं प्रबन्धन पर काफी बल दिया जा रहा है।

प्रस्तुत इकाई में आप तनाव भी परिभाषा, इसके प्रकार, इसकी उत्पत्ति के कारण, इसके दुष्परिणाम तथा तनाव प्रबन्धन के तरीकों का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से आप को तनाव के स्वरूप को समझने, इसकी उत्पत्ति के कारणों को जानने तथा इसके प्रबन्धन एवं समायोजी रणनीतियों को अपनाने में मदद मिलेगी।

14.2 उददेश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि–

1. आप तनाव को परिभाषित कर सकें,
2. तनाव की उत्पत्ति के कारणों को बता सकें,
3. तनाव के दुष्परिणामों को रेखांकित कर सकें तथा
4. तनाव के प्रबन्धन एवं इसकी समायोजी रणनीतियों हेतु योजना बना सकें।

14.3 तनाव की परिभाषा एवं इसका स्वरूप

तनाव एक नकारात्मक संवेगात्मक अनुभव है। जब व्यक्ति के सामने एक ऐसी परिस्थिति आ जाती है जिसकी अप्रत्याशित मॉग से व्यक्ति के कल्याण या उसके व्यक्तित्व की अखंडता खतरे में पड़ जाती है, तो इससे तनाव उत्पन्न होता है। इस तरह की परिस्थिति का स्वरूप दैहिक, मनोवैज्ञानिक या सामाजिक कुछ भी हो सकता है। बॉम (1990) ने अपनी पुस्तक ''स्वास्थ्य मनोविज्ञान'' में इसे इसी रूप में परिभाषित किया गया है। उनके अनुसार ''तनाव को एक नकारात्मक सांवेगिक अनुभव के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें पूर्वकथन के योग्य जैव–रासायनिक, शारीरिक, संज्ञानात्मक एवं व्यवहारात्मक

परिवर्तन सम्मिलित होते हैं जो या तो तनावपूर्ण स्थितियों को परिवर्तित करने की ओर निर्देशित होते हैं या इसके प्रभावों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की ओर।''

तनाव की अवस्था कुछ उद्दीपकों से उत्पन्न होती है जिसे ''स्ट्रेशर'' की संज्ञा दी गई है। इन उद्दीपकों में तनाव उत्पन्न करने की शक्ति छिपी होती है। इस तरह के उद्दीपक का स्वरूप शारीरिक या मनोवैज्ञानिक या सामाजिक कुछ भी हो सकता है। शारीरिक थकान से उत्पन्न तनाव दैहिक कारक या शारीरिक कारक से उत्पन्न तनाव का उदाहरण होगा जगकि विचित्र तथा डरावनी बातों को सोचने से उत्पन्न तनाव मनोवैज्ञानिक कारक से उत्पन्न तनाव का उदाहरण होगा। आर्थिक क्षति से उत्पन्न तनाव सामाजिक तनाव का उदाहरण होगा। यानी, 'स्ट्रेशर' डर–उत्पन्न करने वाला, थकान उत्पन्न करने वाला, सूचना–अतिभार उत्पन्न करने वाला–कुछ भी हो सकता है।

चाहे तनाव की उत्पत्ति के स्रोत कुछ भी हों, इससे व्यक्ति की मानसिक शांति एवं व्यक्तित्व की सामान्य कार्यवाही में बाधा उत्पन्न होती है और व्यक्ति के व्यवहारों में असामान्यता दृष्टिगत होने लगती है। इसीलिए तनाव को नकारात्मक सांवेगिक अनुभव कहा गया है।

तनाव की अवस्था में संज्ञानात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया भी महत्वपूर्ण होती है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति उद्दीपकों (स्ट्रेशर्स) से उत्पन्न व्यक्तिगत धमकी का मुआयना करता है। इस तरह का मुआयना या मूल्यांकन चेतन स्तर पर अधिक होता है, परन्तु कभी–कभी अचेतन स्तर पर होते भी पाया गया है। लैजारस एवं फोल्कमैन (1984) के अनुसार संज्ञानात्मक मूल्यांकन द्वारा व्यक्ति यह निर्णय करता है कि परिस्थिति या उद्दीपक क्यों और किस सीमा तक खतरा उत्पन्न कर रहा है। संज्ञानात्मक मूल्यांकन में व्यक्तित्व कारकों का भी महत्व बतलाया गया है। कॉर्चिन (1986) के अनुसार संज्ञानात्मक मूल्यांकन व्यक्ति भी वर्तमान आवश्यकताओं, व्यक्तिगत मूल्यों जिससे तनाव सम्बन्धित होता है तथा तनावपूर्ण परिस्थिति का व्यक्ति पर पड़ने वाले संभावित प्रभाव की प्रत्याशा पर बहुत अधिक निर्भर करता है।

तनाव उत्पन्न करने में ''स्ट्रेशर'' की भूमिका पर जो अध्ययन हुए हैं उससे स्पष्ट होता है कि एक ही तरह के ''स्ट्रेशर'' सभी व्यक्तियों में समान मात्रा में तनाव उत्पन्न नहीं करते। स्ट्रेशर'' जो एक व्यक्ति के लिए तनाव है वही दूसरे के लिए उत्साहवर्द्धक भी हो सकता है। उदाहरणस्वरूप, कुछ व्यक्ति शोरगुल को तनाव उत्पन्न करने वाला यानी, ''स्ट्रेशर'' मानते हैं जबकि कुछ अन्य, जिन्हें शोर में रहने की आदत पड़ जाती है, शोरगुल को 'स्ट्रेशर' नहीं

मानते। इसी प्रकार, एक व्यक्ति नौकरी छूट जाने पर तनावग्रस्त रहने लगता है जबकि दूसरा इसे अपने आगे बढ़ने का अवसर समझता है और इसे 'स्ट्रेशर' नहीं मानता। स्पष्ट है कि किसी उद्दीपक या घटना का 'स्ट्रेशर' होना इस बात पर निर्भर करता है कि अनुभव करने वाला व्यक्ति उस उद्दीपक या घटना (यानी, स्ट्रेशर) का प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार करता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को व्यक्ति और उसके परिवेश के सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया है। लैजारस एवं फोस्कमैन (1984) के अनुसार, ''तनाव व्यक्ति और उसके परिवेश के बीच होने वाले तालमेल की सीमा का फलन है।'' यानी, तनाव किसी व्यक्ति के इस आकलन की प्रक्रिया का परिणाम है कि क्या उसके पास अपने वातावरण की मांगों को पूरा करने का पर्याप्त साधन है। दूसरे शब्दों में, यदि व्यक्ति यह मूल्यांकन करता है कि उसके पास वातावरण सम्बन्धी मांगों की पूर्ति करने के साधनों की कमी है, तो वह तनाव का अनुभव करेगा, अन्यथा नहीं। अतः हम कह सकते है कि किसी व्यक्ति के पास उपलब्ध साधन और परिस्थिति की मांगों के बीच निम्नलिखित तीन स्थितियां बनती हैं जिसके परिप्रेक्ष्य में उसके तनाव की मात्रा का निर्धारण होता है–

1. यदि वातावरण की मांग की तुलना में साधन अधिक है, तो व्यक्ति बहुत कम तनाव का अनुभव करेगा,

2. यदि साधन वातावरण की मांग के अनुरूप ही है, परन्तु स्थिति का सामना करने हेतु अधिक प्रयास की आवश्यकता है, तो व्यक्ति साधारण मात्रा का तनाव अनुभव करेगा,

3. परन्तु यदि व्यक्ति पाता है कि उसके पास वातावरण की मांग का सामना करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं है, तो वह बहुत अधिक तनाव का अनुभव करेगा।

स्पष्ट है कि तनाव व्यक्ति की उस मानसिक प्रक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होता है जिसके द्वारा वह घटनाओं का आंकलन हानिकारक, आक्रामक या चुनौतीपूर्ण रूप में करता है तथा यह मूल्यांकन करता है कि सम्भावित प्रतिक्रियाएं क्या होंगी एवं उन घटनाओं की ओर क्या प्रत्युत्तर होगा।

14.4 तनाव के प्रकार

तनाव की परिभाषा एवं उसकी प्रकृति से तनाव के सम्बन्ध में तो तथ्य उजागर हुए हैं उनसे तनाव के तीन रूप सामने आते हैं–

1. उद्दीपन–उन्मुख तनाव

2. अनुक्रिया–उन्मुख तनाव एवं

3. अन्तःक्रिया–उन्मुख तनाव

उद्दीपन–उन्मुख तनाव के केन्द्र में तनाव उत्पन्न करने वाला उद्दीपक यानी स्ट्रेशर होते हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि उसका व्यावसायिक कार्य काफी तनावपूर्ण है, तो वह तनाव का वर्णन वातावरणीय उद्दीपन के संदर्भ में कर रहा होता है। इसे ही उद्दीपन–उन्मुख तनाव कहते हैं। तनाव के सम्बन्ध में हैन्स ऐल्मे का दृष्टिकोण मूलतः उद्दीपन–उन्मुख तनाव, यानी स्ट्रेशर के कारण उत्पन्न तनाव की व्याख्या करने से है। तनाव–उन्मुख उद्दीपन, यानी स्ट्रेशर भी मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं–

क. कुछ दैवीय घटनाएं या बड़े परिवर्तन, जैसे–युद्ध, बाढ़, सूखा, सुनामी, भूकम्प आदि जो बड़े पैमाने पर व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं और भय उत्पन्न करते हैं।

ख. ऐसी घटनाएं या परिवर्तन जो केवल एक या कुछ व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं, जैसे– विवाह, परिवार में किसी की मृत्यु आदि।

ग. रोजमर्रा की घटनाएं या परेशानियां जो व्यक्ति में क्रोध, भय या दुःख उत्पन्न करते हैं।

अनुक्रिया–उन्मुख तनाव से तात्पर्य किसी उद्दीपन के प्रति भौतिक अनुक्रिया से है। उदाहरण–स्वरूप, यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि ''उसे जब भी ज्यादा तनाव होता है, उसका दिल उछलने लगता है'', तो निश्चित रूप से वह अनुक्रिया–उन्मुख तनाव पर बल दे रहा है। यदि कोई उद्दीपन किसी व्यक्ति में अनुक्रिया उत्पन्न करने में सक्षम नहीं है तो वह उसके लिए स्ट्रेशर नहीं होगा। अतः उद्दीपकों को स्ट्रेशर कहना इस बात पर निर्भर करेगा कि उस उद्दीपक में अनुक्रिया उत्पन्न करने की कितनी शक्ति है। स्पष्ट है कि उद्दीपक–अनुक्रिया तनाव का स्वरूप चक्रीय है क्योंकि जहां एक ओर तनाव उत्पन्न करने वाला उद्दीपक किसी अनुक्रिया को प्रकाशित करता है, वहीं कोई अनुक्रिया एक विशिष्ट स्ट्रेशर (उद्दीपक) को इंगित करती है।

अन्तःक्रिया–उन्मुख तनाव के अन्तर्गत वातावरणीय उद्दीपन एवं व्यक्ति के बीच में अन्तःक्रिया को महत्वपूर्ण माना जाता है। एक व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्र में आर्किक मामलों पर निर्णय लेते समय तनाव का अनुभव कर सकता है परन्तु वही व्यक्ति दूसरी समस्याओं के सम्बन्ध में निर्णय लेते समय तनाव का अनुभव नहीं कर सकता है। इस सम्बन्ध में लैजारस का दृष्टिकोण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है जिसने तनाव के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण उद्दीपन और व्यक्ति के बीच की अन्तःक्रिया को माना है। अन्तःक्रिया–उन्मुख तनाव को निम्नलिखित

उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति के पास पूर्व से बचत किया हुआ कोई धन नहीं है और अचानक उसकी नौकरी छूट जाती है तथा उसे दूसरी नौकरी मिलने की आशा भी नहीं है, तो वह अधिक तनाव झेलेगा, परन्तु दूसरी ओर एक दूसरा व्यक्ति जो अत्यधिक आत्मविश्वासी है और उसके पास पूर्व का किया हुआ बचत भी है तो नौकरी छूट जाने पर वह उतना तनाव नहीं झेलेगा। स्पष्ट है कि नौकरी छूट जाने से उत्पन्न तनाव की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि व्यक्ति की अन्तःक्रिया नौकरी छुटने जैसी घटना, यानी स्ट्रेशर, से किस प्रकार की है।

14.5 तनाव के कारण

तनाव क्या है तथा यह कितने प्रकार का होता है– इस सम्बन्ध में हम लोगों ने काफी चर्चा की और तनाव से सम्बद्ध उद्दीपनों या स्ट्रेशर्स के बारे में भी जाना। यहाँ अब हम कुछ वैसे तत्वों या कारकों पर प्रकाश डालना चाहेंगे जो तनाव की उत्पत्ति में उत्प्रेरक का कार्य करते हैं, या यों कहें कि जो तनाव को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन कारकों में एक महत्वपूर्ण कारक है परिस्थिति की अस्पष्टता या अनिश्चितता। जब व्यक्ति के सामने अस्पष्ट परिस्थिति आ जाती है तथा दूसरी तरफ व्यक्ति में अभिप्रेरक का स्तर ऊँचा होता है, तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति में तनाव सबसे अधिक उत्पन्न होता है। शायद यही कारण है कि व्यक्ति जब किसी नये या अपरिचित वातावरण में प्रवेश करता है, तो चाहे उसमें खतरा हो या न हो, वह चिन्तित रहता है तथा उसमें तनाव की स्थिति बनी रहती है।

तनाव उत्पन्न करने में उन परिस्थितियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है जिसमें व्यक्ति को पर्याप्त उद्दीपन नहीं मिल पाता है। कई अध्ययनों में ऐसा देखा गया कि जब प्राणी को पर्याप्त उद्दीपन से पूर्णतः वंचित कर दिया गया तो उसमें तनाव का स्तर बढ़ता गया और धीरे–धीरे वह सांवेगिक एवं व्यावहारात्मक विघटन का शिकार हो गया।

तनाव उत्पन्न करने में प्रत्याशित या वर्तमान में मौजूद खतरे को भी महत्वपूर्ण माना गया है। यदि व्यक्ति अपने आस–पास मंडराते खतरे का अवगम करता है और उसे उपनी सुरक्षा में बाधक पाता है या फिर किसी प्रत्याशित खतरे का अनुमान लगाता है तो उसके तनाव का स्तर बढ़ जाता है। खतरा व्यक्ति के शारीरिक कल्याण से सम्बन्धित हो सकता है या फिर उसकी प्रमुख आवश्यकताओं के बाधक के रूप में उपस्थित हो सकता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जब किसी व्यक्ति के पास बहुत तरह की परस्पर विरोधी एवं तीव्र सूचनाएं एक साथ पहुँचती हैं तो इससे भी उसमें तनाव उत्पन्न होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि सूचनाओं को संसाधित करने की क्षमता किसी भी व्यक्ति में

सीमित होती है। उद्दीपकों की अधिकता, बहुआयामी कार्य, अन्य मनस्कता की अवस्था आदि सूचना अतिभार के कुछ उदाहरण है।

अध्ययनों से यह भी पता चला है कि व्यक्ति में तनाव की उत्पत्ति उसके आत्म–सम्मान को लगने वाले वेस की प्रत्याशा या मान–सम्मान को खतरा से भी होती है। व्यक्ति को मान–सम्मान के खतरे का भय दो तरह से होता है– आत्म–सम्मान का खतरा तथा दूसरों से प्राप्त मान–सम्मान सम्बन्धी खतरा। जब व्यक्ति को इस तरह की परिस्थिति का सामना करना पड़ता है जहां उसका आत्म–सम्मान निम्न स्तर का होने लगता है तो उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है। ठीक इसी प्रकार, जब व्यक्ति इस तरह की परिस्थिति में फँस जाता है जहाँ उसे दूसरों से मिलने वाला स्नेह एवं प्रेम खतरे में पड़ जाता है और वह परिहास का पात्र बनने लगता है तो भी उसमें तनाव की उत्पत्ति होती है।

14.5.1 हैन्स सेल्ये का दृष्टिकोण

तनाव के सम्बन्ध में हैन्स सेल्ये का दृष्टिकोण मूलतः तनाव प्रतिक्रिया के जैविक पक्षों की ओर है। सेल्ये का कहना है कि तनाव उत्पन्न करने वाली घटनाएं या उत्तेजनाएं भिन्न हो सकती हैं, परन्तु तनाव से उत्पन्न शारीरिक लक्षणों में समानता पाई जाती है। अपनी इस धारणा की पुष्टि सेल्ये ने अपने अध्ययनों के आधार पर की। उन्होंने विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों का निरीक्षण किया, जैसे– धन की हानि से ग्रस्त व्यक्ति, किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु से प्रभावित व्यक्ति, पुलिस केस से परेशान व्यक्ति आदि। उसने पाया कि व्यक्ति की समस्या चाहे जिस किसी प्रकार की हो उसमें तनाव सम्बन्धी लक्षणों में समानता दिखाई दी, जैसे– भूखे मर जाना, मांसपेशियों में कमजोरी आ जाना, संसार से वितृष्णा उत्पन्न हो जाना आदि। इसे सेल्ये ने ''सामान्य अनुकूलन सिन्ड्रोम'' की संज्ञा दी जिसे संक्षेप में है। (General Adaptation Syndrome) भी कहा जाता है। जी.ए.एस. में तीन चरण होते हैं–

1. अलार्म या खतरे की घंटी
2. प्रतिरोध एवं
3. थकावट या निःशेषण।

सेल्ये का कहना है कि अलार्म या खतरे की घंटी की स्थिति में सर्वप्रथम शरीर को एक धक्का–सा महसूस होता है जो अस्थायी स्वरूप का होता है। इस समय तनाव का प्रतिरोध सामान्य स्तर से नीचे होता है। इस अवस्था में शरीर तनाव की उपस्थिति का पता लगा लेता

है और उसे निष्कासित करने की चेष्टा करता है। इस अवस्था में मांसपेशियों की गति में कमी आ जाती है, तापमान कम हो जाता है और रक्तचाप गिर जाता है।

अलार्म के पश्चात् प्रतिरोध की अवस्था शुरू होती है जिसे काउण्टर शॉक या विपरीत धक्का भी कहते है। इस अवस्था में तनाव का प्रतिरोध उठने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि एड्रीनल कॉटैक्स लम्बा हो जाता है तथा हार्मोन्स का निकलना बढ़ जाता है। अलार्म की अवस्था कम अवधि की होती है। इसके तुरन्त बाद प्रतिरोध की अवस्था शुरू हो जाती है जिसमें तनाव का प्रतिरोध तनाव से पूर्ण प्रयास के साथ लड़ाई करने के लिए बढ़ जाता है। प्रतिरोध की अवस्था में शरीर में तनाव हार्मोन्स की बाढ़ आ जाती है। रक्तचाप, ह्रदय गति, तापमान, श्वसन गति आदि में तेजी आ जाती है। यदि तनाव का सामना करने के भरपूर प्रयास असफल हो जाते हैं और तनाव बने रहते हैं तो व्यक्ति सामान्य अनुकूलन सिन्ड्रोम के तीसरे चरण में प्रवेश कर जाता है, जिसे थकावट का निःशेषण की अवस्था कहते हैं।

निःशेषण की अवस्था मेंशरीर को नुकसान पहुँचने लगता है, व्यक्ति में थकावट की मात्रा बढ़ जाती है और शैनः–शैनः वह बीमारी की अवस्था में प्रवेश कर जाता है।

सेल्ये के उपर्युक्त विचार से बहुत से मनोवैज्ञानिक सहमत नहीं हैं। हॉबफॉल का कहना है कि मानवों के तनाव के सम्बन्ध में शारीरिक प्रत्युत्तर के अतिरिक्त बहुत कुछ और समझने की आवश्यकता है। हमें व्यक्तित्व, शारीरिक बनावट, प्रत्यक्षीकरण, स्ट्रेशर्स का संदर्भ आदि जानने की भी जरूरत है।

14.5.2 लैजारस का दृष्टिकोण

लैजारस ने तनाव की व्याख्या व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थिति के प्रत्यक्षीकरण के आधार पर की है। उनके अनुसार तनाव को न तो वातावरणीय घटना के आधार पर पारिभाषित किया जा सकता है और न ही व्यक्ति के प्रत्युत्तर के आधार पर। कोई उद्दीपन या घटना किसी व्यक्ति पर क्या प्रभाव डालेगा या उसके तनाव की मात्रा क्या होगी–यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह व्यक्ति होने वाली हानि, चुनौतियों एवं धमकियों को किस रूप में प्रत्यक्षीकृत करता है और उन परिस्थितियों का सामना करने की उसमें कितनी क्षमता है। स्पष्ट हुआ कि लैजारस के मतानुसार तनाव का सम्बन्ध तनाव उत्पन्न करने वाली घटना पर निर्भर न करके तनाव से प्रभावित होने वाले व्यक्ति की उस तनाव से उत्पन्न धमकी की ओर भाव, उसकी बेधन शक्ति एवं मुकाबला करने की उसकी योग्यता पर निर्भर करता है।

लैजारस का स्पष्ट मानना है कि जीवन की घटना तनाव उत्पन्न नहीं करती, बल्कि उस घटना के सम्बन्ध में व्यक्ति का दृष्टिकोण तनाव उत्पन्न करता है। लैजारस एवं

फोल्कमैन ने तनाव को व्यक्ति एवं वातावरण के बीच का एक विशिष्ट सम्बन्ध बताया है जो कि व्यक्ति द्वारा भार डालने वाला अथवा उसके संसाधनों से बढ़ा हुआ होने वाला तथा उसके कल्याण के लिए खतरा के रूप में मूल्यांकित किया जाता है। यानी, तनाव में व्यक्ति और वातावरण के बीच अन्तः क्रिया का होना आवश्यक है और इस अन्तःक्रिया की कुंजी होती है व्यक्ति द्वारा मनोवैज्ञानिक स्थिति का मूल्यांकन। तनाव के लिए मनोवैज्ञानिक स्थिति को चेतावनी देने वाली, चुनौती देने वाली तथा हानिकारक होना आवश्यक है।

लैजारस एवं फोल्कमैन ने मनोवैज्ञानिक स्थिति के मूल्यांकन के तीन प्रकार बतलाये हैं– प्राथमिक मूल्यांकन, माध्यमिक मूल्यांकन तथा पुनःमूल्यांकन।

प्राथमिक मूल्यांकन में व्यक्ति जब पहली बार किसी घटना का सामना करता है तो वह इसके प्रभाव का मूल्यांकन अपने हित के संदर्भ में करता है। प्राथमिक मूल्यांकन के पश्चात् व्यक्ति अपनी इस योग्यता के सम्बन्ध में यह धारणा बना लेता है कि उक्त घटना से उत्पन्न नुकसान, चेतावनी या चुनौती को नियंत्रित कर सकने में वह सक्षम होगा। इसे ही माध्यमिक मूल्यांकन कहा गया। पुनः मूल्यांकन से तात्पर्य नई–नई सूचनाओं के आगमन के साथ–साथ मूल्यांकन के लगातार बदलते रहने से है। पुनः मूल्यांकन सदैव तनाव को कम नहीं करता बल्कि कभी–कभी उसे बढ़ा भी देता है। एक स्थिति जो पहले व्यर्थ या हितकर मूल्यांकित की जाती थी वही वातावरण के बदलने या उसे स्थिति के सम्बन्ध में व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण बदलने या उस चेतावनी वाली या चुनौती वाली हो जाती है।

14.5.3 मनोतंत्रिका प्रतिरक्षा का दृष्टिकोण

मनोतंत्रिका प्रतिरक्षा विज्ञान ज्ञान का वह क्षेत्र है जो मनोवैज्ञानिक तत्वों, तंत्रिका संस्थान एवं प्रतिरक्षा संस्थान के आपसी सम्बन्धों की जांच–पड़ताल करता है। वर्तमान समय में मनोवैज्ञानिकों एवं चिकित्साशास्त्रियों ने मनोतंत्रिका प्रतिरक्षा विज्ञान के क्षेत्र में काफी रूचि दिखलाई है और इस क्षेत्र में नये–नये प्रयोग करके विभिन्न प्रकार की बीमारियों को समझने का प्रयास किया है। चिकित्सा शास्त्रियों ने विभिन्न प्रकार के बैक्टीरिया, वायरस एवं ट्यूमरों की पहचान करके और फिर उनको नष्ट करके मनोवैज्ञानिक तत्वों एवं प्रतिरक्षा संस्थान के सम्बन्धों को समझने का प्रयास किया है। इस दिशा में सैन्ड्रा लेवी वीसमैन आदि के अध्ययन महत्वपूर्ण है। लेवी (1985) ने कैंसर के रोगियों का अध्ययन कर पाया कि जो रोगी बीमारी को स्वीकार कर लेते हैं वह असहाय होने का भाव प्रकट करते हैं परन्तु जो रोगी क्रोध का भाव प्रकट करते हैं वह यह विश्वास रखते हैं कि वह रोग से लड़ाई कर सकते हैं। इस प्रकार का नियंत्रण सम्बन्धी विश्वास कोशों के प्राकृतिक मारक क्षमता पर प्रभाव डालते

हैं। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि सफेद रक्तकोश जो लिम्फ संस्थान में होते हैं दो रूपों में आते हैं–लिम्फोसाइटिस एवं फागोसाइटिस। लिम्फोसाइटिस का मुख्य कार्य अजनवी कोशों को मार देना है तथा फागोसाइटिस का कार्य इन कोशों को खा–पीकर समाप्त कर देना है। शोधकर्ताओं ने पाया कि जब कुछ विशेष प्रकार के लिम्फोसाइटिस, जिन्हें स्वाभाविक रूप से मारने वाला कोश कहा जाता है, सक्रिय होते हैं तो कैंसर विकसित नहीं होता।

कैंसर रोगियों के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि रोगी में समस्या के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि रोगी में समस्या का सामना करने की, इसे खोजने की, उत्तर तलाशने की, उपचार में सक्रिय भूमिका की युक्तियां आदि बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयास हैं जो उन्हें कैंसर का सामना प्रभावशाली तरीके से करने में सहायता करती हैं। एड्स रोगी के साथ भी ऐसा ही देखा गया है।

14.5.4 कार्यभार की अधिकता एवं तनाव

अधिक कार्यभार या ओवरलोडिंग को आये दिन ''वर्न आउट'' के रूप में भी जाना जाता है। यह वैसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति किसी व्यवसाय या अपने पारिवारिक जिन्दगी में यह अनुभव करने लगता है कि ''वह कार्य के बोझ से दबा जा रहा है।'' यह एक निराशा एवं हताशा का भाव है जो बिना थमे हुए कार्य सम्बन्धी तनाव से उत्पन्न होता है। बर्न आउट केवल एक या दो अभिधातज घटनाओं के होने के कारण नहीं होता। पाइन्स एवं एरोन्सन (1988) ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया कि धीरे–धीरे एकत्र होते हुए भारी कार्य सम्बन्धी तनावों के कारण होता है। वर्न आउट उन व्यक्तियों में होता है जिनसे कड़ी मेहनत की अपेक्षा की जाती है और यह मांग की जाती है कि वे सदैव अपने संगठन, जिनमें वे कार्य कर रहे हैं, के लिए अपना पूर्ण समय और बल लगा देंगे। शिक्षकों, अफसरों, निजी उद्योगों, कम्पनियों में कार्य करने वाले प्रबन्धकों आदि में ''वर्न आउट'' की समस्या अधिक पाई जाती है।

14.5.5. अन्तर्द्वन्द्व एवं तनाव

तनाव का सम्बन्घ अन्तर्द्वन्द्वसे भी है। जब भी दो या दो से अधिक विरोधी उद्दीपक एक ही समय व्यक्ति के समक्ष उपस्थित होते हैं तो व्यक्ति अन्तर्द्वन्द्व में पड़ जाता है। उद्दीपकों की उपस्थिति एवं स्वरूप के आधार पर अन्तर्द्वन्द्वके तीन प्रकार बताये गये हैं जो तनाव की उत्पत्ति के आधार बनते हैं।

(क) पहुँच–पहुँच अन्तर्द्वन्द्व

(ख) परिहार–परिहार अन्तर्द्वन्द्व

(ग) पहुँच–परिहार अन्तर्द्वन्द्व

पहुँच–पहुँच अन्तर्द्वन्द्वकी उत्पत्ति उस समय होती है जब व्यक्ति के समक्ष दो समान तीव्रता का उद्दीपक एक ही समय उपस्थित होता है परन्तु व्यक्ति उन दोनों में से किसी एक के प्रति ही अनुक्रिया देने की स्थिति में होता है। उदाहरण स्वरूप, मारूति–सुजुकी की स्विफ्ट कार खरीदें या होंडा सिटी खरीदें। दोनों ही कार उम्दा किस्म के हैं, परन्तु व्यक्ति को खरीदना सिर्फ एक ही कार है। अतः यहाँ व्यक्ति में पहुँच–पहुँच अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होगा। यह अन्तर्द्वन्द्वउपर्युक्त तीनों ही प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वों में सबसे कम तनाव उत्पन्न करने वाला होता है क्योंकि यहाँ दोनों ही विकल्प (उद्दीपक) सकारात्मक निर्णय की ओर ही ले जाने वाले होते हैं।

परिहार–परिहार अन्तर्द्वन्द्वतब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति को दो ऐसे उद्दीपकों में से एक को चुनना होता है जिन्हें वह बेकार का समझता है और उनसे बचना चाहता है। यहाँ व्यक्ति की स्थिति ''आगे गढ्ढा पीछे खाई''वाली होती है। पहुँच–पहुँच अन्तर्द्वन्द्वकी तुलना में परिहार–परिहार अन्तर्द्वन्द्वअधिक तनावपूर्ण होते हैं।

पहुँच–परिहार अन्तर्द्वन्द्वमें उद्दीपक का स्वरूप ऐसा होता है जिसकी सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही विशेषताएं होती हैं। ऐसे उद्दीपक को व्यक्ति पाना भी चाहता है और उससे बचना भी चाहता है। डायबिटीज के मरीज, जिन्हें मिठाई बहुत पसन्द है, परन्तु इसके खाने से चीनी बढ़ने का खतरा है, पहुँच–परिहार अन्तर्द्वन्द्व से सफर कर सकता है। यदि व्यक्ति बहन से प्रेम करता हो और बहनोई से घृणा तो बहन की ससुराल जाने में पहुँच–परिहार अन्तर्द्वन्द्व का अनुभव करेगा। इस प्रकार का अन्तर्द्वन्द्वभी काफी तनावपूर्ण होता है।

14.5.6 कुंठा एवं तनाव

कुंठा असफलता से उत्पन्न ऐसी मानसिक स्थिति है जिसमें निराशा का भाव भरा होता है। जब व्यक्ति अपनी इच्छानुसार उद्देश्य तक नहीं पहुँचता या लक्ष्य प्राप्त करने में बाधा का अनुभव करता है तो उसमें कुंठा उत्पन्न होती है जो उसके तनाव के स्तर को बढ़ा देती है। यह संस्कार कुंठाओं से भरा पड़ा है। किसी की पदोन्नति रूकी हुई है तो कोई परीक्षा पास नहीं कर सका है, किसी को ट्रेन पकड़नी है परन्तु ट्रैफिक जाम है तो कोई कार खरीदना चाहता है पर धन की कमी है। ये तमाम ऐसी परिस्थितियां हैं जो कुंठा या विफलता के माध्यम से व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं।

व्यक्ति के जीवन में कभी गम्भीर बीमारी तो कभी तलाक जैसी बड़ी घटनाओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी घटनाएं तनाव का मुख्य स्रोत होती हैं। जीवन में

दिन–प्रतिदिन के झगड़े–झंझट भी तनाव उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। थामस होम्स एवं रिचर्ड राहे (1967) ने जीवन की घटनाएं और दिन–प्रतिदिन के झगड़े–झंझट से होने वाले तनाव को सूचित करने हेतु एक सोशल रिएडस्टमेंट रेटिंग स्केल बनाया जिसमें जीवन–साथी की मृत्यु को सर्वाधिक तनाव उत्पन्न करने वाली घटना मानते हुए 100 अंक दिया गया और मामूली कानून तोड़ने जैसी घटना को न्यूनतम तनाव उत्पन्न करने वाली घटना मानते हुए 11 अंक दिया गया। इस स्केल पर तलाक से उत्पन्न तनाव को 73 अंक, नजदीकी रिश्तेदार की मृत्यु से उत्पन्न तनाव को 63 अंक, नौकरी से निकाले जाने से उत्पन्न तनाव को 47 अंक, गर्भ धारण करने से उत्पन्न तनाव को 40 अंक, आदि प्रदान करते हुए एक लम्बी सूची प्रस्तुत की। परन्तु यह सूची अमरीकी नागरिकों के लिए थी जो भारतीय संदर्भ में वैध नहीं हो सकती।

14.6 तनाव के अन्य वातावरणीय स्रोत

आज प्रौद्योगिकीकरण के इस युग में न सिर्फ शहरी वरन् ग्रामीण जीवन भी विभिन्न प्रकार के वातावरणीय कारकों की चपेट में आ गया हैं जहाँ आये दिन तनाव देखने को मिलता है। इन वातावरणीय स्रोतों में मुख्य हैं– शोरगुल, प्रदूषण, भीड़–भाड़, अन्यता भाव आदि।

शोरगुल एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण वातावरणीय कारक है जो न सिर्फ वातावरण में प्रदूषण उत्पन्न करता है, बल्कि एक अनचाहे एवं अति कष्टकारी उद्‌दीपक के रूप में व्यक्ति के तनाव स्तर को भी बढ़ा देता है। यह व्यक्ति के वातावरण में जबरदस्ती प्रवेश कर उसके स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालता है। तनाव उस समय अधिक हो जाता है जब व्यक्ति जानता है कि वातावरण में उत्पन्न शोर पर उसका कोई भी वश चलने वाला नहीं है। धार्मिक क्रिया–कलापों में लाउड–स्पीकर से जो शोर उत्पन्न होता है वह उसके तनाव के स्तर को और भी बढ़ा देता है। पढ़ाई कर रहे परीक्षार्थियों के तनाव पर इस तरह के शोरगुल का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है।

शोरगुल के अतिरिक्त प्रदूषण के अन्य प्रकार भी व्यक्ति के तनाव को बढ़ाते हैं। इनमें महत्वपूर्ण प्रदूषण हैं– औद्योगिकरण से उत्पन्न रासायनिक प्रदूषण, न्यूक्लियर यंत्रों से उत्पन्न प्रदूषण, शहरी तापमान की वृद्धि एवं पर्यावरण में बढ़े कार्बन डायक्साइड की मात्रा आदि। ये सभी व्यक्ति के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं और तनाव वृद्धि में ''स्ट्रेशर'' का काम करते हैं।

आये दिन जनसंख्या घनत्व भी तनाव को उत्पन्न कराने में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। जनसंख्या घनत्व एक ऐसी भौतिक स्थिति है जिसमें एक बड़ी जनसंख्या सीमित स्थान में रहती है। इससे उस स्थान पर व्यक्ति भीड़–भाड़ का अनुभव करने लगता है तथा उसमें एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति उत्पन्न होती है कि वह बन्द है। जनसंख्या घनत्व और भीड़–भाड़ व्यक्ति के व्यवहार को नकारात्मक ढंग से प्रभावित करते हैं तथा व्यक्ति तनाव की स्थिति से गुजरने लगता है। अध्ययनों से पता चला है कि घनत्व और भीड़भाड़ दोनों ही व्यक्ति में आक्रामकता का भाव बढ़ाते हैं तथा जुर्म दर में बढोत्तरी लाते हैं।

शहरी दबाव भी एक महत्वपूर्ण ''स्ट्रेशर्स'' माना गया है जो शोरगुल, प्रदूषण और भीड़भाड़ का मिला–जुला रूप है। ऐरिक ग्रेग ने शहरी दबाव शब्दों का प्रयोग अनेक वातावरणीय 'स्ट्रेशर्स' के संदर्भ में किया है जो शहरी जीवन पर प्रभाव डालते हैं। काम पर जाने की परेशानियां और जुर्म का भय शहरी व्यक्तियों के अनुभवों में भीड़भाड़, प्रदूषण और शोर के साथ जुड़ जाती हैं। ये सभी व्यक्तिगत नियंत्रण से इतने परे होते हैं कि व्यक्ति इन्हें तनाव के स्रोत के रूप में देखता है।

वर्तमान में कुछ ऐसे भी अध्ययन हुए हैं जो यह बताते हैं कि उच्च मांगों और निम्न स्तर के नियंत्रण का प्रभाव पेशा सम्बन्धी तनावों को उत्पन्न करता है और हृदय रोग से भी सम्बन्धित है। तनाव सम्बन्धी बीमारी को कसौटी मानते हुए यह पाया गया कि प्रयोगशाला का तकनीशियन, निर्माण में कार्यरण कर्मचारी, पेंटर, सेक्रेटरी का कार्य करने वाले फार्म पर कार्य करने वाले कर्मचारी, वेटर आदि के कार्य सर्वाधिक तनावपूर्ण होते हैं।

14.7 तनाव के परिणाम

ऊपर तनाव उत्पन्न करने वाले विभिन्न प्रकार के स्ट्रेशर्स एवं तनावोन्मुख व्यक्तित्व के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया और आपने देखा कि एक ही स्ट्रेशर हर व्यक्ति में समान तीव्रता का तनाव उत्पन्न नहीं करता, परन्तु इतना तो है ही कि जीवन की नकारात्मक घटनाएं सकारात्मक घटनाओं की तुलना में अधिक तनाव उत्पन्न करने की क्षमता रखती हैं, साथ–ही जिन घटनाओं का पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता वे अपेक्षाकृत अधिक तनाव उत्पन्न करने वाली होती हैं। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि स्पष्ट घटनाओं की तुलना में अस्पष्ट घटनाएं अधिक तनाव उत्पन्न करने वाली होती हैं। यही कारण है कि जो अधिकारी अपने कर्मचारी की भूमिका स्पष्ट नहीं करते उनके अधीनस्थ कार्यरत कर्मचारी ''भूमिका अस्पष्टता'' का शिकार होते हैं और जल्द तनावग्रस्त हो जाते हैं।

इन सबके अतिरिक्त तनाव का सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के शारीरिक रोगों से भी है जो तनाव के दुष्परिणाम के रूप में चिन्हित किए गये हैं। तनाव का सीधा प्रभाव व्यक्ति के

स्नायुसंस्थान एवं प्रजाहित का–संस्थान तथा प्रतिरक्षा–संस्थान पर पड़ते देखा गया है। इसके कारण सिरदर्द, हृदय संवहनी रोग, संक्रामक रोग, रक्तचाप, डायबिटीज, दमा, गठिया व संधिशोध होते पाया गया है। तनाव मदिरापान, धूम्रपान, नशीली औषधि सेवन तथा अनिद्रा की समस्याओं से भी सम्बन्धित है। इसके कारण नकारात्मक प्रभावकता में वृद्धि, अवसाद रोग, चिन्ता विकार आदि के पनपते भी देखा गया है।

14.8 तनाव प्रबन्धन या समायोजी नीतियां

ऊपर तनाव एवं उससे उत्पन्न परेशानियों की चर्चा की गई। आपने यह भी जानकारी हासिल की कि तनाव का मूल्यांकन करने में वैयक्तिक भिन्नता पायी जाती है। कुछ व्यक्ति मन के प्रतिकूल बात होने पर चिल्लाने लगते हैं तो कुछ अन्य काम बिगड़ने पर भी उसका सामना धैर्यपूर्वक करते हैं। किसी भी घटना का मूल्यांकन व्यक्ति अपने लिए सकारात्मक, निष्पक्ष या नकारात्मक रूप में कर सकता है तथा नकारात्मक समझी जाने वाली घटना का पूनर्मूल्यांकन भी व्यक्ति कर सकता है ताकि भविष्य में उस घटना से होने वाली क्षति या हानि से बचा जा सके। इसे ही तनाव प्रबन्धन या समायोजी नीतियां कहते हैं जिसे स्पष्ट करते हुए लैजारस एवं लॉनियर (1978) ने कहा है कि ''समोयोजी नीतियां या तनाव से सामना करना या निपटना आन्तरिक या बाह्य मांगों के प्रबन्धन की एक प्रक्रिया है जो व्यक्ति पर मार डालने या उसके साधनों की अधिकता के रूप में मूल्यांकित की जाती है।

लैजारस ने तनाव से सामना करने को समस्या–केन्द्रित और संवेग–केन्द्रित रूपों में वर्णित किया है। समस्या–केन्द्रित सामना व्यवहार में ज्ञानात्मक युक्तियों का प्रयोग कर व्यक्ति अपनी परेशानियों का सामना करता है और उन्हें दूर करने का प्रयास करता है। परीक्षा के समय उत्पन्न तनाव का सामना परीक्षार्थी अपने शिक्षक से मिलकर, पाठ्यक्रम, का अध्ययन–मनन कर, मित्रों से चर्चा करके करता है। संवेग–केन्द्रित सामना व्यवहार में व्यक्ति सुरक्षात्मक मूल्यांकन का उपयोग करता है और संवेगात्मक ढंग से अनुक्रिया देता है।

सिगमन फ्रायड तथा अन्ना फ्रायड ने तनाव प्रबन्धन में सुरक्षा रचना या बचाव प्रक्रम के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि अनेक मनोरचनाएं जिन्हें अहंप्रतिरक्षा रचना भी कहते हैं व्यक्ति को तनाव एवं चिन्ता से बचाकर उसके व्यक्तित्व को विघटित होने से रोकती है। दमन, उदानीकरण प्रतिगमन, यौक्तीकरण, विस्थापन, प्रक्षेपण आदि महत्वपूर्ण मनोरचनाएं हैं।

सामना करने या तनाव से निपटने का प्रक्रम व्यक्ति के ऐच्छिक नियंत्रण में होता है तथा यह चेतन स्तर पर कार्य करता है। तनावपूर्ण परिस्थिति के स्वरूप के अनुकूल व्यक्ति विभिन्न तरह के समायोजी नीतियों का अनुसरण करता है, जैसे–कभी परिहार तथा

अस्वीकरण तो कभी धूम्रपान और मदिरापान या दोस्तों से सांवेगिक समर्थन प्राप्त करना।

आये दिन तनाव से निपटने के लिए सकारात्मक चिन्तन, आत्म–प्रभावकता, जैव प्रतिपुष्टि, ताप जैव प्रतिपुष्टि, मनन तथा शिथिलीकरण आदि विधियों को प्रयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक ज्ञानात्मक थिरैपी, तनावटीका विधि, संवेगों के प्रकाशन आदि का भी सहारा लेते हैं।

तनावों के प्रबंधन में सामाजिक सहायता, जिसमें मूल्यांकन सहायता, वास्तविक सहायता, सूचना सहायता, संवेगात्मक सहायता आदि रूपों को उपयोग में लाया जाता है, की महत्वपूर्ण भूमिका पायी गयी है।

अभ्यास प्रश्न

1. सामान्य अनुकूलन सिन्ड्रोम की अवधारणा निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने प्रस्तुत की?

(अ) हैन्स सेल्ये

(ब) एस. ई. रॉबफॉल

(स) आर. एस. लैजारस

(द) इनमें से कोई नहीं

2. निम्नलिखित में से कौन–सी घटनाएं अधिक तनावपूर्ण होती हैं?

(अ) नियंत्रित

(ब) पूर्वानुमानित की जा सकने वाली

(स) नियंत्रित तथा पूर्वानुमानित की जा सकने वाली

(द) अनियंत्रित या जिन घटनाओं का पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता

14.9 सारांश

तनाव एक नकारात्मक संवेगात्मक अनुभव है जो कि पूर्वानुमानिक, जैव–रासायनिक, दैहिक, संज्ञानात्मक एवं व्यवहारात्मक परिवर्तनों के साथ संलग्न होता है तथा जो या तो तनावपूर्ण घटनाओं को परिवर्तित करने की ओर निर्देशित होते हैं या इसके प्रभावों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की ओर।

तनाव एक उत्तेजक की भाँति कार्य करता है या एक प्रत्युत्तर की भाँति या फिर इन दोनों की अन्तःक्रिया की भाँति।

हैन्स सेल्ये ने सामान्य अनुकूलन सिन्ड्रोम की भी अवधारणा प्रस्तुत की जिसके तीन चरण होते हैं–

1. अलार्म या खतरे की घंटी
2. प्रतिरोध तथा
3. थकावट या निःशेषण

सेल्ये ने तनाव की उत्पत्ति में जहाँ स्ट्रेशर्स यानी तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के महत्व पर प्रकाश डाला, वहीं लैजारस ने तनाव की उत्पत्ति में व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक स्थिति के प्रत्यक्षीकरण पर बल डाला।

तनाव के कारण तथा परिमाण के सम्बन्ध में जो अध्ययन हुए हैं उनसे स्पष्ट हुआ है कि तनाव के निम्नलिखित कारण हैं– कार्यभार की अधिकता, अन्तर्द्वन्द्व, कुंठा, दिन–प्रतिदिन के झगड़े–झंझट, शोरगुल, भीड़भाड़, प्रदूषण, शहरी दबाव आदि।

तनाव के परिणामस्वरूप सिरदर्द, हृदय संवहनी रोग, रक्तचाप, मधुमेह, प्रति क्रियाशीलता, दमा, गठिया, एवं संधिशोध आदि बीमारियां पनपते देखा गया है।

तनाव का सामना करने के लिए सकारात्मक चिन्तन, आत्म–प्रभावकता, जैव–प्रति पुष्टि, ताप जैव–प्रतिपुष्टि, मनन एवं शिथिलीकरण आदि का सहारा लिया जाता है, साथ–ही, सामाजिक सहायता का उपयोग भी लाभप्रद होता है।

14.10 शब्दावली

जनसंख्या घनत्व : एक ऐसी भौतिक स्थिति जिसमें एक बड़ी जनसंख्या सीमित स्थान में रहती है।

नकारात्मक प्रभावकता : दुःख एवं असंतोष को अनेक दशाओं में अनुभव करने की एक सामान्य प्रवृति ।

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तनाव की परिभाषा दीजिए एवं इसकी प्रकृति का विवेचन कीजिए
2. तनाव के सम्बन्ध में हैन्स सेल्ये एवं लैजारस के मॉडेल की तुलना करें।
3. तनाव के मुख्य कारण क्या हैं? इसके परिणाम पर प्रकाश डालें।

4. तनाव से कैसे निपटा जा सकता है? तनाव के प्रबन्धन में सकारात्मक चिन्तन का महत्व बतायें।

14.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Lazarus, R.s. & Folkman, S. – Stress, Apprasial and Coping, N.Y. : Springer.
2. Hans Selye – Stress without Distress. Philadelphia : Lippin Cutt.
3. माथुर एवं माथुर–स्वास्थ्य मनोविज्ञान

14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अ
2. द

इकाई – 15 : हृदय संवहनी रोग, कैंसर, एच.आई.वी. / एड्स : कारण एवं निवारण

संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 हृदय संवहनी रोग

15.4 हृदय संवहनी रोग के कारण

15.5 हृदय संवहनी रोग से बचाव के उपाय

15.6 कैंसर का स्वरूप

15.7 कैंसर के प्रकार

15.8 कैंसर के उपचार

15.9 एड्स क्या है?

15.10 एड्स के लक्षण

15.11 एड्स के कारण

15.12 एड्स से बचाव के उपाय

15.13 सारांश

15.14 पारिभाषिक शब्दावली

15.15 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

15.16 संदर्भ–ग्रन्थ सूची

15.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने तनाव की उत्पत्ति एवं उससे सामना करने वाली रणनीतियों का अध्ययन किया। तनाव से उत्पन्न होने वाली बीमारियों एवं परेशानियों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की।

प्रस्तुत इकाई में अब आप कुछ ऐसे रोगों का अध्ययन करेंगे जो न केवल खतरनाक होते हैं, बल्कि व्यक्ति पर मनोवैज्ञानिक दबाव भी बनाते हैं और व्यक्ति के समायोजन स्तर को भी प्रभावित करते हैं। स्वास्थ्य मनोविज्ञान के अन्तर्गत कतिपय ऐसी बीमारियों के विषय में जानकारी रखना आवश्यक है ताकि व्यक्ति में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता एवं चेतनता में बृद्धि हो सके। यहाँ आपको हृदय संवहनी रोग, कैंसर एवं एच.आई.वी./एड्स के बारे में विशेष जानकारी दी जायेगी।

इस इकाई का अध्ययन करने से आपको हृदय रोग, कैंसर एवं एड्स के लक्षणों, कारणों एवं बचाव के उपायों का ज्ञान प्राप्त होगा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आप स्वयं को अति आधुनिक महसूस करेंगे।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि–

1. हृदय संवहनी रोगों के लक्षणों को समझ सकें।
2. हृदय रोग के कारणों का उल्लेख कर सकें।
3. हृदय रोग से बचाव का उपाय सुझा सकें।
4. कैंसर रोग के प्रकारों पर प्रकाश डाल सकें।
5. एड्स के कारणों पर चर्चा कर सकें तथा
6. एड्स से बचने के उपायों को रेखांकित कर सकें।

15.3 हृदय संवहनी रोग

हृदय एक पम्प की भांति कार्य करता है तथा सम्पूर्ण शरीर में रक्त का संचार करता है। इसके बायें भाग में बायां ऐट्रीयम या आलिन्द तथा निलय या वेन्ट्रिकल होते हैं। बायां वेन्ट्रिकल फेफड़ों से रक्त लेकर मुख्य धमनी के माध्यम से हृदय तक पहुंचता है। यह रक्त छोटी नलिकाओं, धमनी, धमनिकाओं तथा कोशिकाओं से गुजरकर कोश टिश्शू में पहुंच जाता है। कोशों को ऑक्सीजन एवं पोषक तत्व प्रदान कर तथा उसके व्यर्थ पदार्थों को लेकर रक्त पुनः हृदय के दायें ऐट्रीयम तथा दायें वेन्ट्रिकल में लौट जाता है। यहाँ से रक्त फेफड़ों में फुफ्फल शिराओं द्वारा वापिस कर दिया जाता है। रक्त संवहन का कार्य हृदय सिकुड़न एवं शिथिलीकरण की नियमित क्रियाओं द्वारा करता रहता है जिसे हृदय चक्र कहा जाता है। इस चक्र के दो चरण होते हैं –सिस्टोल एवं डायस्टोल। सिस्टोल की प्रक्रिया में

रक्त हृदय से बाहर की ओर पम्प किया जाता है जिससे रक्त का दबाव रक्त नलिकाओं में बढ़ जाता है जबकि डायस्टोल की प्रक्रिया में मांस–पेशियों में शिथलीकरण होता है जिससे रक्चचाप गिर जाता है और रक्त हृदय में ले जाया जाता है।

हृदय, रक्त नलिकाआएं एवं रक्त तीनों मिलकर हृदय संवहनी संस्थान का निर्माण करते हैं। यह संस्थान शरीर की परिवहन प्रणाली का कार्य करता है। रक्त ऑक्सीजन को फेफड़ों से टिश्शू में ले जाता है और कार्बन डाइआक्साइड को टिश्शू से फेफड़ों में ले जाता है ताकि यह श्वास के साथ बाहर निकल जाये। यह पोषक तत्वों को भी पाचन मार्ग से व्यक्ति के कोशों तक ले जाता है ताकि उन पदार्थों को निकाल ले जिनकी उन्हें अपनी बृद्धि एवं शक्ति के लिए आवश्यकता है। रक्त बेकार पदार्थों को कोशों से गुर्दों को ले जाता है जहां से वह मूत्र द्वारा निष्कासित कर दिया जाता है।

हृदय से अन्दर और बाहर रक्त का आना–जाना बॉल्बों द्वारा नियंत्रित होता है। यह बॉल्ब प्रत्येक वेंट्रिकल के अन्दर और बाहर जाने वाले मार्ग पर लगे होते हैं। इन वॉल्वों के खुलने और बन्द होने से हृदय की ध्वनि सुनाई पड़ती है। हृदय की आवाजें यह सम्भव बनाती है कि हृदय चक्र के समय क्रम से यह पता चल जाये कि कितनी तीव्र या धमी गति से रक्त हृदय से अन्दर और बाहर पम्प हो रहा है।

हृदय संवहनी रोग मूलतः हृदय के वाल्वों के खुलने व बन्द होने में असफल हो जाने से रक्त संवहन में उत्पन्न बाधा के कारण होता है। यह रोग मुख्यतः दो प्रकार का होता है –

1. सी.ए.डी. (कोरोनरी आर्टरी डिजीज)
2. सी.एच.डी. (रोरोनरी हार्ट डिजीज)

कोरोनरी शब्द वास्तव में लैटिन के ''कोरोना'' से बना है जिसका मतलब ''क्राउन'' होता है तथा यह हृदय के चारों ओर से क्राउन की तरह घेरे रहता है।

सी.ए.डी. जिसे ''परिहृद धमनी रोग'' या ''कोरोनरी आर्टरी डिजीज''कहते हैं, दिल की धमिनयों में रक्त प्रवाह रूकने से होता है तथा आजकल इसे ऐंजिमोप्लास्टी द्वारा सामान्यतः ठीक कर लिया जाता है।

सी.एच.डी. को ''परिहृद धमनी रोग'' या ''कोरोनरी हार्ट डिजीज'' कहते हैं जिसमें परिहृद धमनियां तंग हो जाती हैं जिसके कारण आक्सीजन एवं अन्य पोषण तत्वों का हृदय तक पहुंचना अंशतः या पूर्णतः बंद हो जाता है।

दरअसल, परिहृद धमनियों का कार्य हृदय को ऑक्सीजन एवं रक्त पहुंचाना है। इसलिए आधुनिक चिकित्साशास्त्र में सी.ए.डी. और सी.एच.डी. में कोई अन्तर न बताकर दोनों को एक ही माना गया है और इसके प्रकट होने के कारण मूलतः कोलेस्ट्रॉल पदार्थों का धमनियों में जमा होकर उससे संचालित रक्त प्रवाह को बाधित करना बताया गया है। इसे एथिरोस्क्लेरोसिस की संज्ञा भी दी जाती है। सी.ए.डी. और सी.एच.डी. को इस्केमिक हृदय रोग भी कहा जाता है जिसमें धमनियों के आन्तरिक दीवारों पर कोलेस्ट्रोल की परत जम जाती है और परिणामतः रक्त का हृदय तक पहुंचना अंशतः या पूर्णतः बाधित हो जाता है और व्यक्ति को दिल का दौरा पड़ जाता है।

15.4 हृदय संवहनी रोग के कारण

आधुनिक चिकित्साशास्त्र में हृदय संवहनी रोग की उत्पत्ति में दो तत्वों को महत्वपूर्ण माना गया है – सख्त तत्व एवं मुलायम तत्व।

सख्त तत्व के अन्तर्गत आने वाले महत्वपूर्ण कारक हैं –

1. उक्त रक्तचाप
2. मधुमेह
3. धूम्रपान
4. रक्त में कोलेस्ट्रोल की अधिकता
5. आनुवंशिकता आदि

मुलायम तत्व के अन्तर्गत निम्नलिखित कारक हृदय रोग या दिल के दौरे के लिए जिम्मेदार होते हैं –

1. जरूरत से ज्यादा तनाव
2. अनावश्यक क्रोध
3. मोटापा
4. शारीरिक श्रम का अभाव
5. मदिरापान

इसके अतिरिक्त, कुछ मनोवैज्ञानिक एवं चिकित्सीय शोधों से पता चलता है कि टाइप–ए प्रकार के लोग टाइप–बी प्रकार के लोगों की तुलना में हृदय रोग के शिकार अधिक होते हैं क्योंकि इनमें हृदय संवहनी अति प्रतिक्रियात्मकता पायी जाती है।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि टाइप–ए व्यवहार सिन्ड्रोम के सभी घटक हृदय रोग की संभावना को बढ़ाने वाले नहीं होते। इन लोगों ने एक विशेष प्रकार की शत्रुता को इसके लिए जिम्मेदार माना है जिसे चिड़चिड़ी शत्रुता या सिनिकल होस्टीलिटी कहते हैं। चिड़चिड़ी शत्रुता विशेषता होती है – शंकाग्रस्तता, बार–बार क्रोधित होना, प्रतिरोधी स्वभाव एवं दूसरों पर भरोसा न करना।

नकारात्मक संवेगात्मक दशाएं भी हृदय रोग की उत्पत्ति में सहायक होती हैं क्योंकि नकारात्मक संवेग व्यक्ति में अवसाद उत्पन्न करता है और अवसाद तथा हृदय रोग में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि क्रोध, शत्रुता, आक्रामकता, चिन्ता आदि कोरोनरी हृदय रोग से सीधे सम्बन्धित है।

15.5 हृदय संवहनी रोग से बचाव के उपाय

हृदय संवहनी रोग मुख्यतः आधुनिक लाइफ स्टाइल से उत्पन्न होता है जिसमें बढ़ती महत्वाकांक्षाएं, अधिक–से–अधिक पैसा कमाने की धुन, फास्ट–फूड, देर रात तक जगना आदि महत्वर्णू है। अतः इनसे बचने के लिए निम्नलिखित उपायों पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. वजन सही रखना क्योंकि मोटापा हार्ट अटैक को न्योता देता है।
2. कोलेस्ट्रोल को सही रखना।
3. प्रतिबल एवं तनाव से दूर रहने की कोशिश करना।
4. चिकनाई व वसा प्रधान भोजन से बचाना तथा फास्ट–फूड से परहेज रखना।
5. धूम्रपान, मदिरापान आदि से बचना।
6. जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना आदि।

हृदय धमनी रोग हो जाने की स्थिति में भी पुनः स्थापना हेतु कुछ परेहजों एवं उपचारों पर ध्यान रखना आवश्यक होता है। इसमें रोगी को रोग सम्बन्धी शिक्षा एवं हस्तक्षेप का एक प्रोग्राम बनाया जाता है और रोगी से उसका पालन करने को कहा जाता है। रोगी के पुनःस्थापन के निम्नलिखित उद्दश्य होते हैं –

1. लक्षणों से राहत दिलाना।
2. बीमारी की प्रचण्डता में कमी लाना।
3. बीमारी और बढ़ जाने से रोकना एवं
4. मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक समायोजन को बढ़ावा देना।

एक शष्ट हृदयी पुनःस्थापन कार्यक्रम के तत्वों में व्यायाम चिकित्सा के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक परामर्श भी शामिल होते हैं। इसके अन्तर्गत रोगी को खान–पान सम्बन्धी परामर्श दिया जाता है तथा हृदय धमनी रोग के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाती है।

रोगी को उन दवाइयों से भी परिचित कराया जाता है जो उसे रक्तचाप एवं हृदय में दर्द को नियंत्रित करने के लिए लेनी होती है। जैसे–बीटा–एडरेनर्जिक या बीटा–ब्लॉकिंग एजेंट का सेन। ऐसपिरिन का सेवन भी दिल का दौरा रोकने में कारगर बताया गया है।

अभ्यास प्रश्न – क

1. हृदय चक्र में पाये जाते हैं?

(अ) सिस्टोल (ब) डायस्टोल

(स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

2. हृदय संवहनी रोग की उत्पत्ति में इनमें से कौन–सा तत्व सख्त तत्व की श्रेणी में आता है?

(अ) उच्च रक्तचाप (ब) तनाव

(स) क्रोध (द) इनमें से कोई नहीं

15.6 कैंसर का स्वरूप

कैंसर उन असामान्य कोशिकाओं के कारण होता है जो तेजी से बढ़ती है। शरीर के लिए यह सामान्य बात है कि वह पुरानी कोशिकाओं को नयी कोशिकाओं से बदले, पर कैंसर की कोशिकाएं बहुत तेजी से बढ़ती हैं।

कुछ कैंसर कोशिकाएं बृद्धियां उत्पन्न कर सकती हैं जिन्हें अर्बुद (ट्यूमर) कहा जाता है। सभी ट्यूमर आकार में बढ़ते हैं पर कुछ तेजी से बढ़ते हैं, जबकि अन्य धीमी गति से बढ़ते हैं।

कई बार ट्यूमर कैंसरकारी नहीं होते हैं इन्हें अहानिकर ट्यूमर कहा जाता है। वे काफी हद तक स्वस्थ ऊतकों की कोशिकाओं जैसी कोशिकाओं से बने होते हैं। इस प्रकार का अर्बुद एक ही जगह स्थिर रहता है और वह स्वस्थ ऊतकों और अंगों में नहीं फैलता है।

कैंसर के अर्बुदों को हानिकारक ट्यूमर भी कहा जाता है। इन अर्बुदों से कैंसर रक्त और लसिका प्रणालियों के माध्यम से शरीर के अन्य अंगों में फैल जाता है।

जब कैंसर फैलता है तो इसे रोग व्याप्ति कहा जाता है। कैंसर की कोशिकाऐं ट्यूमर, जिसे प्राथमिक जगह कहा जाता है, से शरीर के अन्य भागों में फैल जाती है।

कैंसर के लक्षण ट्यूमर के प्रकार और स्थान पर निर्भर होते हैं। यह भी संभव है कि कुछ कैंसरों में तब तक कोई लक्षण नहीं हो, जब तक कि ट्यूमर बड़ा न हो जाए।

आम लक्षणों में निम्नलिखित लक्षण सम्मिलित हैं –

1. अत्यधिक थकान अनुभव करना।
2. अज्ञात कारण से वजन में कमी होना।
3. बुखार, कंपकपी या रात में पसीना आना।
4. भूख में कमी
5. शारीरिक कष्ट या दर्द
6. खांसी, सांस फूलना या सीने में दर्द
7. हैजा, कब्ज या मल में रक्त

15.7 कैंसर के प्रकार

विकासात्मक कैंसर के कई प्रकार हैं –

1. कार्सिनोमा – कैंसर का सबसे आम प्रकार है। फेफड़े, आंत, स्तन और डिब ग्रंथियों के कैंसर आमतौर पर इस प्रकार के कैंसर होते हैं।

2. सारकोमा – अस्थि, उपास्थि, वसा और मांसपेशी में पाया जाता है।

3. लिम्फोमा – शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली के लिम्फ नोडों में प्रारम्भ होता है। इनमें हॉजकिन्स और गैस–हॉजकिन्स लिम्फोमा सम्मिलित होते हैं।

4. ल्यूकेमिया – उन रक्त कोशिकाओं में आरम्भ होता है जिनका अस्थि मज्जा में विकास होता है और जो रक्त प्रवाह में बड़ी संख्या में पायी जाती है।

15.8 कैंसर के उपचार

चिकित्सक निम्नलिखित बातों के आधार पर ही यह तय करता है कि मरीज को किस प्रकार की चिकित्सा की आवश्यकता है –

1. कैंसर का प्रकार।
2. कैंसर कितनी तेजी से बढ़ रहा है।
3. क्या केंसर शरीर के अन्य अंगों में फैल गया है।
4. रोगी की आयु और समग्रता में उसका स्वास्थ्य।

कैंसर के सबसे आम उपचार निम्नलिखित है –

1. ट्यूमर और इसके पास के ऊतक को हटाने के लिए शल्य चिकित्सा (सर्जरी)
2. ट्यूमर और कैंसर की कोशिकाओं को सिकोड़ने या नष्ट करने के लिए नियंत्रित मात्राओं में विकिरण (रेडियेशन)
3. कैंसर की कोशिकाओं की वृद्धि को धीमा करने या नष्ट करने के लिए रसायन चिकित्सा दवा।
4. दुष्प्रभावों का उपचार करने और रोगी को बेहतर रूप से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने में सहायता के लिए अन्य दवायें।

इसके अतिरक्त यदि पूर्व से ही व्यक्ति सजग रहे और निम्नलिखित सावधानियों पर ध्यान दे तो कैंसर से बचा जा सकता है।

1. धूम्रपान न करना, तम्बाकू का उपयोग न करना।
2. बाहर जाते समय अपनी त्वचा की रक्षा के लिए सन स्क्रीन टोपी और कपड़ों का उपयोग करना।
3. अल्कोहल ज्यादा मात्रा में न लेना।
4. अधिक वसा वाले भोजन, विशेष रूप से पशुओं के मांस का कम सेवन करना।
5. फल, सब्जियां और अधिक रेशे वाले आहार का अधिक मात्रा में सेवन करना।
6. शारीरिक रूप से सक्रिय रहना।
7. अपने चिकित्सक से प्रतिवर्ष मिलना। कैंसर की जाँच से उसका आरम्भिक और सबसे अधिक उपचार योग्य अवस्था में पता लग सकता है।

अभ्यास प्रश्न – ख

1. कैंसर रोग में
   - (अ) सामान्य कोशिकाओं का तेजी से विकास होता है।
   - (ब) असामान्य कोशिकाओं का तेजी से विकास होता है।
   - (स) असामान्य कोशिकाओं का धीमी गति से विकास होता है।
   - (द) इनमें से कोई नहीं।
2. ल्यूकेमिया है –
   - (अ) फेफड़े का कैंसर
   - (ब) लिवर कैंसर
   - (स) स्तन कैंसर
   - (द) ब्लड कैंसर

15.9 एड्स क्या है?

एड्स मनुष्यों को होने वाली एक बीमारी है जो कैंसर से भी अधिक खतरनाक होती है। कैंसर का रोगी तो इलाज के द्वारा 10–20 वर्षों तक भी जिन्दा रह सकता है, लेकिन एड्स रोग से ग्रसित व्यक्ति प्रायः 1–3 वर्षों के बीच इस दुनिया से चला जाता है। इसलिए इसे महारोग कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज एड्स इस शताब्दी की भयंकरतम बीमारी बन चुकी है।

'एड्स' शब्द अंग्रेजी के चार अक्षरों ए.आई.डी.एस. से मिलकर बना है; जिसका पूरा नाम है – एक्वायर्ड इम्यून डिफिशिएंसी सिंड्रोम। अक्सर इसे 'एक्वायर्ड इम्यूनो डिफिशिएंसी सिंड्रोम' भी कहते हैं।

इसे सरल हिन्दी भाषा में कहें तो यह ऐसे लक्षणों वाली बीमारी है, जिसमें मनुष्य की रोग–प्रतिरोधक शक्ति चली जाती है। यह कोई साधारण–सी बात नहीं है क्योंकि रोग–प्रतिरोधक क्षमता नष्ट हो जाने से शरीर कई तरह के संक्रमणों से ग्रस्त हो जाता है। दवाइयाँ अपना प्रभाव नहीं दिखा पातीं और एक छोटा सा रोग बड़ा रूप लेकर मरीज को मौत की नींद सुला देता है। यदि रोगी को दस्त लगने शुरू होते हैं तो महीनों लगे रहते हैं, बुखार या निमोनिया होता है तो वह भी ठीक नहीं हो पाता। यहां तक कि प्रतिरक्षा के अभाव में मरीज की त्वचा या रक्तवाहिकाओं की दीवारों का कैंसर भी हो जाता है। रोगी का वजन गिरता जाता है। ऊपर से परिवार और समाज की उपेक्षा तथा तिरस्कार उसे मानसिक रूप से भी तोड़ देता है।

संक्षेप में, एड्स को इस तरह परिभाषित कर सकते हैं – 'एड्स विषाणुजन्य' ऐसे रोगों का समूह है, जिसमें रोग–प्रतिरोधक क्षमता नष्ट होने के कारण कई लक्षण; जैसे–वजन कम होना, दस्त लगना, बुखार, लसिका ग्रन्थियों में सूजन आना इत्यादि उत्पन्न होने के साथ ही निमोनिया, टी.बी. जैसे अवसरवादी रोग भी हो जाते हैं।

वस्तुतः एड्स एक रोग न होकर रोगों का समूह है, जो अतिसूक्ष्म जैविक इकाई 'विषाणु' द्वारा उत्पन्न होता है। यह विषाणु रक्त कोशिकाओं पर आक्रमण करके शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता को नष्ट कर देता है। इस विषाणु को एच.आई.वी. (ह्यूमन इम्यूनो–डिफिसिएन्सी वायरस) भी कहते हैं।

एड्स एक संक्रामक बीमारी बताया गया है। संक्रामक बीमारी का अर्थ है, बीमारी का सम्पर्क द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में पहुंच जाना। एड्स संक्रामक रोग तो है, लेकिन छूत की बीमारी कतई नहीं है यानि यह रोगी के पास जाने, खांसने–खंखरने अथवा उसके

बरतनों के प्रयोग से नहीं होती। यह रोग मच्छर—मक्खी तथा अन्य कीड़ों द्वारा भी नहीं होता। एड्स विषाणु के संक्रमण के लिए विषाणु का स्वस्थ व्यक्ति के रक्त से सीधा सम्पर्क जरूरी है। उदाहरणार्थ, यदि एड्स विषाणु से संक्रमित रोगी का रक्त भूल से किसी अन्य मरीज को चढ़ा दिया जाए तो वह भी एड्स रोग के विषाणु से संक्रमित हो जाएगा। इसी प्रकार यदि एक स्वस्थ व्यक्ति एड्स रोगी के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करे तो उसे भी यह संक्रमण हो सकता है, क्योंकि रक्त के अलावा वीर्य एवं योनि—स्राव में भी एड्स के विषाणु मौजूद रहते हैं। यौन—क्रिया के दौरान श्लेष्मा झिल्ली के कटने—फटने से विषाणु रक्त में जा सकते हैं। और यह संक्रमण स्वस्थ व्यक्ति को भी हो सकता है। एड्स विषाणु से दूषित खून वाले इंजेक्शनों से भी रोग लग सकता है। इस तरह एड्स संक्रामक रोग है।

एड्स विषाणु जब तक रक्त में न पहुंचे तब तक रोग नहीं हो सकता। रोगी के उपयोग के वस्त्रों अथवा उसके जूठे बर्तनों का इस्तेमाल करने से, हाथ मिलाने या गले मिलने से या खांसने से यह नहीं फैलता।

इस तरह यह स्पष्ट है कि जब तक एड्स विषाणु खून के सम्पर्क में न आएं, सक्रमण नहीं होता। यहां तक कि रोगी के साथ रहने से भी नहीं होता, लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि संक्रमित रोगी से सावधान ही न रहा जाए। उसके साथ यौन सम्पर्क करने से रोग लग सकता है। इसके द्वारा उपयोग में लाए ब्लैड, इंजेक्शन इत्यादि से भी रोग लगने की सम्भावना रहती है; इसलिए एड्स रोगी से कुछ मामलों में सावधानी बरतना आवश्यक है।

एड्स विषाणुयुक्त रक्त अथवा रक्त उत्पाद देने से भी रोग लग सकता है। यद्यपि एच. आई.वी. खून के अलावा रक्त उत्पादन, वीर्य, यौनि—स्राव, मां के दूध, आंसू, पसीना, मल—मूत्र इत्यादि में भी पाए गए हैं। लेकिन प्रमुख रूप से संक्रमित रक्त, वीर्य और योनि—स्राव द्वारा ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में पहुंचता है। उदाहरणार्थ, यदि विषाणुयुक्त रक्त, वीर्य या योनि—स्राव किसी स्वस्थ व्यक्ति के घाव अथवा कटे हुए स्थान पर लग जाए तो रोग होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके अलावा अस्पतालों, प्रसूतिका—गृहों, जांच केन्द्रों एवं रक्त बैंकों में जीवाणुरहित करने वाली प्रक्रियाओं को ठीक से न अपनाने से भी यह रोग एक व्यक्ति से अनेक व्यक्तियों में पहुंच जाता है।

अमर्यादित यौन सम्बन्धों की इस रोग में प्रमुख भूमिका है। हमारे यहां वेश्यावृत्ति करने वाली महिलाएं भी रोग को फैलाने में प्रमुख भूमिका निभा रही है। सर्वेक्षणों द्वारा यह साबित हो सकता है कि समलिंगी और विषलिंगी दोनों तरह के यौन सम्बन्धों से एड्स होने की सम्भावना लगभग बराबर होती है।

कुछ विशेष कार्य करने वाले लोगों में एड्स संक्रमण की सम्भावना ज्यादा होती है। इन व्यक्तियों को अधिक खतरे वाले समूहों में रखा जाता है। ये अधिक खतरेवाले समूह एड्स फैलाने के मामले में ज्यादा खतरनाक साबित होते हैं। स्वयं ऐसे लोगों को रोग होने का खतरा अन्य सामान्य लोगों की अपेक्षा कई गुना अधिक होता है। अधिक खतरे वाले समूहों के अन्तर्गत वेश्याएं एवं कॉल गर्ल्स, इंजेक्शनों द्वारा नशीले द्रव्य लेने वाले लोग, व्यावसायिक रक्तदाता, बार–बार रक्त या रक्त उत्पाद लेने वाले रोगी; जैसे– थेलेसीमिया अथवा हीमोफीलिया के मरीज एवं यौन रोगी आते हैं। इसके अलावा समलिंगी यौन सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों तथा ट्रक चालकों को भी एड्स संक्रमण की सम्भावना अधिक होती है। इसलिए इन्हें भी अधिक खतरे वाले समूहों में रखा जाता है।

चिकित्सकों विशेषकर शल्य–क्रिया करने वाले शल्य चिकित्सकों तथा अस्पतालों के समस्त स्वास्थ्कर्मी; जैसे नर्स, कम्पाउण्डर, प्रयोगशालाओं में काम करने वाले टेक्नीशियन इत्यादि को एड्स रोग होने का खतरा सामान्य लोगों से अधिक है। इसलिए शल्य चिकित्सकों, दंत चिकित्सकों एवं रोगियों की देखभाल करने वाले कर्मचारियों को भी खतरे वाले समूह में माना जाता है।

15.10 एड्स के लक्षण

वैसे एड्स अपने–आपमें कोई बीमारी नहीं है, बल्कि यह बीमारियों के लक्षणों का समूह है। इसके महत्वपूर्ण लक्षण हैं –

1. शरीर का वजन घटना
2. बुखार का शरीर में विद्यमान रहना।
3. लसिका ग्रन्थियों में सूजन आना।
4. दस्त का ठीक न होना।
5. निमोनिया, टी.बी. जैसे रोगों का आक्रमण आदि।

इसके अतिरिक्त, शरीर में कोई भी रोग प्रवेश करने पर वह ठीक न होकर जानलेवा हो जाता है क्योंकि शरीर की प्रतिरोधक क्षमता समाप्त हो चुकी होती है।

15.11 एड्स के कारण

प्रमुख रूप से एड्स निम्न माध्यमों से फैल सकता है –

1. **प्राकृतिक एवं प्राकृतिक यौन संसर्गों द्वारा** – भारत में एड्स संक्रमण यौन सम्बन्धों

द्वारा ही सबसे अधिक फैला है। अब तक पाए गए एड्स मरीजों में से 71 प्रतिशत मरीजों को एड्स इन्हीं माध्यमों से मिला। इनमें अधिकतर मामले विषमलिंगी यौन सम्बन्धों के तथा कुछ मामलें समलिंगी अथवा अप्राकृतिक यौन संसर्ग के थे। जबकि अमेरिका में समलैंगिक एड्स मरीजों का प्रतिशत काफी अधिक है। यहाँ तक कि शुरू में वहाँ यह समझा जाता रहा कि यह रोग केवल इसी तरह के यौनाचरण करने वालों की बीमारी हैऋ लेकिन बाद में यह मानना पड़ा कि विषमलिंगी सम्बन्धी भी रोग फैलाने में लगभग उतने ही सहायक हैं जितने पुरूषों के समलिंगी सम्बन्ध।

हमारे देश में एड्स संक्रमण विषमलिंगी यौन सम्बन्ध द्वारा ही अधिक फैला है। मार्च 1994 तक भारत में सरकारी तौर पर एड्स संक्रमित पन्द्रह हजार सत्रह मरीज पाए गए थे। उनमें छह हजार चार सौ दो रोगी (लगभग 44 प्रतिशत) इस तरह के यौन सम्बन्धों द्वारा रोगग्रस्त हुए हैं। वेश्याओं के पास जाने वाले व्यक्ति, ऐसे लोग, जिनके एक से अधिक लोग यौन साथी हैं तथा यौन रोगियों को एड्स विषाणु के संक्रमण की सम्भावना अधिक रही है। इस तरह यौन सम्पर्को द्वारा एड्स संक्रमण की समस्या अत्यन्त जटिल है। इस पर नियन्त्रण रोग की सही जानकारी और स्वविवेक से ही हो सकता है। कानून या बाहरी दबाव समस्या को रोकने में ज्यादा सफल नहीं होंगे।

2. **इंजेक्शनों द्वारा नशीले द्रव्य लेने से** – एड्स संक्रमित रोगियों की संख्या में रक्तदाताओं के बाद दूसरा स्थान उन नशाखोरों का है, जो सुइयों द्वारा नशीले पदार्थो को खून की नसों में प्रवेश कराते हैं। भारत में अब तक नशाखोरों में इस माध्यम से संक्रमण हुआ है, जो कि कुल संक्रमित रोगियों का 13.45 प्रतिशत है। यह प्रतिशत किस तरह कम नहीं कहा जा सकता। मणिपुर जैसे छोटे प्रदेश में चार हजार के लगभग संक्रमितों में अधिकतर संख्या इंजेक्शनों द्वारा नशीले द्रव्य लेने वाले व्यक्तियों की है।

भारत के महानगरों में हेरोइन इत्यादि नशीले पदार्थ लेने का चलन बढ़ रहा है। कॉलेज के छात्र–छात्राएँ एवं अन्य युवा लोग इस गन्दी आदत को खूब अपना रहे हैं। विशेषकर उत्तर–पूर्वी राज्यों में हजारों युवक–युवतियाँ उन नशों के माध्यम से एड्स के शिकार बन रहे हैं। इसका कारण उत्तर–पूर्वी राज्यों का सुनहरे त्रिभुज (गोल्डन ट्रायंगल) के नजदीक होना है। यहाँ से हेरोइन जैसे मादक द्रव्यों की तस्करी भी खूब होती है। इसलिए स्थानीय लोगों को ये नशीले पदार्थ अपेक्षाकृत सस्ते दामों में उपलब्ध हो जाते हैं। यहाँ एक बात द्रष्टव्य है कि जो हेरोइन भारत में पचास हजार से एक लाख रूपये किलो बिकती है, वही हेरोइन अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में एक करोड़ रूपये की होती है।

नशेबाज स्वयं अपने हाथों से ही खून की नसों में हेरोइन इत्यादि प्रवेश कराते हैं। कई बार सामूहिक रूप से भी ये नशा लेते हैं। सिरिंज (पिचकारी) अथवा सुइयों का बगैर उबाले अथवा बिना जीवाणुरोधक घोल या स्प्रिट का उपयोग किए ये उनका परस्पर उपयोग करते रहते हैं। नशे के आदि व्यक्ति कई बार व्यग्रतावश भी सुई एवं सिरिंजों को विषाणुरहित नहीं बना पाते हैं। कई गुप्त अड्डों पर और क्लबों में भी ये दवाइयाँ एक साथ कई–कई व्यक्तियों में प्रविष्ट करवाई जाती हैं। वहाँ भी सुइयों इत्यादि की सफाई पर ध्यान नहीं दिया जाता। फिर यदि इन नशेड़ियों में से किसी के खून में एच.आई.वी. होते हैं तो वे दूषित इंजेक्शनों द्वारा अन्य नशेड़ियों के खून में भी पहुँच जाते हैं। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि इस तरह के नशे के आदि ये व्यक्ति अक्सर स्वच्छन्द यौन जीवन भी जीते हैं। इस कारण उन्हें एड्स संक्रमण का दोहरा खतरा होता है।

भारत ही क्या, पूरे एशिया महाद्वीप में अब इंजेक्शनों द्वारा नशीले पदार्थ लेने वालों की संख्या बढ़ रही है। दक्षेस देशों में तकरीबन 80,00,000 और पूरे दक्षिण एशिया में 2.5 से लेकर 3 करोड़ तक नशेबाज हैं। भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल इत्यादि सभी इस समस्या से ग्रस्त हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, दक्षिण–पूर्वी एशिया में इंजेक्शनों द्वारा नशीले पदार्थ लेने वालों में एच.आई.वी. संक्रमण की दर सबसे ज्यादा मणिपुर ;भारतद्ध तथा इसके पश्चात् थाईलैण्ड एवं म्याँमार में है।

नशों द्वारा होने वाले एड्स रोग पर नियन्त्रण रखने के लिए अमेरिका ने एक विधेयक सन् 1988 में पारित किया था। इस विधेयक के अनुसार, नशीले पदार्थ और सेक्स का धन्धा करने वाले अपराधियों को अनिवार्य रूप से एड्स का परीक्षण करवाना होगा। विधेयक में एक अरब डॉलर खर्च करने की भी व्यवस्था थी। इस बात से ज्ञात होता है कि आज से नौ–दस वर्ष पूर्व भी वहाँ की सरकार एड्स रोग को लेकर कितनी चिंतित थी। हमारी सरकार को भी कुछ इसी तरह के कड़े कदम उठाने होंगे।

3. **एड्स विषाणुयुक्त रक्त एवं रक्त उत्पादों द्वारा एड्स** – विदेशों के अलावा हमारे यहाँ भी एच.आई.वी. युक्त रक्त एड्स संक्रमण फैलाने में काफी सहायक हो रहा है। यदि एड्स विषाणु से संक्रमित रक्तदाता किसी रोगी को रक्त दान में दे तो उसे भी एड्स संक्रमण की पूरी सम्भावना रहती है। इस तरह जाने–अनजाने वह रक्तदाता मरीज को जीवन देने की बजाय मौत की ओर ढकेल देता है।

वर्तमान में भारत में कई रक्त बैंक हैं, जो वर्ष भर में लगभग बीस लाख यूनिट रक्त प्रदान करते हैं, जबकि आवश्यकता इससे अधिक रक्त की होती है। इसलिए कुछ लोग

अवैध रूप से भी रक्त के लेन–देन का कार्य करते हैं। कई जगहों पर पैथोलाजी सेंटर कुछ अशिक्षित डॉक्टर चलाते हैं तथा वे व्यावसायिक रक्तदाताओं से रक्त खरीदकर ऊँचे दामों पर बेच देते हैं। एड्स विषाणु की जाँच करने की वे आवश्यकता भी नहीं समझते और इस तरह संक्रमण को फैलाने में सहायक होते है।

यौन सम्बन्धों के कारण एड्स से संक्रमित होने वाले व्यक्तियों के पश्चात् दूसरा स्थान रक्तदाताओं का है। इनमें अधिकतर संख्या व्यावसायिक रक्तदाताओं की ही थी। इसलिए इन रक्तदाताओं से भी एड्स फैलने का बड़ा खतरा है।

रक्तदाता अक्सर निचले तबके के लोग होते हैं, जो विवशतावश रक्त बेचते हैं। इनमें से कई सस्ती वेश्याओं के पास भी जाते हैं और बहुत से इंजेक्शनों द्वारा नशीले द्रव्य भी लेते हैं। इस कारण इन्हें एच.आई.वी. संक्रमण हो जाता है। रक्त बेचकर यह संक्रमण वे दूसरों में भी पहुंचा देते हैं।

अक्सर रोगी के रिश्तेदार रक्त स्वयं देने की बजाय खरीदना ज्यादा पसन्द करते हैं; क्योंकि वे रक्तदान से डरते हैं। इस कारण भी कई बार दूषित रक्त खरीदकर मरीज को चढ़ा दिया जाता है।

आजकल मान्यता प्राप्त रक्त बैंकों में व्यावसायिक रक्तदाताओं का रक्त नहीं लिया जाता। इस कारण रक्त बेचने वाले ये लोग नाम बदलकर, स्वयं को मरीज का रिश्तेदार बताकर रक्त देने का प्रयास करते हैं। कुछ इसमें सफल भी हो जाते हैं। कई बार ये शहर भी बदल लेते हैं।

कई तरह की शल्य–क्रियाओं; जैसे–गुर्दे, हृदय इत्यादि के ऑपरेशनों में रक्त की आवश्यकता अधिक होती है। इसी तरह कुछ बीमारियों; जैसे–रक्त कैंसर, अत्यन्त रक्ताल्पता अथवा दुर्घटनाओं में भी कई–कई बोतल (यूनिट्स) रक्त की आवश्यकता होती है। भूल से यदि इस वक्त किसी रोगी को एच.आई.वी. युक्त खून चढ़ा दिया जाए तो बेचारा रोगी बच तो जाएगा, लेकिन एड्स संक्रमण के कारण एक अन्य बड़े रोग के चंगुल में फंस जाएगा।

एड्स संक्रमण के प्रसार का असर रक्त दानकर्ताओं पर भी पड़ा है। अनावश्यक डर के कारण अब कई रक्तदाता रक्त बैंकों के लिए खून देने से कतराते हैं; क्योंकि उन्हें भय रहता है कि कहीं रक्त के आदान–प्रदान से उन्हें रोग न लग जाए। जबकि वास्तविकता यह है कि यदि उचित जीवाणुनाशक विधियों और एक बार उपयोग के बाद फेंक दी जाने वाली सामग्री का प्रयाग किया जाए तो रोग लगने की बिल्कुल सम्भावना नहीं होती। कुछ समय पूर्व मुम्बई

के प्रमुख रक्त बैंक संगठन की अध्यक्षा का कहना था कि कुछ रक्त बैंकों में अब स्वेच्छा से रक्त देने वालों की संख्या में काफी कमी आ गई है। लेकिन एड्स के डर के अलावा इसलिए भी रक्त दान में नहीं देते कि कहीं उन्हें कमजोरी न आ जाए अथवा वे बीमार न पड़ जाऐं।

रक्ताधान द्वारा संक्रमण में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि रक्ताधान से पूर्व एच.आई.वी. की जो जांचे की जाती हे, उससे यह पता नहीं चल पाता कि रक्त एड्स विषाणु से रहित है। क्योंकि व्यक्ति में संक्रमण के पश्चात् खून में एण्डीबॉडीज बनने में कुछ समय लग जाता है और इस बीच खून की जांच के परिणाम धनात्मक नहीं मिलते। इसलिए इस बात की भी सम्भावना रहती है कि खून की जांच के बाद भी मरीज को दिए गए खून से एड्स संक्रमण हो जाए क्योंकि हो सकता है, जब रक्तदाता ने रक्त दिया तो तब उसके खून में एड्स वायरत तो उपस्थित हों, लेकिन एझडीबॉडीज न बन पाई हो; अर्थात् रक्तदाता 'विंडो पीरियड' में हो। अतएव अब रक्तदाताओं का जाना—पहचाना व्यक्ति या निकटतम रिश्तेदार होना आवश्यक है। अपरिचित व्यक्ति का रक्त दान में नहीं लेना चाहिए।

4. **संक्रमित माताओं द्वारा बच्चों में** — एड्सग्रस्त बच्चों में अधिकतर बच्चे ऐसे होते हैं, जिन्हें यह संक्रमण अपनी माताओं द्वारा मिलता है। एड्स विषाणुग्रस्त माता के बच्चों में संक्रमण की सम्भाव 30 से 50 प्रतिशत तक होती है। मां द्वारा बच्चे में एड्स होने का कारण यह है कि मां का खून ही बच्चे में जरायु द्वारा जाकर शरीर का पोषण करता है। एड्स रोग के विषाणु जरायु से होकर रक्त के माध्यम से गर्भस्थ शिशु में पहुंच जाते हैं। कुछ बच्चों में जन्म के समय ही यह संक्रमण होता है।

स्तनपान द्वारा मां के दूध से भी शिशु से संक्रमित होने की खबरें मिली है; क्योंकि मां के दूध में भी एच.आई.वी. होते हैं। लेकिन एच.आई.वी. ग्रस्त मां द्वारा बच्चे को स्तनपान करवाने के सम्बन्ध में चिकित्सा विज्ञानियों में मतभेद भी है। केवल कुछेक मामलों के कारण शिशुओं को मां के दूध से वंचित नहीं रखा जा सकता। विशेषकर भारत जैसे विकासशील देश में, जहां प्रायः ही बच्चे कुपोषण के शिकार रहते हैं, स्तनपान को बन्द करने की सलाह नहीं दी जा सकती।

5. **अन्य साधना द्वारा** — एड्स संक्रमण फैलाने वाले कई अन्य साधन भी हैं। आमतौर पर जनसाधारण को इनकी जानकारी नहीं है। इसलिए यहां बहुत से ऐसे कारण का वर्णन किया जाएगा, जिनसे रोग का संक्रमण ज्यादा तो नहीं होता, लेकिन इन्हें जानना अत्यन्त आवश्यक है।

विभिन्न जानकारी एवं निजी अस्पतालों, दवाखानों, प्रसूति–गृहों, शल्य–गृहों इत्यादि से भी संक्रमण फैलने का खतरा है। यदि वहां पर्याप्त सफाई और जीवाणुरहित प्रक्रियाओं का ध्यान न रखा जाए तो दूषित उपकरणों, औजारों तथा इंजेक्शन इत्यादि से यह संक्रमण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में पहुंच सकता है। भारत जैसे विकासशील देश में इस तरह से संक्रमण की अधिक संभावना है, जहां अस्पतालों में फेंकने योग्य सुइयों का उपयोग मंहगा है। यदि किसी एच.आई.वी. संक्रमित मरीज को इंजेक्शन दिया गया और भूलवश वही सुई बगैर ठीक से उबाले अन्य रोगी को लगा दी जाए तो उसे भी संक्रमण लग सकती है। इसी कारण कई तरह की विशेष जांचे होती हैं, जिनमें औजारों अथवा उपकरणों को शरीर के अन्दर मुह, नाक, कान अथवा गुदा, योनि या पेशाब के रास्ते से डालते हैं। इस कारण कई बार इनके अन्दर की श्लेष्मा छिल जाती है और घाव के कारण उसे खून निकलने लगता है। यह रक्त उपकरणों पर भी लग जाता है। अब यदि एड्स रोगी पर इनके प्रयोग के पश्चात् इन्हें ठीक से जीवाणुनाशक द्रव में धोया अथवा उबाला न जाए तो किसी अन्य रोगी की जांच के दौरान इन उपकरणों से उसे भी संक्रमण हो सकता है। उदाहरणार्थ, ब्रॉन्कोस्कोपी, सिस्टोस्कोपी, गेस्ट्रोस्कोपी जैसी जांचों में यदि जीवाणुरहित करने वाली प्रक्रियाओं पर पर्याप्त ध्यान न दिया जाए तो संक्रमण का खतरा रहता है।

विभिन्न शल्य–क्रियाओं के दौरान ऑपरेशन करने वाले चिकित्सकों, नर्सों इत्यादि को संक्रमित एड्स रोगी से तो खतरा रहता ही है, लेकिन यदि ऐसे रोगी के ऑपरेशन के पश्चात उस स्थान को ठीक से साफ–सफाई न की जाए तो और औजारों को जीवाणुरहित न बनाया जाए तो ऑपरेशन वाले दूसरे अन्य रोगियों को भी एच.आई.वी. संक्रमण हो सकता है।

भारत में डायलिसिस प्रक्रिया के दौरान भी कई मरीज एड्स विषाणु के संक्रमण के शिकार बने हैं। डायलिसिस प्रक्रिया में शरीर का रक्त डायलिसिस मशीन में पहुंचाकर उसमें से यूरिया इत्यादि हानिकारक पदार्थ अलग करते हैं। यह विधि ऐसे रोगियों के लिए अपनाई जाती है, जिनके गुर्दे बीमारी के कारण कार्य करना बन्द कर देते हैं। इसमें रोगी को अतिरिक्त रक्त देने की भी आवश्यकता पड़ती है।

चिकित्सक, नर्सें और रक्त बैंक एवं पैथोलॉजी प्रयोगशालाओं में कार्य करने वाले टेक्नीशियन इत्यादि यदि उचित सावधानी न बरतें तो उन्हें भी मरीजों से एड्स संक्रमण लग सकता है। उदाहरणार्थ, जांच के लिए एड्स रोगी के शरीर से रक्त निकालने के बाद धोखे से इंजेक्शन की सुई जाए तो उन्हें संक्रमण की सम्भावन होती है। इस तरह दुर्घटनावश संक्रमण की घटनाएं हो भी रही हैं।

दंतरोग विशेषज्ञ यदि उचित सावधानी न रखें तो उन्हें एड्स संक्रमण हो सकता है। ये विशेषज्ञ भी मरीज के रक्त के सीधे सम्पर्क में रहते हैं। यदि गलती से इनके हाथ में चोट लग जाए तो दांत इत्यादि निकालते वक्त एड्स संक्रमित रोगों के रक्त से घाव का सम्पर्क हो जाए तो इन्हें भी एच.आई.वी. का संक्रमण हो सकता है।

अंगदान करने वाला व्यक्ति यदि विषाणु से संक्रमित हो तो अंग–प्रत्यारोपण से भी एड्स विषाणु का संक्रमण हो सकता है। आजकल बड़े शहरों में गुर्दे, हृदय, कॉर्निया इत्यादि के प्रत्यारोपण होते रहते हैं। लेकिन अंग ग्रहण करने से पूर्व दानदाता की ठीक से जांच करना अत्यन्त आवश्यक है कि कहीं वह एड्स संक्रमित तो नहीं है वरना संक्रमण की सम्भावना रहती है। क्योंकि दान दिए हुए अंग में एच.आई.वी. रहते हैं और ये अंग अब अन्य रोगी के शरीर में लगाए जाते हैं तो एच.आई.वी. उनके रक्त में पहुंचकर उस रोगी को भी संक्रमित कर देते हैं।

इसके अलावा नाई की दुकानों से भी एड्स विषाणु के संक्रमण का खतरा व्यक्त किया गया है। नाई के उत्सरे इत्यादि से रोग फैलने की भी सम्भावना रहती है। अगर वह उस्तरे एवं अन्य औजारों को प्रत्येक व्यक्ति की दाढ़ी बनाने के पश्चात् जीवाणुरहित न बनाए तो। क्योंकि यदि एड्स संक्रमित व्यक्ति दाढ़ी बनवाकर चला गया और उसका रक्त नाई के उस्तरे पर लगा रह गया तो यह उस्तरा दूसरे स्वस्थ व्यक्ति को भी दाढ़ी बनवाते समय संक्रमित कर सकता है।

15.12 एड्स से बचाव के उपाय

जिन कारणों से एड्स उत्पन्न होता है उसके प्रति सावधानी बरतना ही एड्स से बचाव के उपाय है।

अभ्यास प्रश्न – ग

1. एड्स नहीं फैलता है –
   (अ) सुरक्षित यौन सम्बन्ध से (ब) छूने से
   (स) साथ खाने से (द) इनमें से सभी
2. एच.आई.वी. का पूर्ण रूप लिखें।

15.13 सारांश

हृदय संवहनी रोग मूलतः हृदय की धमनियों की आन्तरिक दीवारों पर कोलेस्ट्रोल पदार्थों के जमा होने के कारण रक्त संचार में उत्पन्न बाधा से सम्बन्धित है। ये पदार्थ हृदय तक रक्त को नहीं पहुंचने देते। फलतः दिल का दौरा पड़ जाता है।

हृदय रोग की उत्पत्ति में सख्त तत्व, जैसे–उच्च रक्तचाप, मधुमेह, कोलेस्ट्रोल की अधिकता आदि तथा मुलायम तत्व जैसे–तनाव, गुस्सा, शारीरिक श्रम का अभाव आदि की अहम् भूमिका होती है।

कैंसर व्यक्ति के शरीर में उन असामान्य कोशिकाओं के कारण होता है जो तेजी से बढ़ती है तथा शरीर के अन्य भागों में भी फैल जाती है।

कैंसर के मुख्य प्रकार हैं – कार्सिनोमा, सारकोमा, लिम्फोमा, ल्यूकेनिया आदि।

एड्स विषाणुजन्य ऐसे रोगों का समूह है जिसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता नष्ट होने के कारण कई लक्षण, जैसे–वजन कम होना, दस्त आना, बुखार आना उत्पन्न हो जाते हैं और इन पर दवा का असर नहीं हो पाता। यह बीमारी अतिसूक्ष्म जैविक इकाई विषाणु द्वारा उत्पन्न होता है जिसे एच.आई.वी. विषाणु भी कहते हैं।

एड्स के कारणों में असुरक्षित यौन सम्बन्धद्वइंजेक्शन द्वारा नशीला द्रव्य लेना, एड्स विषाणुयुक्त रक्त एवं रक्त उत्पाद का रक्त में मिलना आदि महत्वपूर्ण है।

15.14 परिभाषिक शब्दावली

सिस्टोल : वह प्रक्रिया जिसके द्वारा रक्त हृदय से बाहर की ओर पम्प किया जाता है जिससे रक्त का दबाव रक्त नलिकाओं में बढ़ जाता है।

डायस्टोल : वह प्रक्रिया जिसमें मांस–पेशियों में शिथिलीकरण के कारण रक्तचाप गिर जाता है और रक्त हृदय में ले जाया जाता है।

एच.आई.वी. : यह मनुष्य के शरीर में पाया जाने वाला अतिसूक्ष्म जैविक इकाई विषाणु है जो रक्त कोशिकाओं पर आक्रमण करके शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को नष्ट कर देता है।

15.15 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. हृदय संवहनी रोग क्या है?इससे कैसे बचा जा सकता है?
2. हृदय संवहनी रोग के कारणों पर प्रकाश डालें।
3. कैंसर के विभिन्न प्रकार कौन–कौन से है?कैंसर का उपचार क्या है?
4. एड्स से आप क्या समझते हैं?यह एक खतरनाक बीमारी है, कैसे?
5. एड्स रोग क्यों होता है?इससे बचने के क्या उपाय हैं?

15.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वास्थ्य मनोविज्ञान – माथुर एवं माथुर, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा

2. Type A Behaviour and your heart – Friedman and Rosenman; New York; Knops

15.17 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 'क'

1. स 2. अ

अभ्यास प्रश्न – 'ख'

1. ब 2. द

अभ्यास प्रश्न – 'ग'

1- द

2. ह्यूमन इम्यूनो–डिफिशिएन्सी वायरस

इकाई– 16 : सकारात्मक मनोविज्ञान की प्रस्तावना अर्थ और क्षेत्र, सकारात्मक मनोविज्ञान में सकारात्मक संवेगों की भूमिका

Introduction, Meaning and area of positive Psychology, Role of positive emotions in positive psychology

इकाई की संरचना

16.0 लक्ष्य एवं उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 सकारात्मक मनोविज्ञान क्या है

16.3 सकारात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र

16.4 आधुनिक सकारात्मक मनोविज्ञान की उत्पत्ति

16.5 सकारात्मक मनोविज्ञान का इतिहास

- 16.5.1 ग्रीक
- 16.5.2 उपयोगितावादी
- 16.5.3 विलियम जेम्स
- 16.5.4 मानवतावादी मनोविज्ञान

16.6 आज का सकारात्मक मनोविज्ञान

16.7 सकारात्मक मनोविज्ञान का स्थान

16.8 सकारात्मक मनोविज्ञान में सकारात्मक संवेगों की भूमिका

16.9 सकारात्मक संवेग क्या है ?

16.10 व्यक्ति को सकारात्मक संवेगों की आवश्यकता क्यों होती है

16.11 सकारात्मक संवेगों का व्यापक– और –निर्माण सिद्धान्त

16.12 सारांश

16.13 मूल्यांकन प्रश्न

16.14 संदर्भ ग्रन्थ

16.0 लक्ष्य एवं उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- सकारात्मक मनोविज्ञान का अर्थ जान पायेंगे।
- सकारात्मक मनोविज्ञान आज कहां स्थित है बता पायेंगे।
- सकारात्मक मनोविज्ञान में सकारात्मक संवेगों की क्या भूमिका है समझ सकेंगे।
- सकारात्मक संवेग का व्यापक– और– निर्माण सिद्धान्त क्या है बता सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में दुनिया या समाज ग्लोबल वार्मिंग, प्राकृतिक आपदाओं , आर्थिक मंदी, आतंकवाद, अभूतपूर्व बेधरता, युद्ध की निरन्तरतायें आदि अति कठिन चुनौतियों से जूझ रहा है।

इन सभी उदासी और आतंक के होते हुये भी दुनियां में क्या कोई ऐसा विज्ञान है जो खुशी के परीक्षण (Testing happiness) , भलाई (Well being) , व्यक्तिगत विकास (Personal growth) और अच्छे जीवन (the good life) जैसे एजेण्डों को इन आधुनिक दिनों में अध्ययन करता हो ?

16.2 सकारात्मक मनोविज्ञान क्या है

सकारात्मक मनोविज्ञान के विज्ञान का उद्देश्य व्यक्तिगत व सामुदायिक उन्नति के कारकों को समझना परीक्षण करना, विकसित करना, व बढ़ाना है। शेल्डन एट. एल 2000 सकारात्मक मनोविज्ञान सकारात्मक समूहों व संस्थानों की भलाई, खशी, प्रवाह, व्यक्तिगत मजबूती, सृजनात्मकता (रचनात्मकता), ज्ञान और रचनात्मक कल्पना और जैसी विशेशताओं पर केन्द्रित है। और सिर्फ कैसे व्यक्तिगत खुशी और आत्मकेन्द्रिता Narcissistic Apparoach (व्यक्तिगतता) को बनाये रखने पर ही केन्द्रित नहीं है अपितु सामुहिक खुशी और उन्नति को बनाये रखने पर भी जोर देता है।

सकारात्मक मनोविज्ञान का ज्ञान कैसे व्यक्तियों और समूहों को कारगर बनायेगा और एक की उन्नति व खुशी दूसरे पर कैसे सकारात्मक प्रभाव डालेगी जिससे कि Win-Win situation सिर्फ जीत और जीत जैसे परिस्थितियां पैदा होंगी।

सकारात्मक व्यक्तिपरक अनुभव, सकारात्मक व्यक्तिगत लक्षण और सकारात्मक संस्थाओं का विज्ञान जीवन में गुणवत्ता लाता है, विकृत्तियों को रोकता है जो कि जीवन के बंजर व अर्थहीन होने से उत्पन्न हो गई है, को सुधारने का वादा करता है। विकृति पर विशेष

ध्यान देना हमारे अनुशासन पर इतना हावी हो गया है कि इसके परिणामों ने जीवन रूपी मॉडल में सकारात्मक विशेषताओं की कमी कर दी है जो कि जीवन को जीने लायक बनाते हैं। आशा, ज्ञान, रचनात्मकता, भविष्य के प्रति उत्तरदायित्व, साहस, आध्यात्मिकता, जिम्मेदारियां और दृढ़ता को नजर अंदाज किया गया है, या फिर प्रमाणिक नकारात्मक आवेगों के परिवर्तित रूप में व्याख्या की गई हैं। अमेरिकन साकोलिजिस्ट मिलेनियम इस्यू (Amarican Psychologist Millenium Issue) के 15 लेखों में इस विषय या मुद्दों पर चर्चा की गई है जैसे कि कैसे खुशी, स्वयात्तता और आत्मनियमन को बढ़ाया या सक्षम बनाया जाता है। कैसे आशावादिता और आशा स्वास्थ्य को प्रभावित करती है, कैसे ज्ञान का संगठन होता है और कैसे प्रतिभा और रचनात्मकता अस्तित्व में आती है।

सकारात्मक मनोविज्ञान के विज्ञान को पढ़ने के बाद हमारे ज्ञान में बढ़ोत्तरी होगी और यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अगले दशक में यह विज्ञान एक पेशे के रूप में व्यक्तियों , समुदायों और समाजों को उन्नत करने में सहायक कारकों का निर्माण करेगा।

सकारात्मक मनोविज्ञान सिर्फ सकारात्मक सोच और सकारात्मक भावनाओं पर ही ध्यान केन्द्रित नहीं करती है अपितु वास्तव में इसका ज्यादा से ज्यादा ध्यान सकारात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र का व्यक्तियों और समुदायों को दुर्बल न बनाकर समृद्ध बनाने से है समृद्धि का अर्थ है ''सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति' कामयाबी, समृद्धि और अच्छी स्थिति को बनाने का सकारात्मक प्रयास उसके सामाजिक व निजी क्षेत्रों में करता है जिससे कि मानसिक बीमारियों से मुक्ति भावनात्मक जीवन शक्ति और उसके कार्यों से पूर्ण रहा जो सके । (Michalec et.al 2009)

आंकड़े बताते हैं कि 18 प्रतिशत वयस्क समृद्धि के मानदंडों को पूरा करते हैं, 65 प्रतिशत मामूली रूप से मानसिक रूप से स्वस्थ व 17 प्रतिशत बीमार है। आश्चर्य होता है कि समृद्धशाली व्यक्तियों के पास असंख्य सकारात्मक सह सम्बन्धक जैसे– शैक्षिक उपलब्लिधाँ, लक्ष्य प्राप्ति में निपुणता, उच्च स्तर का आत्म नियन्त्रण और धैर्य की निरन्तरता होते हैं (Howell 2009) इस प्रकार वह विज्ञान जो वातावरण और व्यक्तियों के विकास और सुविधाओं की समृद्धि पर केन्द्रित है वह एक महत्वपूर्ण और नया विषय मोविज्ञान के साइंस के लिये है।

16.3 सकारात्मक मनोविज्ञान का क्षेत्र

सकारात्मक मनोविज्ञान सकारात्मक अनुभवों पर तीन काल बिन्दुओं पर केन्द्रित है।

1. अतीत की भलाई (Well Being), संतोष और सन्तुष्टि पर केन्द्रित ।

2. वर्तमान जो खुशी और अनुभवों के प्रभाव की आवधारणा पर केन्द्रित है।
3. भविष्य उन अवधारणाओं के साथ जो आशा और आशावाद को समाहित करती है ।

सकारात्मक मनोविज्ञान न केवल भलाई (Well Being), को तीन काल बिन्दुओ में विभाजित करता है बल्कि सकारात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र को तीन बिन्दुओं में विभाजित करता है।

- **पहला वस्तुपरक बिन्दु (Subjective Point)** – जो सकारात्मक अनुभव भूत, वर्तमान व भविष्य जैसे उदाहरण के लिए– खुशी, आशावादिता व भलाई को सम्मिलित करता है।
- **दूसरा व्यक्तिगत बिन्दु (Individual Point)** – जो 'अच्छे व्यक्ति' की विशेषताओं पर केन्द्रित करता है जैसे उदाहरण के लिए– प्रतिभा, ज्ञान, प्रेम, साहस और रचनात्मकता।
- **तीसरा समूह बिन्दु (Group Point)** – जो सकारात्मक संस्थानों, नागरिकता और समुदायों का अध्ययन करता है उदाहरण के लिए – परोपकारिता, सहिष्णुता, काम के प्रति नैतिकता (work ethic) सकारात्मक मनोविज्ञान केन्द्र, 1998)
- **अन्तिम रूप में सकारात्मक मनोविज्ञान** – वैज्ञानिक समुदाय, समाज और व्यक्तियों को उनके अन्दर मौजूद विचारों को नये परिप्रेक्षण में अध्ययन करने और मानव उत्कर्ष के समर्थन के लिये अनुभव जन्य साक्ष्य उपलब्ध कराता है, का विज्ञान है। अच्छा जीवन क्या है Authentic Happiness and good life ? सुकरात, प्लेटो और अरस्तू का मानना है कि जब लोग धार्मिक जीवन जीते हैं तो प्रमाणिक रूप से खुशी को पा लेते हैं। बाद में कुछ वैज्ञानिकों इपीकूरस आदि ने बताया कि खुशी वास्तव में सकारात्मक भावनाओं और सुख की अधिकता है। पारम्परिक अवधारणा के अनुसार सकारात्मक मनोविज्ञान प्रमाणिक सुखात्मकता है जो hedonic (सुखात्मकता) और endaimonic Well Being (भलाई) का मिश्रण है। सेलिग्मैन और सिकजन्टमिहली (Csikszentmihalyi, 2000) और Hidomic खुशी उच्च स्तर के सकारात्मक प्रभाव व निम्न स्तर के नकारात्मक प्रभाव को समाहित करता है। उच्च विषयगत जीवन सन्तुष्टि को समाहित नहीं करता (Diener 1999 Eudaimonic एउदेमौनिक भलाई, जीवन को अर्थ और उद्देश्य को निर्मित करने पर केन्द्रित रहती है, किन्तु इन दोनों अवधारणाओं हिडोनिक व एउदेमोनिक भलाई के बीच भेद एक बहस या वाद विवाद का विषय है (Kashdan et al 2008 Keys and Annas 2009 Tiberius and Maso 2009) । Seligmon सेलिंगमैन ने ''प्रमाणिक खुशी'' की

धारणा को विभक्त किया है । उन्होंने कहा जीवन एक सुखद जीवन, एक व्यस्त जीवन और एक अर्थपूर्ण जीवन का संयोजन है। आनन्ददायक जीवन सकारात्मक संवेगों की भावना जैसे खुशी, आभार , शांति, रूचि, आशा, गौरव मनोरंजन , प्रेरणा , भय और प्रेम का संयोजन है (Fredrickson 2009) । जो हमारे प्रसिद्धि सफलता और भलाई के लिये संयुक्त तत्व के रूप में काम करते हैं ।

16.4 आधुनिक सकारात्मक मनोविज्ञान की उत्पत्ति

सकारात्मक मनोविज्ञान आंदोलन के जन्मदाता मार्टिन ई.पी. सेलिंगमैन (Martin E.P. Seligmon) जो कि पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर हैं को माना जाता है। कई दशकों के प्रयोगात्मक शोध के बाद उन्हें अपने सिद्धान्त Learned helplessness पर सफलता मिली। 1998 में उन्हें अमेरिकन साइकोलाजिकल एसोसियेसन का अध्यक्ष मनोनित किया गया। बोस्टन मेसाचुसेट्स 21 अगस्त, 1999 में ए.पी.ए की 107वीं वार्षिक सम्मेलन के उद्घाटन के दौरान सेलिगमैन ने आधुनिक विकृतिविज्ञान केन्द्रित मनोविज्ञान की गतिकी को सुधारने सम्बन्धी अपने एजेन्डे का परिचय कराया। सेलिगमैन अपनी अध्यक्षता के दौरान सकारात्मक मनोविज्ञान आंदोलन के मुखिया बने रहे और दैनिक जीवन में सकारात्मक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को शामिल करवाने के लिये, दुनिया भर से अनुसंधानकोषों को जमा करने और सरकारों से समर्थन हासिल करने के लिये प्रयासरत रहे।

सकारात्मक मनोविज्ञान 1998 से पूर्व

द्वितीय विश्व युद्ध से पहले मनोविज्ञान के तीन अज्ञात कार्य थे । 1. मानसिक बीमारी का इलाज 2. सामान्य जनसंख्या के जीवन में वृद्धि 3. प्रतिभाओं का अध्ययन। दो विश्वयुद्धों के बाद कई मनोविकृत सैनिकों के लिये मनोविज्ञान के पहले कार्य पर ध्यान दिया गया और शोध कोश पहले कार्य के लिए दिया गया, बांकी दो कार्यों की अनदेखी की गई (Linley 2009 लिनले) । यह शोधकोष मानसिक विकारों के उपचार के लिये कारगर सिद्ध हुआ और 14 विकारों का उपचार कर ठीक कर दिया गया। (सेलिगमैन 2000) किन्तु विडम्बना यह हुई कि मनोविज्ञान को पीड़ित विज्ञान Victimalogy के रूप में देखा जाने लगा बल्कि मनुष्य के सक्रियता, रचनात्मकता, स्वावलंबिता जैसे लक्षणों को नजरअंदाज कर मनुष्य को निष्क्रिय प्राणी के रूप में देखा जाने लगा जो कि बाहरी ताकतों पर निर्भर था (Seligman and Csikszentmihalyi 2009) ।द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मनोविज्ञान व सकारात्मक मनोविज्ञान दोनों के बीच अन्तर इन दो प्रश्नों के माध्यम से जाना जा सकता है। जैसे– कुछ व्यक्ति क्यों असफल हो जाते हैं?'बनाम' क्या कुछ व्यक्तियों को सफल बनाता है ?

सेलिगमैन (2002) के अनुसार सकारात्मक मनोविज्ञान आन्दोलन का संदेश यह याद दिलाता है कि मनोविज्ञान का स्वरूप या क्षेत्र विकृत कर दिया गया है। मनोविज्ञान का कार्य सिर्फ बीमारी, कमजोरी तथा क्षति का अध्ययन करना ही नहीं है, बल्कि इसका कार्य पुण्य(Virtue) और ताकत (Strength) का अध्ययन करना भी हैं । मनोवैज्ञानिक उपचार, यह निर्धारित करना नहीं है कि गलत क्या है किन्तु सही क्या है इसका निर्माण करना है। मनोविज्ञान का अर्थ सिर्फ बीमारी व स्वास्थ्य नहीं है किन्तु इसका कार्य ,शिक्षा, सूझ, प्रेम , विकास और खेल का भी अध्ययन करना है और यह खोजता है कि क्या सबसे अच्छा है। सकारात्मक मनोविज्ञान इच्छाधारी सोच (Wishfull thinking), आत्मप्रतारणा (Self-deception) या हाथ हिलाना (hand waving) पर ही भरोसा नहीं करता बल्कि जटिल मानव व्यवहार की अद्वितीय समस्याओं के लिये सबसे अच्छा क्या है उस वैज्ञानिक विधि को खोजता है व उसका अनुसरण करता है।

16.5 सकारात्मक मनोविज्ञान का इतिहास

'सकारात्मक मनोविज्ञान' का विचार एक नया विचार नहीं है। सकारात्मक मनोविज्ञान शब्द को अब्राहम माशलों ने सेलिगमैन से कई दशकों पहले परिचय करा दिया था। (माशलो 1954) । सेलिगमैन ने पुराने दार्शनिकों के शोधों और वैज्ञानिकों के ज्ञान और विचार को हमारी दृष्टि पटल की चेतना पर एक घटक रूप में लाने का प्रयास किया है। सकारात्मक मनोविज्ञान विशय के उद्‌गम से पहले निम्नलिखित चार समूहों ने 'अच्छी जीवनशैली' को अपनाया था जिसको कि सकारात्मक मनोविज्ञान का आधार कहा जा सकता है।

16.5.1. ग्रीक Greeks

अरस्तू (384–322 B.C.E.) इस क्षेत्र में सबसे बड़ा योगदान अरस्तू का है उन्होंने नैतिकता, सदाचार और कैसे एक अच्छा जीवन जीया जा सकता है इस पर कार्य किया। उन्होंने निष्कर्ष रूप में कहा कि मानव के लिये सबसे अच्छा (eudaimonia खुशी है और कहा कि खुशी पुण्य के कार्यों को करने से ही प्राप्त हो सकती है मेशन टिबेरिअस Mason and Tiberius 2009 ।

16.5.2. उपयोगितावादी (Utilitarianism)

उपयोगितावाद के जन्मदाता जेरेमी बेन्थम Jeremy Bentham 2009 थे और जॉन स्टुअर्ट मिल John Stuart Mill ने इस विचार को आगे बढ़ाया। उपयोगितावाद वह दर्शनशास्त्र है जो ''लोगों की अधिकतम् भलाई'' जिसे कि "greatest happiness

principle" ''सबसे बड़ी खुशी सिद्धान्त'' भी कहा जा सकता है की मांग सरकार से अपने योजनाओं में शामिल करने के लिये की। इसे "Principal of Utility" या उपयोगिता का सिद्धान्त भी कहा जा सकता है। उपयोगितावादी समर्थकों ने सर्वप्रथम खुशी के मापन करने के लिये उपकरण का निर्माण किया जो कि सात श्रेणियों में विभक्त था और 'खुशी' का आंकलन 'खुशी की मात्रा जो अनुभव की गई हो' के रूप में करता था (Powelski and Gupta 2009)। दर्शनशास्त्री पहले यह कल्पना करते थे कि खुशी का मापन नहीं किया जा सकता किन्तु उपयोगितावादियों ने इसे कर दिखाया। Powelski and Gupta 2009 के अनुसार उपयोगितावादियों ने वर्तमान के सकारात्मक मनोविज्ञान के कुछ क्षेत्रों को प्रभावित किया है। जैसे कि वस्तुपरक भलाई Subjective well being और 'सुखद जीवन' pleasurable life के रूप में।

16.5.3. विलियिम जेम्स–William James

प्रतिभाशाली विद्‌वान विलियम जेम्स को मनोविज्ञान में उनके सर्वश्रेष्ठ योगदान के लिये जाना जाता है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक The Principals of Psychology (James 1890) हैं । मूल रूप से विलियम जेम्स एक चिकित्सक थे जिन्होंने अपने अध्ययन हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय बोस्टन संयुक्त राज्य अमेरिका में किया। उनकी रूचि धर्म, रहस्यवाद व ज्ञान मिमांसा में भी थी (Pawelski पावलसकी 2009) । ''संवेग'' जो उनकी पुस्तक के पाठों में से एक है। सकारात्क मनोविज्ञान के लिये सबसे अधिक प्रासंगिक है।

16.5.4. मानवतावादी मनोविज्ञान– (Humanistic Psychology)

मानवतावादी मनोविज्ञान, 1950 के अन्त व 1960 के शुरूआत में स्थापित मनोविज्ञान के मनोविश्लेषण के सिद्धान्त, व्यवहारवाद व अनुबन्धन के सिद्धान्त के प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। मानवतावादी आंदोलन ने गुणात्मक रूप में मानव की सोच, व्यवहार और अनुभवों को समग्र आयामों में जोड़ते हुए अध्ययन करने की शुरूआत की। संक्षेप में मानवतावादी मनोविज्ञान व्यक्ति के संपूर्ण या समग्र अध्ययन पर जोर देता है। मानवतावादी मनोविज्ञान का मुख्य उद्‌देश्य, मानसिक स्वास्थ्य, विशेष रूप से सकारात्मक गुणों जैसे– खुशी, संतोष, परमानंद, दयालुता, देखभाल, साझाकरण व उदारता के अध्ययन पर ध्यान देना था।

सकारात्मक मनोविज्ञान व मानवतावादी मनोविज्ञान के बीच थोड़े बहुत मतभेद रहे। प्रारम्भ में यह माना जाता रहा कि सकारात्मक मनोविज्ञान मानवतावाद नियमों से मेल नहीं खाता है और यह एक भलाई 'Well being' के अध्ययन की वैज्ञानिक विधि है। अतः मापन व परिकल्पना परिक्षण के लिये वैज्ञानिक विधियों का ही उपयोग किया जायेगा।

मानवतावादी मनोविज्ञान सकारात्मक मनोविज्ञान की आलोचना यह कह कर करता है कि यह विज्ञान एक अदूरदर्शी सोच (short sighted) रखने की वजह से मानवतावादी मनोविज्ञान से पृथक है और कहता कि इसी सोच (discipline) के कारण गुणात्मक शोध व खोज के तरीकों तक सीमित कर दिया और प्राप्त मुख्य परिणामों का सामन्यीकरण (generalization) एक निश्चित सीमा तक करने में असमर्थ रहा। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि सकारात्मक मनोविज्ञान में वैज्ञानिक प्रमाणिकता के लिये गुणात्मक शोधों की अनदेखी कर मात्रात्मक शोध के द्वारा इस कमी को पूरा किया जाये।

16.6 आज का सकारात्मक मनोविज्ञान Today's Positive Psychology

पिछले कुछ वर्षों में सकारात्मक मनोविज्ञान आंदोलन नें काफी गति पकड़ी है। सेलिंगमैन के भाषण के बाद 1999 से 2002 तक अकूमल (Akumal) और मेक्सिको (Maxico) में सकारात्मक मनोविज्ञान के नये क्षेत्रों के विकास हेतु शोधकर्त्ता इकट्ठे हुये । कई देशों के शोधकर्ता इसे सफल बनाने में अपना योगदान दे रहे हैं। वर्तमान में दुनियां के कई देशों में सैकड़ों स्नातक कक्षायें चल रही हैं। व्यावहारिक सकारात्मक मनोविज्ञान के दो परास्नातक कार्यक्रम भी चल रहे हैं । पहला कार्यक्रम सेलिगमैन ने पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय 2005 में व दूसरा 2007 में यू0के0 के ईस्ट लंदन विश्वविद्यालय में प्रारम्भ हुआ। पाँच परास्नातक पाठ्यक्रम इटली, पुर्तगाल, मैक्सिको में अपनी भाषा में निर्मित किये जा रहे हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के फिलाडेल्फिया पेनसिल्वेनिया में सकारात्मक मनोविज्ञान की पहली विश्व कांग्रेस (First World Congress) 18 से 21 जून 2009 में सम्पन्न हुई । यूरोपियन सकारात्मक मनोविज्ञान भी दुनियां भर से विशेषज्ञों को कई सम्मेलनो के लिये आमन्त्रित कर रहा है। वर्तान में 2006 में सकारात्मक मनोविज्ञान ने एक शैक्षिक शोध पत्रिका स्थापित की जो कि प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं में शामिल है। यू.के में भी सकारात्मक मनोविज्ञान में शोध कार्य चल रहा हैं, भारत ने भी अपनी रूचि इस ओर प्रदर्शित की है जबकि हमारे जो शास्त्र व ग्रन्थ है उनका मूल आधार, त्याग, क्षमा , ज्ञान, आनंद, सत्य योग व प्राणायाम जैसे तत्वों पर ही आधारित है। गौतम बुद्ध का सिद्धान्त भी सकारात्मक विचारों के परिपालन पर जोर देता है।

16.7 सकारात्मक मनोविज्ञान का स्थान

मनोविज्ञान विषय को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। अमेरिकन साइकोलिजिकल एसोसिएसन A.P.A. ने 56 शाखाओं में इसे विभक्त किया है । ब्रिटिश

मनोवैज्ञान सोसाइटी ने (B.S.S.) ने 9 क्षेत्रों जैसे नैदानिक परामर्शन , शैक्षिक, फॉरेन्सिक, स्वास्थ्य, न्यूरोसाइकोलॉजी, व्यवसायिक, खेल व व्यायाम। किन्तु सकारात्मक मनोविज्ञान उक्त शाखाओं मे किस शाखा के अन्तर्गत है ? इस सम्बन्ध में कई मतभेद हैं यह एक स्वतन्त्र शाखा के रूप में स्थापित है या मनोविज्ञान के सभी क्षेत्रों में इसका अध्ययन किया जा सकता है। अभी स्वतन्त्र विषय के रूप में सकारात्मक मनोविज्ञान स्थापित हो पाया है या नहीं यह शोध का विषय है।

16.8 सकारात्मक मनोविज्ञान में सकारात्मक संवेगों की भूमिका Role of Positive emotions in Positive Psychology

16.9 सकारात्मक संवेग क्या है

हमारी विकासवादी विरासत और जीवन की सीख ने हमें कई संवेगों का अनुभव करने की क्षमता प्रदान की है। पिछले अनुभवों के आधार पर व मनोविज्ञान के इतिहास के आधार पर देखा जाय तो कुछ शोधकर्त्ता मूल संवेगो के वर्गीकरण पर केन्द्रित रहे हैं। सिद्धान्तकर्त्ताओं ने अनुसार मूल संवेग 7 से 10 के मध्य होते हैं (प्लूचिक 1980 एकमेन 1983)। मानक स्वरूप मूल संवेग , मनोरंजन, सुख व खुशी पर सभी ने सहमति प्रकट की है। कुछ सिद्धान्तवादी 'रूचि' और ''प्रत्याशा'' को भी मूल संवेग मानने की सहमति प्रकट करते हैं और यही मूल संवेग कई प्रकार से मिश्रित हों नये प्रकार के संवेगों को जन्म देते हैं। जैसे रॉबर्ट प्लूचिक (1980) कहते हैं कि 'आशावाद' (optimism) प्रत्याशा व हर्श के मिश्रण से जन्म लेता है।

किन्तु हम दुःख प्रसन्नता, चिंता, आश्चर्य, ऊब, खुशी, भय, निराशा, हर्श, घृणा, नैराश्य को महसूस कर सकते हैं। हम कटु व मीठे दोनों प्रकार के संवेगों के मिश्रण को भी महसूस कर सकते हैं जैसे खुशी और दुःख साथ–साथ। जैसे हमे किसी एक नये कार्य को करने के लिये स्थान परिवर्तन करते हैं और अपने सगे सम्बन्धियों व मित्रों को अपने पुराने स्थान पर छोड़ आते हैं। नये कार्यों को करने की खुशी व सम्बन्धियों को छोड़ने का दुःख दोनों साथ–साथ अनुभव करते हैं। सकारात्मक मनोवैज्ञानिक बड़ी विशेशज्ञता से व्यक्तियों के संवेगात्मक अनुभवों के आधार पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव डालने वाली विमाओं का मापन करते हैं। इस प्रकार शोधों के द्वारा प्राप्त दो अयामी विश्लेशण के बजाये यदि हम संवेगों के मनोवैज्ञानिक और दैहिक प्रभावों का मूल्यांकन करें तो मूल रूप में संवेग दो प्रकार के प्राप्त होते हैं। सकारात्मक प्रभाव डालने वाले संवेग जैसे प्रसन्नता, खुशी, संतोश, सुख,

और हर्श और नकारात्मक प्रभाव डालने वाले संवेग क्रोध, भय, उदासी, शर्मिंदगी, अवमानना एवं घृणा हैं। प्रथम दृष्टया नकारात्मक व सकारात्मक प्रभाव जो व्यक्ति अनुभव करता है वह व्यक्ति की मूल संवेगात्मक जीवन की संरचना पर निर्भर करता है वॉटसन (2002), वॉटसन एण्ड टेलेगन वाटसन वाइज विद्या एवं टेलेगन (1999) ।

दूसरा विश्लेशण मनोवैज्ञानिकों ने दैनिक अध्ययनों के आधार पर प्राप्त किया। उन्होंने पाया कि व्यक्ति का तंत्रिका तंत्र एक भिन्न प्रकार के प्रतिमानों के आवेगों (Pattern) प्रमस्तिश्कीय गतिविधियां , हॉरमोन और न्यूरोट्रान्समीटर को उत्पादित करता है जो कि सकारात्मक से नकारात्मक संवेगों के मध्य विभेद करते हैं। किन्तु इन सतत सकारात्मक व नकारात्मक संवेगों के मध्य एक स्पश्ट अन्तर नहीं होता है बेरेट (2006), केसीओपो, बर्नट्सन, लारसन (2000) ।

16.10 व्यक्ति को सकारात्मक सवेगों की आवश्यकता क्यों होती है?

कुछ मूल संवेग जन्मजात होते हैं फिर भी प्रश्न उठता है कि हमें सकारात्मक संवेगों की आवश्यकता क्यों पड़ती है। कुछ का कहना है कि ये सुख से सम्बन्धित होते हैं और जीवित रहने के लिये निम्नतम मात्रा में इनकी आवश्यकता होती है। पूर्व में भी कई वैज्ञानिकों ने इसे नकारा है किन्तु विकासवादी मनोवैज्ञानिकों ने सकारात्मक संवेगों को हमारे वातावरण में निपुणता के लिये अति आवश्यकीय बताया है। फ्राइडन वर्ग (1997) फैडरिक्सन (2001) ने सकारात्मक संवेगों को मानवीय व्यवहार में निपुणता के लिये एक आवश्यकीय घटक के रूप में बताया है। ये चुनौतियो का सामना करने व लक्ष्य प्राप्ति की कल्पना में सहायक होते हैं। हमारे मस्तिष्क को विचारों और समस्या समाधान के लिये खुला रखते हैं । लचीलेपन को पोशित कर स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं, दूसरों के प्रति सार्थक होकर आसक्ति उत्पन्न करते हैं, व्यक्ति को स्वयं नियमित होने की नींव रखते है और समूह सामाजिक व्यवस्था और राश्ट्र के व्यवहार को निर्देशित करते हैं। सकारात्मक संवेगो के अत्यधिक कार्य होने पर भी मनोवैज्ञानिकों के द्वारा इनकी अनदेखी की गई। आज तक भी मनोविज्ञान ने मानव जीवन के नकारात्मक पक्ष के ही अध्ययन पर अधिक बल दिया। उस मनोवैज्ञानिक व्यवहार का अध्ययन अत्यधिक हुआ, जो तनाव के कारण उत्पन्न नकारात्मक संवेगों व तनाव का सामना करते हुए उत्पन्न नकारात्मक संवेगों के प्रभाव में था। जबकि निपुण व्यवहार, सकारात्मक संवेगों और सक्रिय सामंजस्य के अध्ययन को अधिक बल नहीं मिला।

सकारात्मक संवेगो की जैविकी

सबूतों के आधार पर कहा जा सकता है हमारी कुछ सुखद प्रतिक्रियाये मस्तिष्क में एक रसायन उत्पन्न करती हैं जिन्हें न्यूरोट्रान्समीटर कहा जाता है। ये रसायन संदेशवाहक के

रूप में सूचनाओं को नर्व कोशिकाओं तक ले जाते हैं। खुशी की अनुभूति में ये न्यूरोट्रान्समीटर डोपिमाइन का सतर को बढ़ा देते है आसवे, आइजन एवं टरकिन (1999) । कुछ विशेश परिस्थितियों में भी न्यूरोट्रान्समीटर का स्तर बढ़ जाता है जो कि सकारात्मक संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को बढ़ाने में मदद करता है। सकारात्मक मनोविज्ञान के शोध बताते हैं कि सकारात्मक संवेग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जबकि इन सकारात्मक संवेगों की भूमिका को वर्शों से मनोविज्ञानियों ने नजर अंदाज किया है। सकारात्मक संवेगों को अध्ययन करना इसलिये भी कठिन था क्योंकि इसे प्रयोगशाला में प्रयोगात्मक रूप से कर पाना बहुत संभव नहीं है और सकारात्मक संवेग नकारात्मक संवेगों की तुलना में 1 अनुपात 3 से 4 अनुपात में होते हैं । एक सकारात्मक संवेग तो उसे 3 से 4 नकारात्मक संवेग फैडरिक्सन (1998)।

इसका कारण शायद नकारात्मक संवेग हमें आने वाले खतरों और रूकावटों की ओर आगाह या चेतावनी देते हैं, जिनकी कि हमें अनेक संभावित खतरों को रोकने के लिये आवश्यकता होती है। समस्त सकारात्मक संवेगों का स्वतः सक्रियण कम हो जाता है। विशिश्ट जैविक और न्यूरोलॉजिकल प्रक्रियायें नकारात्मक संवेगात्मक प्रक्रियाओं के साथ सहयोग करने लगती है जो कि अप्रत्याशित खतरों के द्वारा उद्वेलित हुई थी।

नकारात्मक संवेगों के द्वारा उत्पन्न हाव भाग सकारात्मक संवेगों की तुलना में अधिक पहचान लिये जाते हैं। जैसे भय, क्रोध व गुस्से में मुखाकृत भिन्न –भिन्न होती है किन्तु खुशी, प्रसन्नता, आनंद में मुखाकृत एक समान हँसता हुआ चेहरा होता है।

16.11 सकारात्मक संवेगों का व्यापक– और निर्माण सिद्धान्त The Broade- and- build Theory of Positive Emotions

बारबरा फेडरिक्सन (2001) Barbara Fedrickson (2001) का सकारात्मक संवेगों का व्यापक– और– निर्माण सिद्धान्त है। जो बताता है कि कैसे सकारात्मक संवेग व्यक्ति के दैहिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक संसाधनों के निर्माण में सहायक होते हैं। फेडरिक्सन ने सकारात्मक संवेगों की क्षमताओं के सम्बन्ध में यह सबसे पहले बताया। यह सिद्धान्त नकारात्मक संवेग– जैसे भय और क्रोध कैसे विकास और उत्तरजीविता के लिये कार्य करते हैं इसकी समझ पैदा करता है। फेडरिक्स के सिद्धान्त तक सकारात्मक संवेगों की ओर कम ध्यान दिया गया था ।

व्यापक– और–निर्माण सिद्धान्त बताता है कि कैसे सकारात्मक संवेग हमारी सोचने व क्रिया करने की नई सम्भावनाओं को राह दिखाता है और व्याख्या करता है, और इससे कैसे भलाई (Well – being) को बढ़ावा मिलता है इस बात को भी बताता है।

फेडरिक्सन के सिद्धान्त दो भेदों के महत्व पर केन्द्रित है। पहला मनोदशा और संवेग है । फेडरिक्सन के अनुसार मनोदशा संवेग की अपेक्षा एक सामान्य सकल्पना है। क्योंकि यह हमारे समस्त भावनाओं से सम्बन्ध रखती है और एक लम्बे समय तक बनी रहती है। जैसे– एक सप्ताह या एक हफ्ते तक । इसके विपरीत संवेग अधिक तात्कालिक स्थिति है, जो कि व्यक्तिगत घटना से जुड़ी हे। जैसे– 'ए' ग्रेड आने पर गर्व महसूस करना एक संवेग है और अच्छी मनोदशा व बुरी मनोदशा का होना सुखद व दुखद अनुभव सतत रूप में होता है किन्तु संवेग असतत् रूप में उत्पन्न होते हैं जैसे क्रोध, आश्चर्य, भय आदि । अतः मनोदशा सतत् रूप में व संवेग असतत् रूप में उत्पन्न होते हैं। फेडरिक्सन का सिद्धान्त असतत सकारात्मक संवेग जैसे – प्रेम, रूचि , हर्श, अभिमान (गर्व) और संतोश पर आधारित है।

दूसरा फेडरिक्सन (2002) कहती हैं कि सकारात्मक संवेग साधारण संवेदी भावनाओं से भिन्न है। जैसे यौन सन्तुश्टि व भोजन करना जब आप भूखे हों पूर्ण रूप से सकारात्मक संवेग से भिन्न अनुभूति है। ये सकारात्मक भावनाओं से सम्बन्ध रखते हैं साथ ही वह कहती है कि संवेदी खुशी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के प्रति स्वचालित प्रतिक्रिया है। सकारात्मक संवेग इसके विपरीत प्रकृति में अधिक मनोवैज्ञानिक हैं और व्यक्ति के जीवन की किसी घटना के मूल्यांकन व अर्थ पर निर्भर है न कि सिर्फ शरीर के भौतिक उद्दीपन पर। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि फैडरिक्सन का सिद्धान्त शरीर के हेडोनिक Hedonic (सुखात्मक) सुखों से सम्बधित नहीं है बल्कि ये उसके सिद्धान्त के लाभ हैं।

सकारात्मक संवेग की व्याख्या करने से पूर्व नकारात्मक संवेगों को समझना आवश्यकीय है। नकारात्मक संवेग जैसे क्रोध व भय का उद्देश्य अक्सर किसी विशेश क्रिया प्रवृत्तियों के रूप में व्याख्यान्वित होता है। कोई विशेश नकारात्मक संवेग जैसे 'भय' आदि का सम्बन्ध किसी क्रिया से होता है 'भय' का सम्बन्ध 'पलायन की इच्छा' से होता है और क्रोध का सम्बन्ध आक्रमण या लड़ाई की इच्छा से होता है। 'विशेश क्रिया प्रवृत्तियाँ' का यह अर्थ नहीं है कि व्यक्ति हमेशा किसी नकारात्मक संवेग के प्रति कोई विशेश क्रिया करे किन्तु नकारात्मक संवेग हमारे चिन्तन, सोच और क्रियाओं की अतिरिक्त सम्भावनाओं को प्रभावित करता है।

सकारात्मक संवेग 'विशेश क्रिया प्रवृत्तियों' की धारणा पर पूर्ण रूपेण अनुकूलित नहीं होता है। फेडरिक्सन की शोध समीक्षाएं बताती हैं कि संवेग जैसे 'हर्श' का सम्बन्ध अधिक विस्तृत है, किसी विशेश व्यवहार या विचार से नहीं। उसके व्यापक– और –निर्माण सिद्धान्त के अनुसार सकारात्मक संवेग जैसे 'हर्श', रूचि, संतोश, गर्व और प्रेम वस्तुतः एक दूसरे से

भिन्न है किन्तु सभी व्यक्ति की क्षमता को क्षणिक विचार –क्रिया निर्देशिकाओं को विकसित करती है। ये व्यक्तिगत स्थाई संसाधनों को भी निर्मित करते हैं साथ ही भौतिक , दैहिक, बौद्धिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक संसाधनों में वृद्धि करते हैं फेडरिक्सन (2001) । सकारात्मक संवेगों के लाभ नकारात्मक संवेगों की तुलना में अधिक व्यावहारिक और दीर्घकालिक है। जैसे 'हर्श' खेलने की इच्छा को बढ़ाता है नई सम्भावनाओं को बढ़ाता है और हमारी रचनात्मक प्रतिभा को व्यक्त करता है। खेल बच्चों के विकास के लिये एक महत्वपूर्ण क्रियाकलाप है। खेल के माध्यम से ताकत बढ़ती है मजाक का माहैाल होता है, हंसी होती है जो कि सकारात्मक सम्बन्धों के लिये आवश्यकीय है और साथियों की एक दूसरे के साथ आसक्ति बढ़ती है। कलात्मक अभिव्यक्ति, पहेली सुलझाना भी खेल का ही एक प्रकार है जो बौद्धिक और रचनात्मक प्रतिभा को विकसित करता है।

खेल के सभी सम्भावित प्रभाव व्यक्ति के भौतिक संसाधनों, मनोवैज्ञानिक संशाधनों, दैहिक संसाधनों समस्या समाधान, जीवन की चुनौतियो का सामना, सामाजिक संसाधनों का निर्माण व सुलझाना यह सब दूसरों के द्वारा सहयोग और मदद से सम्भव हो जाता है।

फैडरिक्सन चार प्रकार की व्याख्या करती है जो बताते हैं कि कैसे सकारात्मक संवेग हमारी चिन्तन– क्रिया कलापों के भण्डार को विस्तृत करता है और हमारे व्यक्तिगत संसाधनों में वृद्धि कर भलाई (Well being) को निर्मित करता है। 'भलाई' की मात्रा बढ़ने से सकारात्मक संवेगों के अनुभव बढ़ते हैं और स्वास्थ्य व खुशी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। व्याख्या निम्न प्रकार से हैः–

1. सकारात्मक संवेग हमारी चिन्तन क्रियाकलापों को विस्तृत करते हैं (Positive Emotions Broaden our thought Action Repertoires)-
2. सकारात्मक संवेग नाकारात्मक संवेगों को सकारात्मक संवेगों में बदल देते हैं। Positive Emotiion Undo Negative Emotion
3. सकारात्मक संवेग परिवर्तन को बढ़ाते हैं । Positive Emotions Enhance Resilience
4. सकारात्मक संवेग अन्तहीन, संसाधनों को निर्मित करते हैं व भलाई में सुधार करते हैं। Positive Emotions build Enduring Resources and Imporve Well being.

16.12 सारांश

उद्देश्यों के आधार पर सकारात्मक मनोविज्ञान का मुख्य अर्थ, सकारात्मक मनोविज्ञान व उसके कार्य या क्षेत्रों को बताया गया है। 1. सकारात्मक मनोविज्ञान भलाई और इष्टतम्

कार्य का विज्ञान है। 2. सकारात्मक मनोविज्ञान के तीन नोड होते हैं :– वस्तुपरक नोड, व्यक्तिपरक नोड और समूह नोड ।

सकारात्मक मनोविज्ञान का प्राचीन यूनानी दर्शन, मानवतावाद व मानसिक स्वास्थ्य के विभिन्न क्षेत्रों में एक अत्यधिक समृद्ध इतिहास है। मानवतावादी मनोविज्ञान सकारात्मक मनोविज्ञान के काफी करीब है किन्तु मुख्य जो अन्तर है वह सकारात्मक मनोविज्ञान का वैज्ञानिक विधियों पर अधिक बल देना है ।

सकारात्मक मनोविज्ञान के प्रासंगिक विशयों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से बताया गया है। पहला विशय सकारात्मक संवेगों के सम्बन्ध में है। सकारात्मक संवेग कैसे नकारात्मक संवेगों की तुलना में भिन्न है । आज के मनोंवैज्ञानिक परिपेक्ष्य में सकारात्मक सांवेगिक अनुभव हमारे अनुवांशिक कारणों से प्रभावित रहते हैं। फेडरिक्सन का सकारात्म्क संवेग का व्यापक–और–निर्माण सिद्धान्त (Broaden – and - Build Theory) सकारात्मक संवेगों के माध्यम से निर्मित किये जा सकते हैं। कैसे चार प्रकार से सकारात्मक संवेग हमारे चिन्तन प्रक्रिया को विस्तृत करने में, तनाव को कम करने में ,जीवन में परिवर्तन करने में और सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, व्यक्तिगत, भौतिक और दैहिक संसाधनों को निर्मित व विकसित करने में सहायक होते हैं।

16.13 मूल्यांकन प्रश्न

प्र.–1. हमें सकारात्मक मनोविज्ञान की आवश्यकता क्यों हो सकती है ।

प्र.–2. 'सकारात्मक मनोविज्ञान' और हमेशा की तरह मनोविज्ञान Traditional Psychology के बीच आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

प्र0–3. मानवता मनोविज्ञान से सकारात्मक मनोविज्ञान कैसे अलग हैं।

प्र0–4. सकारात्मक संवेग का व्यापक –और– निर्माण सिद्धान्त क्या है ?

16.14 संदर्भ ग्रन्थ

1. Positive Emotion in Education Reinhard Pekrun et. al. First Public.in:beyond coping, Meeting goal visions and challenges / ed.by EricaFrydenberg Edited by Oxford: University Press 2002, S 149-173.

2. Introduction to positive psychology Mcgraw.hill.co.uk/openup/ chapter/9780335241958. pdf.

3. www.positivepsychology.org.uk.

4. William Compton Introduction Positive Psychology Thomson Weds Worth 2005 United States.

5. Maslaw .A. 1954 The farthest reaches of human nature. New York. Viking

6. Seligman .M.Schulmen.P.Derubeis .R. and Hollen S. (1999). The prevention of depression & anxiety, prevention and treatment .2 Article-8 available on the World Wide web. : http: Journals.apa.org/prevention/volume2/pre0020008a.html

7. Seligman M.E.P. (2002) Authentic happiness . New York: Free Press.

8. Seligman M.E.P. & Csikszentmihalyi.M(Ed.) (2000) Positive Psychology {Speical Issue} American Psychologist , 55(1).

9. Maslaw, A.H, 1954 . Motivation and personality. New York : Harper & Row.

10. Stever Baumgardner. M. Crothers “Positive Psychology” I. Ad. public. Dorling Kindersly India Pvt. Ltd. (2009) .

इकाई–17 : पैसा, आनन्द एवं कल्याण
(Money Happiness and wellbeing)

17.0 प्रस्तावना

17.1 उद्देश्य

17.2 पैसा

17.2.1 पैसे व खुशी के संदर्भ में विभिन्न शोध अध्ययन

17.2.2 खुशी को प्रभावित करने वाले अन्य कारक

17.3 आनन्द या खुशी

17.4 कल्याण

17.4 आत्मगत कल्याणकारी माडल

17.5 सारांश

17.6 शब्दावली

17.7 निबन्धात्मक प्रश्न

17.8 संदर्भ सूची

17.0 प्रस्तावना

मानव विकास की प्रक्रिया से ही सुखमय एवं कल्याण कारी जीवन को संकल्पना जुड़ी है, अकसर हम यह सोचते भी है कि एक सुखमय जीवन क्या है? वास्तव में यह एक अध्ययन का विषय भी है कि किसी व्यक्ति के सुखमय एवं कल्याणकारी जीवन में खुशी (Happiness) एवं पैसे का कितना महत्व है।

आज के भौतिकवादी युग में विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में पैसा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है व्यक्ति विशेष की छोटी से छोटी एवं बड़ी से बड़ी जरूरतों को पूरा करने में उसकी अह्रम् भूमिका होती है परन्तु पैसे से ही व्यक्ति को खुशी मिलेगी यह कहना मुश्किल है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आनन्द, कल्याण एवं पैसे का मूल्य अलग–अलग होता है तदुपरान्त भी अरस्तू, प्लेटो एवं सुखरात यह विश्वास करते हैं कि वो लोग जो सदाचारी एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन जीते हैं वह वास्तविक आनन्द प्राप्त करते है''

चूकिं खुशियां एवं आनन्द का सम्बन्ध हमारी भावनाओं से होता है इसलिए आनन्दकारी जीवन व कल्याणकारी जीवन के लिए सकारात्मक भावनाओं का होना भी आवश्कीय है और इन दोनो के मध्य सामजस्य बनाये रखने में पैसे की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है।

प्रस्तुत इकाई में पैसा (Money) आनन्द (Happiness) एवं कल्याण (wellbing) पर विस्तृत चर्चा की जा रही है।

17.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढने के पश्चात् आप जान पायेगे—

(1) पैसा क्या है, पैसे व खुशी में क्या सम्बन्ध है

(2) आनन्द की परिभाषा व उसके प्रकार

(3) कल्याण व आत्मगत कल्याणकारी माडल

17.2 पैसा (Money)

आधुनिक युग में पैसा विकास का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ बनता जा रहा है व्यक्ति के सुखमय जीवन के लिए पैसे से ही विभिन्न संसाधन जुटाये जाते हैं प्रत्येक देश की नीति अपने नागरिकों के ज्यादा से ज्यादा सुविधा देना होता है ताकि दो सुखी रह सकें पर यहां यह सवाल उठना लाजिमी है कि किसी व्यक्ति की वैयक्तिक खुशी में पैसे का कितना योगदान रहता है? अगर हम आर्थिक दृष्टिकोण (Economic views) की बात करें तो सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि धनी देश के व्यक्ति निर्धन देश के व्यक्तियों से ज्यादा खुश हैं। क्यों कि पैसे से जीवन सन्तुष्टि से सम्बन्धित विभिन्न सुख सुविधायें जुटाई जा सकती हैं, लोगो को यह भी विश्वास होता है कि खुशी एवं पैसा दोनो ही व्यक्ति की प्रतिष्ठा में वृद्धि करते हैं क्योंकि व्यक्ति पैसे से भी खुशियाँ खरीदता है। पैसा जीवन सन्तुष्टि के लिए भी एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है।

उपरोक्त सभी सामान्य अवधारणाओं से यह सिद्ध नहीं कर सकते है कि किसी व्यक्ति की खुशी का मापन उसकी निरन्तर पैसे की वृद्धि से हो, व्यक्ति को खुशी के मापन के लिए बहुत से अन्य कारको का योगदान होता है इस संदर्भ में विभिन्न शोध अध्ययनों का विवरण दिया जा रहा हैं।

12.2.1 पैसे व खुशी (Happiness) के संदर्भ में विभिन्न शोध अध्ययन—

1. कैम्बवैल एवं साथी (1976) ने अपने शोध में जीवन सन्तुष्टि के स्त्रोतो में पैसे के स्थान (Remek) का अध्ययन की और पाया कि जीवन सन्तुष्टि के स्त्रोतो में पैसे का 11 वॉ स्थान है।

2. शिकागो द्रिव्यून जैसा कि हमने पहले भी कहा है कि पैसा व्यक्ति की खुशियों में वृद्धि करता है, इस बात को देखने के लिए शिकागो द्रिव्यून ने एक सर्वेक्षण किया सर्वेक्षण के अनुसार ''जिसकी आय बहुत कम थी जो प्रति वर्ष 30,000 डालर कमाते उन्होने कहा कि प्रति वर्ष 50,000 डालर में वो अपने सपने पूरे कर सकते हैं

जो 1.00000 (एक लाख) डालर कमाते उन्होंने कहा कि 2,50,000 में सन्तुष्ट रह पायेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पैसे की वृद्धि के अनुपात के अनुसार खुशी में कुछ बिन्दुओं में इजाफा तो होता हैं परन्तु बहुत ज्यादा पैसे होने पर खुशियों में इसका उतना प्रभाव नही होता है।

3. डाईनर, निकरसन, लुकास सैण्डविक (Diener Nickerson lucas & Sandvick (2002) ने पैसे का खुशियों पर प्रभाव देखने के लिए अध्ययन ''एण्ड्रयू डव्ल्यू मेलन फाउन्डेशन से अभिप्रेरित होकर किया और पाया कि पैसा एवं खुशी (Happiness) हमारे सम्बन्धों को द्विदशिक (Bidiractinal) तरीके से प्रभावित करती है अर्थात् पैसा हमारी आवश्यकताओं की पूर्ती करते हुए संबधों एवं खुशियों दोनों में वृद्धि करता है। परन्तु इन सम्बन्धों एवं खुशियों को स्थिर बनाये रखने के लिए हमें निरन्तर पैसा कमाना पड़ता है।

4. डाईनियर एवं साथी (Dienear and his calleagual) ने अपने अध्ययन में यह भी देखा कि माता–पिता की आय (Income) का बच्चों की प्रसन्नता पर प्रभाव पड़ता है, आय बढ़ने के साथ बच्चों की खुशी में वृद्धि होती है और आय घटने के साथ खुशी कम होती है।

इसी के साथ दूसरी तरफ प्रसन्नता (Happines) का प्रभाव पैसे पर देखने के लिए डाईनियर एवं उसके साथी ने जो अध्ययन किये उसका परिणाम यह निकला कि – कालेज के छात्र जो ज्यादा प्रसन्न रहते हैं वो अपने भविष्य में ज्यादा पैसा कमाते हैं, इस संदर्भ में डाईनियर व उनके साथियों ने तीन तरीके से विवरण किया।

प्रसन्न छात्र–छात्राओं की अभिवृत्ति मैं कर सकता हूँ/सकती हूँ को बढ़ावा देती है। अर्थात वो नये कार्यो को भी जोखिम लेकर करने का साहस करते है और मेहनत कर ज्यादा पैसा कमाते हैं।

इ. प्रसन्नता एक सकारात्मक गुण है जिसका दूसरे लोग तारीफ करते हैं जो सामाजिक कौशल (Social skills) को एवं सामाजिक सम्बन्धों को बढ़ाता है।

ब. प्रसन्न लोगों को अन्य लोग ज्यादा पसन्द करते हैं। क्योंकि प्रसन्नता एक सकारात्मक

गुण है सकारात्मक अभिवृद्धि (Positine Attituude) के कारण प्रसन्न लोगों को उनके कर्मचारी ज्यादा पसन्द करते है जो उनकी आप को बढ़ाने में मदद करती है।

5. डाईनियर व उनके साथियों ने 1976 में कॉलेज में प्रवेश लेने वाले प्रथम वर्षीय छात्रों पर एक सर्वेक्षण किया पुनः 19 वर्ष बाद यानि 1995 में उनका पुनः सर्वेक्षण कर प्रसन्नता व पैसे का प्रभाव देखा उन्होंने अपने निष्कर्ष में पाया कि–

जो बच्चे प्रवेश के दौरान अत्यधिक प्रसन्न थे और सोचते थे कि अपने कैरियर में ज्यादा पैसा कमायेंगे, अपनी अपेक्षाओं के अनुकूल कार्य न मिलने पर उनमें बेरोजगारी, कार्य असन्तुष्टि देखने को मिली इसके विपरीत उन बच्चों के जिन्होंने कैरियर के दौरान कम अपेक्षा रखी वो अपने जीवन में ज्यादा प्रसन्न दिखाई दिये।

उपरोक्त अध्ययनों से स्पष्ट है पैसा जीवन को चलाने का एक माध्यम है पैसे के कारण खुशी मिल सकती है परन्तु पैसा ही खुशी का एकमात्र कारक हो यह कहना उचित नहीं है क्यों आन्नदमयी जीवन (Happiness life) को पैसे के अतिरिक्त अन्य कारक भी प्रभावित करते है। जिनकी संक्षिप्त चर्चा निम्न की जा रही है।

17.2.2 खुशी को प्रभावित करने वाले अन्य कारक–

1. **आनुवंशिकता (Genetic)**– व्यक्तियों की मनोदशा एवं चित्त को प्रभावित करने में वातावरण एवं आनुवंशिकता (भ्मतपकपजवतल) दोनो का प्रभाव होता है जो जीवन पर्यन्त चलते हैं। आनुवंशिकता के कुछ अध्ययन यह बताते है कि ″40 से 50ः प्रसन्नता (Happiness) जीन्स से प्राप्त स्वभाव को दर्शाता है″ जैसे– अगर व्यक्ति का स्वभाव आन्नदमय या खुश मिजाज है तो वह ऐसे कार्यो का चयन करता है जिससे खुश रह सके वहीं दुःखी प्रवृत्ति का व्यक्ति अपने अनुकूल वातावरण ढूढ़ लेता है।

ल्यूमबोमस्काई (Lyumbomirsky)– ल्यूमबोम स्काई ने अध्ययन में पाया कि 50ः खुशी आनुवंशिक होती है 10ः परिस्थितियों से प्राप्त होती है और 40% व्यक्ति की स्वंय द्वारा या वैयक्तिक नियन्त्रण द्वारा प्राप्त होती है।

उन्होंने अपने अध्ययन में यह भी कहा कि ″Appear to experience-indeed to reside in – different subjective worlds इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपनी खुशियों एवं दुःख की व्याख्या व्यक्तिपरक आख्या (Subjective Interpretation) द्वारा करते हैं।

2. **व्यक्तित्व (Personality)**– पैसे के अतिरिक्त हमारी खुशी में व्यक्तित्व का भी योगदान होता है व्यक्तित्व व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक क्रिया कलापों का योग माना जाता हैं व्यक्तित्व पर हुए अध्ययन है बताते है कि व्यक्तित्व शीलगुण (Personality Traits) जैसे प्रसन्ता (Cheerfulness) आशावादिता, बर्हिमुखता (Extrorersion) आत्मगर्वता (Selfsteem) एवं वैयक्तिक नियन्त्रण ऐसे शीलगुण जो व्यक्ति को सकारात्मकता की तरफ ले जाते है और हमारी खुशी एवं कल्याण से सम्बन्धित है जबकि इसके विपरीत शीलगुण व्यक्ति की नकारात्मकता को बढाते हुऐ उसकी खुशी में कमी करते है। अर्थात इससें यह सिद्ध होता है कि पैसा प्रसन्न व्यक्तित्व का निर्माण नही करता।

3. **वातावरण (Envirorment)** – व्यक्ति की खुशियों में उसके वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामजिक का भी प्रभाव पड़ता है यदि व्यक्ति के व्यक्तिगत सम्बन्ध परिवार व समाज में मधुर है तथा वो सभी एक दूसरे का ख्याल रखते है, एक दूसरे के सुख व दूख में शामिल रहते हैं एक दूसरे के साथ सहयोगी एवं सकारात्मक दृष्टिकोण बनाये रखते है ऐसी स्थिति में व्यक्ति में खुशी या आनंद का अनुपात ज्यादा होता है बजाय दुखत व तनाव पूर्ण वातावरण में रहने वाले लोगो से।

17.3 आनंद या खुशी (Happiness)– आनंद या खुशियों का सम्बन्ध हमारे जीवन से होता है अतः स्वाभाविक रूप से प्रश्न मन में आता है कि एक आनन्दमय या खुशनुमा जीवन क्या है या दो कहें कि एक बेहत्तर जीवन क्या है अथवा खुशियों एवं आनंद का आधार क्या है?

"प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों ने कहा है कि एक अच्छे जीवन में ज्यादा से ज्यादा खुशी या आनन्द तथा कम से कम दर्द होता है"

अधिकांशतः हम खुशियों को एक अच्छे जीवन के रूप में परिभाशित करते हैं जिसके लिए माता–पिता, शिक्षक, सरकार, धर्म आदि सभी व्यक्ति को प्रोत्साहित करते हैं। व्यक्ति अपने जीवन से कुछ आशाये या उम्मींद, लक्ष्य तथा महत्वाकांक्षा रखता है और यह आशा करता है कि इन तीनों से उसे खुशी मिलेगी अथवा आनंद प्राप्त होगा।

खुशी के संदर्भ में विभिन्न विद्धानो के अलग–अलग विचार है–

आनंद की परिभाषा (Defenition of Happiness)– खुशी या आनंद के सम्बन्ध में अलग–अलग विद्धानो के अलग दृष्टिकोण है जिसे निम्न प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. **दार्शनिक एवं धार्मिक विचारक (Philosopess and Religious Thinkers)**:– ने खुशी को परिभाषित करते हुए कहा है कि **"आनंद या खुशी एक शब्द**

है जिसमें व्यक्ति प्रायः अपने अच्छे जीवन से सम्बन्धित संवेगो को प्रदर्शित करता है"

2. **फ्यूजी सम्प्रतय (Fuzzy Concepy)**– फ्यूजी सम्प्रतय का अर्थ है कि आनंद या खुशी के संदर्भ में विभिन्न लोगो के विभिन्न विचार होते है वैसे खुशी या आनंद की पटचान करना मुश्किल है क्योंकि खुशी का मतलब हर व्यक्ति के लिए अलग होता है

3. **मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणः**– में सकारात्मक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण को रखा जाता है यह मानता है कि अगर हमें आनंद या खुशी के संदर्भ में जनना है तो हमें एक गुणवत्ता पूर्ण जीवन के संदर्भ में जानना होगा। इसके लिए व्यामीकरणका मूल्यांकन भी करना पडेगा। वैसे तो खुशी के संदर्भ में एक औपचारिक परिभाषा देना कठिन है फिर भी खुशी को परिभाषा करते हुए कहा जा सकता है कि कि **"खुशी कल्याण की एक मानसिक एवं संवेगात्मक अवस्था की विशेषता है जिसमें व्यक्ति सकारात्मक एवं सुखकर संवेगो की तीव्रता को व्यवस्थित करते हुए सन्तोष एवं प्रसन्नता प्राप्त करता है।"**

आनंद या खुशी पर चर्चा करते हुए यह बताना जरूरी है कि ग्रीक दार्शनिकों ने वास्तविक खुशी को दो प्रकार की खुशियों का मिश्रण माना है।

1. **हेडोनिक (Hedonic)**– हेडोनिक खुशी अर्थात् सुखेन्द्रिय खुशी। इस खुशी में इन्द्रियों द्वारा प्राप्त दिये गये भौतिक खुशी की प्रधानता होती है

2. **युडोमोनिक खुशी (Eudaimoric Happrinss)**– यूडोमोनिक खूशी वह खुशी है जो जीवन के अर्थ एवं उद्देश्य से सम्बन्धित है।

अरस्तू ने यूडोमोनिक खुशियों में सम्बन्ध में लिखा है खुशियाँ या आनन्उ को आत्मसात (Self realization) करने, अपने आप को अभिव्यक्त करने तथा अपने आन्तरिक क्षमताओं (Inner Potentials) को समझने के द्वारा परिभाषित किया जाता है।

सैलिगमैन (Seligman) ने वास्तविक खुशी या आनंद को जीवन जीने के तीन तरीको का मिश्रण माना है–

1. **आनंदमय जीवन (Hapfriness Life)** – जीवन सकारात्मक भावनाओं से पूर्ण होता है जैसे– कृतज्ञता, शान्ति, उत्सुकता सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ या कल्याणकारी (Wellbing) जीवन का अभिन्न हिस्सा है ये सकारात्क भावनायें विचारों को सकारात्मक बनाने में मदद करती है। अपनी पुस्तक (Positine Psycholoyes) में मनोवैज्ञानिक सैलिगमैन ने इस बात पर भी चर्चा की है कि सकारात्मक मनोविज्ञान मात्र रोग अक्षमता एवं

विकारों का अध्ययन नही है वरन उसका उद्देश्य यह भी है कि सक्षमता, शक्ति एवं सद्‌गुणों का अध्ययन किया जाय। मनोवैज्ञानिक उपचार में गलत करे सही करना नही वरन सही को स्थापित करना और विकसित करना भी है।

2. कर्तव्यशील एवं कर्मठ जीवन–कर्तव्यशील एवं कर्मठ जीवन कार्यक्षमता एवं कर्म से प्राप्त हुई चेतना पर केन्द्रित है अगर व्यक्ति की चेतना उसे कर्तव्यशील जीवन का अहसास कराती है और वह निश्चित रूप से अपने कर्तव्यों का पालन करता है तो जीवन में सन्तोष व आनंद प्राप्त करता है।

3. अर्थपूर्ण जीवन (Meaningful Life) अर्थपूर्ण जीवन व्यक्तिगत स्वार्थ से परे की गई सेवा कर्म एवं चिन्तन का पर्याय है। जब भी हम जीवन में स्वार्थ से परे कुछ कार्य करते हैं तो हमें संतोष एवं खुशी की अनुभूति होती है यह सूख एंव सन्तोष व्यक्ति के अन्दर एक उर्जा का संचार करता है तथा व्यक्ति एवं समाज के प्रति उसके चिन्वन कों सकारात्मकता की वृद्धि करता है जो एक आनंद की अनुभूति प्रदान करती है।

खुशी या आनंद के स्त्रोतो को जानने के लिए विभिन्न शोधकर्त्ता समूह (Research Group) दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, जैविक वैज्ञानिक, धार्मिक विद्धान आदि कार्य कर रहे है और अपने विचार को उजागर कर रहे हैं। क्योंकि अन्ततः जीवन का लक्ष्य आनंद एवं कल्याण काटी जीवन है इसलिए संयुक्त राष्ट्र (unitel Nation) ने 20 मार्च को अन्तराष्ट्रीय आनंद दिवस (International day of heppiness) को मान्यता दी है।

17.4 कल्याण (Wellbing)

मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य सुखमय व कल्याणकारी जीवन से सम्बन्धित है, कल्याणकारी जीवन की परिकल्पना ने ही मानवतावाद को जन्म दिया, दुनिया के सभी देश अपने नागारिको के कल्याण पर चिन्तन करते है और उसे यथार्थ स्थिति में लाने के लिए विधिक, नैतिक एवं सामाजिक व वैयक्तिक व्यवहार द्वारा नियन्त्रण करने का प्रयास किया जाता है।

राईफ (Ryff) ने कहा है कि जीवन में आनंद से ज्यादा कल्याण (Wellbing) स्थान रखता है कल्याण एक ऐसा स्त्रोत है जो विपत्ति को पलट देता है, वह सकारात्मक क्रिया वैयक्तिक दृढ़ता एवं मानसिक स्वास्थ्य को दर्शाता है।

सामान्य तौर पर हम प्रसन्न या खुश व्यक्ति को मानसिक तौर पर स्वस्थ समझते हैं क्योकि प्रसन्न व्यक्ति (Happy People) अवसाद दबाब एवं चिन्ता से दूर रहते है, परन्तु

वास्तव में कई बार ऐसा नही होता क्योंकि कुछ व्यक्तियों को दूसरो का उत्पीडन कर खुशी का अनुभव होता है वो उस समय अत्यधिक आनंद का अनुभव करते है जब वो दूसरे को अत्यधिक उत्पीडित करते है ऐसे लोगो को प्रायः मानसिक रूप से अस्वस्थता के दायरे में रखा जाता है– इस प्रकार के उदाहरणों को कल्याण (Wellbing) के अन्तर्गत नही रखा जाता है।

कल्याणकारी जीवन के लिए ग्रीक मनोवैज्ञानिकों ने यूडोमोनिक (Eudaimanic) शब्द का प्रयोग किया है यूडोमोनिक सम्प्रत्तय एक स्वस्थ एंव अस्वस्थ खुशी या आनंद (Happriness) में अन्तर दर्शाता है साथ ही व्यक्ति को एक अर्थपूर्ण एवं उद्देश्य पूर्ण जीवन जीने को प्रेरित करता है। सकारात्मक मनोविज्ञान व्यक्तियों के इस दृष्टिकोण को आत्मगत कल्याण (Wellbing) कहा जाता है।

17.4.1 आत्मगत कल्याण– (Subjectine Well Being) सन् 2000 में डाईनियर आत्मगत कल्याण (SWB - Subjectine wellbeing) का सम्प्रत्तय दिया आत्मगत जैसा नाम से ही विदित है स्वंय का इस सम्प्रत्तय के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति का अपने जीवन एवं खुशियों के सम्बन्ध में अपना अलग दृष्टिकोण होता है वह अपने अनुभवों, खुशियों एवं संवेगो का सवंय मूल्याकन करता हैं आत्मगत कल्याण या SWB में भावत्मक एवं संज्ञानात्मक दोनो प्राकार के अनुभवों का मूल्यांकन किया जाता है। इसे हम इस प्रकार भी कह सकते है कि जब व्यक्ति को सुखी अनुभव ज्यादा एवं दूख देने वाले संवेग अत्यधिक कम प्राप्त होते है वह अपने जीवन के क्रिया कलापों में रूचि लेता है उसे अपने जीवन से सन्तुष्ट हौ अर्थात संक्षिप्त में जिसे हम अच्छा जीवन (Good life) कहते है उसी शब्द को आत्मगत कल्याण या SWB (Subjectine Well being) कहा गया है।

राईफ (Ryff) ने कहा है कि "कल्याण (Wellbing) और आनंद मानवीय दृढ़ता, व्यक्तिगत प्रयास (Parsonal striving) और विकास पर निर्भर करता है।"

आत्मगत कल्याण का मापन (Measuring Subjecine Well being SWB)– प्रारम्भ के शोधकर्त्ता लोगो की खुशी की जाँच सीधे तौर पर कर लेते थे तत्पश्चात राष्ट्रीय सर्वे (National Servays) में 10 हजार लोगों से आनंद के सन्दर्भ में प्रश्न पूछा गया ताकि खुशी क्या है जीवन सन्तुष्टि क्या है तथा भाव (Feeling) क्या है के सम्बन्ध में निर्णय लिया जा सके।

शोधकत्ताओं ने उनसे निम्न प्रश्न पूछे जैस– तमाम परिस्थितियों को दिमाग में रखकर यह बताईये कि आजकल आपका जीवन कैसा चल रहा है

1. बहुत अच्छा
2. अच्छा
3. बिल्कुल अच्छा नही

उपरोक्त प्रश्नों के आधार पर लोगों के कल्याण व खुशी का मापन दिया जाता था। परन्तु वर्तमान समय में SWB के मॉडल को विभिन्न मनोवैज्ञानिक ब्राण्ड एवं वेराफ (Bryant and Verhoff 1982 कौम्पटन स्मिथ, कौरनिस एवं क्वैल्स 1996 (Compton Smith] Cornish and Qualish 1996) के द्वारा दिये गये विभिन्न शोध अध्ययनों के उपरान्त लाया गया उक्त मनोवैज्ञानिक ने जो प्रतिदर्श ै(उचसम) लिया उनमें तीन चरो (Varable) खुशी (Happiness) सन्तुष्टि (salifisfaction) तथा संवेग (Emotion) का मापन किया गया इन चरों के मध्य सम्बन्धों को जानने के लिए कारक विश्लेषण (Factoranalysis) का प्रयोग किया गया।

SWB के इस मॉडल के तीन भाग (Componants) निम्न है

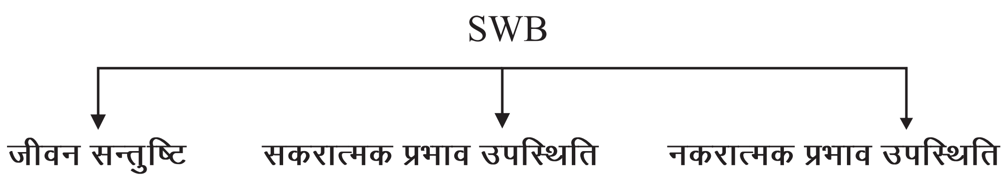

1. **जीवन सन्तुष्टि (life Sationfaction)**– जीवन सन्तुष्टि को एक संज्ञानात्मक निर्णय के रूप में जाना जाता है जिसमें इस बात का मापन किया जाता है कि कोई व्यक्ति अपने जीवन से कितना सन्तुष्ट है और कितना नही।

2. **सकरात्मक प्रभाव (positive Affact)**– इसमें व्यक्ति के जीवन के सकरात्मक अनुभवों के सकरात्मक पक्ष को देखा जाता है इसमें व्यक्ति अधिकशतः तीव्रता के साथ सकारात्मक भावों को प्रेषित करता है, इसमें उन अनुभवों को मापन किया जाता है जो सकारात्मक प्रभाव डालते है।

जैसे–आपने पिछले 30 दिनों में कितने समय प्रसन्नता (Cheefulness) अच्छी तेजस्थिता, अत्यधिक खुशी, शान्ति एवं सन्तुष्टि के साथ जीवन जिया।

1	2	3	4	5
अत्यधिक	अधिक	सामान्य	कम	बहुत कम

3 **नकरात्मक प्रभाव (Negative Affact)**– नकरात्मक प्रभाव में उन संवेगों को रखा जाता है, जब व्यक्ति अधिकत्तर भावों को प्रेषित करता है।

जैसे– क्या आपने पिछले 30 दिनों में कितने समय स्वंय को अत्यधिक दुःखी, बैचेन, निराश एवं असहाय का अनुभव किया।

1	2	3	4	5
अत्यधिक	अधिक	सामान्य	कम	बहुत कम

उपरोक्त मॉडल में जो व्यक्ति अपने जीवन में स्वंय को अत्यधिक सन्तुष्ट अनुभव करते हैं वो SWB (Subjective Well Being) में उच्च प्राप्तांक प्राप्त करते हैं और अपने जीवन में सुखी रहते हैं परन्तु यहाँ यह कहना भी समीचीन होगा कि आत्मगत कल्याण माडल इस बात को निर्धारण नही करता है कि कोई व्यक्ति अपने जीवन में खुश या नाखु क्यों है।

उपरोक्त माडल एवं तथ्यों से यह स्पष्ट है कि कल्याण (Well Being) जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है। इसके अभाव में एक व्यवस्थित जीवन एवं समाज की कल्पना करना भी कठिन है।

17.5 सारांश

आज के भौतिक वादी युग में पैसा (Money) एक महत्वपूर्ण साधन बनता जा रहा है , व्यक्ति अपने छोटी से छोटी एवं बड़ी से बड़ी जरूरतों को पूर्ण करने के लिए पैसे पर निर्भर हो रहा है साथ ही अपने जीवन को सुखमय व सुविधा सम्पन्न बनाने को कोशिश में लगा है, ताकि वह अपने जीवन में अधिक से अधिक आनंद प्राप्त कर सके या खुश रह सके। परन्तु सवाल यह है कि क्या पैसे मे वृद्धि के साथ खुशी में वृद्धि होती है– इस संदर्भ में विभिन्न शोध अध्ययन हुए है ये तमाम अध्ययनों के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि पैसा एक सीमा तक व्यक्ति की खुशी में वृद्धि कर सकता है पर पैसे से ही खुशी प्राप्त हो यह कहना कठिन है क्यों कि खुशी को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारक है जैसे – आनुवंशिकता, व्यक्तित्व एवं वातावरण।

इस प्रकार खुशी हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है आनंद या खुशी (Happuness) का सम्बन्ध हमारे भावों एवं संवेगो से होता है संवेगो व भावों की ऐसी अनुभूति जो हमें आनंद

या खुशी का बोध कराती हैं। खुशी को ग्रीक दार्शनिको ने दो भागों में विभक्त किया है–

1. हेडोनिक खुशी
2. यूडोमिनिक खुशी।

सैलिगिमैन ने भी वास्वतिक खुशी को जीवन जीने के तीन तरीको आनंदमयी जीवन, कर्तव्यशील व कर्मढ जीवन तथा अर्थपूर्ण जीवन का मिश्रण माना है।

जहाँ तक कल्याण की बात है कल्याण मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य है कल्याणवादी जीवन की परिकल्पना ने मानवता को जन्म दिया कल्याण जीवन को अर्थपूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण तरीके से जीने के लिए प्रेरित करता है राईफ ने इसकी महत्ता बताते हुए कहा कि "कल्याण एक ऐसा स्त्रोत है जो विपत्तियों को पलट देता है।"

कल्याण के मापन के लिए विभिन्न शोध समूह, मनोवैज्ञानिक एवं विद्वान कार्य कर रहे है। डाईनियर ने सन् 2000 में आत्मगत कल्याण की खोज की, तत्पश्चात् कुछ विद्वानों के सहयोग से इसे एक माडल का स्वरूप दिया गया जिसके द्वारा व्यक्तियों की जीवन सन्तुष्टि, सकारात्मक प्रभाव व नकरात्मक प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

17.6 हैडोनिक–इन्द्रियों से प्राप्त खुशी

यूडोमोनिक खुशी– जीवन के अर्थ एवं उद्देश्य से प्राप्त होने वाली खुशी (हडोनिक व यूडोमोनिक ग्रीक भाषा की शब्दावली है।)

Positive Affect- सकारात्मक प्रभाव

17.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्या पैसे के वृद्धि के साथ खुशियों में वृद्धि होती है? स्पष्ट कीजिये।
2. आनंद किसे कहते है हेडोनिक एवं यूडोमोनिक आनंद को समझाइये।
3. मानव जीवन का मूल मंत्र कल्याण है स्पष्ट कीजिये।
4. कल्याणके एस.डब्लू.बी. (S.W.B.) (Subective Wellbing) माडल की विवेचना कीजिये।
5. टिप्पणी लिखिये
    1. पैसा
    2. कल्याण का सकरात्मक प्रभाव

17.8 संदर्भ सूची

1. Steve R.Baumgardner Marie K. Crothers– Positivie psychology Indian Edition Published Dr Dorling Kindersley India Pvt. Ltd.

2. Seligman M-Authentic happiness using the new Psychotoge

3. Subjective well being: From Wikipedia the free encyclopedia

4. Authentic Happriness and well being& Positi psycho loggnews.com

इकाई– 18 : परानभूति आभार एवं क्षमादान

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य – प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य इन तीनो का वर्णन करना है
18.3 इकाई का शीर्षक परानभूति आभार एवं क्षमादान
18.4 परान्भूति
18.5 परानुभूति के प्रकार
18.6 परानुभूति परक सम्बन्ध
18.7 परानुभूति का विकास
18.8 एलैक्सीथीमिया
18.9 मेरिन्यूरान क्रिया
18.10 आशावाद
18.11 आशा के भाग
18.12 चिकित्सात्मक संदर्श
18.13 कोपिंग की श्रेणिया
18.14 आशावाद तथा स्वास्थ में वृद्धि
18.15 आशावाद एक सामाजिक स्त्रोत
18.16 क्षमा दान
18.17 क्षमादान के विरोधी विचार
18.18 सारांश
18.19 बोधात्मक प्रश्न
18.20 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

परानुभूति जिसको अंग्रेजी इम्पैथी कहते हैं का उद्दभऊ प्राचीन ग्रीक शब्द इम्पैथिया से हुआ जिसका अर्थ दैहिक आकर्षण या इच्छा था. परानुभूति की बहुत सी परिभाषा हैं जो

सवोगिक दशा की एक लम्बी श्रंखला को वर्णित करती है जैसे अन्य लोगों कि परवाह करना सहायता करने की इच्छा रखना अन्य व्यक्तियों के संवेगो के समान संवेग रखना दूसरे व्यक्ति के चिन्तन या अनुभव में घुल मिल जाना तथा स्व एवं अन्य लोगों की भावनाओं के मध्य कम से कम अन्तर रखना चूंकि परानुभूति अन्य लोगो की संवेगातमक दशा से संबन्धित है इसलिये इसको संवेग का मार्गदशी भी कहा जा सकता है उदाहरण दैहिक अनुभूति से संवेग केन्द्रीय रुप मे परिणत किया जा सकता है लेकिन शारिरिक भाषा के अतिरिक्त विश्वास एवं इच्छा शक्ति का समुच्चय भी परानुभूति के लिये आवश्यक है स्वयं को किसी दूसरे व्यक्ति के रुप में कल्पनाशील प्रक्रिया है चाहे जो हो संवेग को पहचाने परानुभूति योग्यता जन्मजात होती है और यह अचेतनतया प्राप्त की जा सकती है इसका प्रशिक्षण तीव्रता एवं परिशुद्धता की विभिन्न मात्राओ पर होता है।

परानुभूति की विशेषता निम्नलिखित होती है परानुभूति की अन्तरू क्रिया में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के आंतरिक संवेगो को पूर्णतरू पहचान लेता है तथा तदनानुसार प्रक्रिया करता है यह सामवेगिक स्थिति एवं व्यक्तिगत विशेष से समबन्धित होती है और प्रत्यभिग्या जो परिशुद्ध एवं सहनीय हो परानुभूति का मूल केन्द्र होती है यह मानव की विशेषता है कि वह दूसरे व्यक्ति के भाव, भावनाओं व संवेगो को स्वयं में समाहित कर लेता है लेकिन ऐसा तभी होता है जब वह व्यक्ति उस संबन्धित व्यक्ति के साथ मानसिक रूप से पूरी तरह जुड़ा है।

18.2 उद्देश्य दृ प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य इन तीनो का वर्णन करना है

18.3 इकाई का शीर्षक परानभूति आभार एवं क्षमादान

18.4 परान्भूति

चूंकि भाव, भावनाएं एवं संवेग, क्रिया प्रतिक्रिया का स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति में एक ही समान होता है इसलिये परानुभूति से युक्त प्रायरू वैसी ही प्रतिक्रिया करता है आश्चर्य की बात तो यह है कि वाचिक प्रतिक्रियाएं भी प्रायरू वैसी ही हो जाती हैं परानुभूति सहानुभूति, दया एवं संवेगात्मक जुड़ाव से अलग है संवेगात्म्क खिचाव सिंपैथी या परानुभूति संबन्ध दूसरे से संबन्ध उसे अपेक्षाकृत अधिक प्रसन्न देखने की अनुभूति से संबन्धित है दया एक ऐसी अनुभूति है जो दूसरे को परेसानी में देखकर उत्पन्न होती है क्योंकि संकर मे रेहने वाला व्यक्ति अपनी परेशानी को बता नही पाता संवेगातमक खिचाव प्रायरू अवोध बच्चे के लिये होता है.

18.5 परानुभूति के प्रकार

भावात्मक एवं संवेगात्मक परानुभूति – परानुभूति को दो मुख्य भागों में बांटा जा सकता है. भावात्मक परानुभूति इसे संवेगात्मक परानुभूति भी कहा जाता है यह एक ऐसी योग्यता है जिससे व्यक्ति दूसरो के मानानुभुती अवदशा के अनुकूल अपने संवेग को उत्पन्न कर उचित प्रक्रिया करता है हमारी संवेगिक रुप से परानुभूति करने की योग्यता सावेगिक खिचाव पर ही आधारित है

जो दुसरों के संवेगों की उद्दोलन दशा से प्रभावित है। संवेगिक परानुभूति यह एक ऐसी विशेषता है जिससे संज्ञानात्मक हम दूसरे के परिपेक्ष वह अनुनुभूती दशा को समजते है संज्ञानात्मक परानुभूति व मन का सिद्धान्त प्रायरू समानार्थक संदर्भ में प्रयुक्त किये जा सकते हैं.परंतु अध्ययनों की कमी के कारण मन के सिद्धांत एवं परानुभूति के प्रकारों में तुलना नहीं हो पाती इसलिये यह स्पस्ट नहीं है के दोनों समानार्थक हैं या नहीं यद्दपि परानुभूति को वैज्ञानिक परिभाषा नहीं मिली हो फिर भी जनमत

यही स्वीकार करता है संज्ञानात्मक एवं भावात्मक परानुभूति के मध्य अन्तर विभिन्न दशाओं में देखा जा सकता है मनोविकार, मनोविदलता आत्ममोह मस्तिष्कीय क्षति से संबंधित है परन्तु इसके साथ संज्ञानात्मक परानुभूति नहीं की जा सकती है इसके साथ संज्ञानात्मक व भावात्मक सम्बन्ध बनाना पड़ता है.यद्दपि विज्ञान इन अनिमितीयो की से सहमत नहीं है फिर भी यह अंतर जनमत के द्वारा मान्य है संज्ञात्मक एवं भावात्मक परानुभूति के वितरण के परानुभूति के बहुत से अध्ययन एवं पराविश्लेषण यह बताया है कि संज्ञानात्मक मूल्यांकित परानुभूति तथा भावात्मक प्रत्यक्षकृत परानुभूति की अवधि मे मस्तिष्क के विभिन्न स्त्रोत सक्रीय होते है। विभिन्न प्रकार की मास्तिक्रिय क्षतिया संज्ञात्मक एवं संवेगात्मक परानुभूति के मध्य अनतर को सुनिश्चित करती है भावात्मक परानुभूति को उपरोक्त मापनियो के अंतर्गत उपविभाजित किया जा सकता है।

18.6 परानुभूति परक सम्बन्ध

एक ऐसी सहानुभूति या भाव जो लोगों की कठिनाई के रूप मे जन्म लेता है व्यक्तिगत दबाव दूसरों को परेशानियों में बेचेनी एवं चिंता की आत्मकेंन्द्रित अनुभूति व्यक्तिसदभाव परानुभूति का प्रारंभिक रूप है या यह परानुभूति को जन्म नहीं देता इसमे कोई सर्वमान्य मत नहीं है इन उपभागों मे विकासात्मक पहलू भी सापेक्षित भूमिका निर्वाह क्र सकते हैं यहाँ तक कि दो साल के बच्चे भी दूसरों की परेशानीयों को देखकर उसे बाटने की तथा सम्बोधित व्यक्ति को आराम देने की कोशिश करते हैं. संज्ञानात्मक परानुभूति भी दो उपभागो में विभाजित हो सकती है।

1. परिपेक्ष्य ग्रहण – दूसरों के मनोविज्ञानिक परिपेक्ष्य को यथावत ग्रहण करने की प्रवृत्ति ।
2. काल्पनिक चित्रों को तादात्मिकृत करने कि प्रवृत्ति।

18.7 परानुभूति का विकास

जब बच्चे लोगों को पीड़ा सहन करते हुए देखते हैं तो उनके मस्तिष्क के पीड़ा से संबन्धित स्नायुविक से सक्रीय हो जाते हैं दो साल के बाद बच्चे दूसरे व्यक्ति की संवेगिक दशा के अनुरूप सावेगिक व्यवहार क मूल आधार ही कभी एक वर्ष के बच्चे भी परानुभूति का प्रदर्शन करते हैं अर्थात् वे हमारे कार्यों को व क्रियाओं को समझ लेते हों 2 वर्ष के बाद बच्चे दूसरों को मूर्ख समझते हुए खेल खेलते हैं और इससे सिद्ध होता है कि बच्चे किसी भी प्रकार के हस्ताधिगम करने के पहले दूसरोँ के विश्वास को जान लेता है।

परानुभूति परमपरित्यक्ता एक संज्ञानात्मक संरचनात्मक सिद्धांत है जिसकी यह विश्वविद्यालय के स्कूल आफ नर्सिंग में हुआ यह सिद्धांत के द्वारा पता चलता है कि वयस्क लोग रोगियों में व्यक्तित्व को कैसे समजते हैं यह सिद्धांत सबसे पहले नर्सो पर फिर अन्य व्यवसायों के ऊपर व्यक्त

किया गया यह संज्ञानात्मक संरचना की विशेषताओं के तीन स्तर को वर्णित करता है. क्रोध– परानुभूति परक क्रोध एक संवेग है और यह एक प्रकार क परानुभूति परक दबाव भी है परानुभूति परक क्रोध उस परिस्थिति महसूस किया जाता है जब कोई दूसरा किसी व्यक्ति या वस्तु से घायल हो इस प्रकार के क्रोध परासामाजिक संवेग भी कहा जा सकता है. परानुभूति परम क्रोध का सहायता परक एवं दण्ड परक दोनों प्रकार की इच्छाओ पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। परानुभूति क्रोध को दो उपश्रेनियो––––––में बाँटा जाता है शील गुण परानुभूति परक क्रोध तथा परिस्थिति जन्य परानुभूति क्रोध दूसरे व्यक्ति की ओर दी जाने वाली परानुभूति एवं क्रोध की प्रतिक्रियाओं के मध्य सम्बन्ध क भी अध्ययन किया गया है.

दबाव – परानुभूति वपरक दबा व दूसरे व्यक्ति की प्रत्यक्सिकृत पीड़ा को अनुभव करना है यह अनुभूति परानुभूति परक क्रोध अन्याय की अनुभूति या अपराध के रूप मे संक्रमित होती है यह संवेग असमाजिक रूप में प्रत्यिक्सकृत हो सकते है और कुछ लोग कहते हैं कि इसको नैतिक व्यवहार के

अभिप्रेरक के रूप मे भी देखा जा सकता है। टिपिकल परानुभूति क्रियाएं– टिपिकल परानुभूति परक क्रियाएं स्वालीनात्मक विकृतियों विशेष रूप से व्यक्तित्व परक विकृतियां जैसे मनोविकार सीमा रेखांकन आत्ममोही मनोविदल व्यक्तित्व विकृति चरित्र विकृति

मनोविदिलता द्विध्रुवीय विकृति तथा अव्यक्तिकरण से सम्बन्धित होती है. स्वली दृष्टीकोण परानुभूति एवं स्वलीन दृष्टीकोण के मध्य अंतरूक्रिया एक जटिल विषय है।

18.8 एलैक्सीथीमिया

जिन व्यसनों में आत्मलीन दृष्टि विकृति पाई जाती है उनमें एलैक्सीथीमिया की अधिक उपस्थिति देखने को मिलती है एलैक्सीथीमिया स्वयं एवं दूसरों में संवेगात्मक उद्दोलन की पहचान में असमता को वर्णित करती है. ऐसे लोग दूसरों के साथ सम्बन्ध बनाने में कोई रूचि नहीं रहते और बने हुए सम्ब न्धों से संतोष नहीं होता यह न केवल सामाजिक बल्कि मानसिक क्षति भी है।

18.9 मेरिन्यूरान क्रिया

एक अध्ययन के द्वारा यह प्राप्त किया गया है कि विकासशील एवं उच्च प्रक्रियात्मक बच्चे जिनमें आत्मीलन्ता की आवन होती है सम्वेगातम्क अभिव्यक्तियों के निरीक्षण एवं अनुकरण में मेरिन्यूरान क्रिया का परिचय देते ही यह संवेगात्मक परानुभूति के लिये आवश्यक है।

मस्तिष्क का सिद्धांत दृ ऐसा पाया गया है कि आत्मलीन लोगों में मन कासिद्धान्त सतिग्रस्त होता है मन का सिद्धान्त ऐसी योग्यता है जो दूसरों के परिपेक्ष्य को समझता है संज्ञानात्मक परानुभूती एवं मन का सिद्धान्त प्रायरू समान अर्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं परन्तु इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं है मन का सिद्धान्त टम्पोरल लोव एवं प्रिफेंटल कारटेक्स एवं परानुभूति की संरचना पर विश्वास करता है अर्थात् दूसरौं की अनुभूतियो के साथ साझेदारी करने की योग्यता का विकास होता है. फ्राससिस्का हप्पे ने बताया कि आत्मलीन बच्चे जो मन के सिद्धान्त की नमी को दर्शाते हैं उन्हें स्वयं और दूसरे में कोई अंतर नहीं प्रतीत है अपने में भी तथा दूसरों की अनुभूतियो के प्रति उदासीन होते है।

परानुभूति एवं मन के सिद्धान्त के मध्य अंतर की कमी ने परानुभूति परक योग्यताओं को पूर्ण रुप से नहीं समझा है. संज्ञानात्मक एवं भावनात्मक परानुभूति परक – अध्ययनों से प्राप्त हुआ है कि आत्मलीन लोग परानुभूति की क्षमता में सापेक्षतया कम होते हैं और कष्ट में जीने वाले लोगों के प्रति प्रतिक्रियाओं में कम होते हैं परन्तु दबाव की मात्रा प्रायरू बराबर या अधिक ही रहती है बड़ा हुआ ब्यक्तिगत दबाव और घटता हुआ परानुभूति परक व्यवहार आत्मलीन लोगों मैं पूर्ण रूप से परनुभूति का ह्रास कर देता है स प्रो. साइमन बैरन कोहन ने कहा है कि पारंपरिक रूप से आत्मलीन लोगों में संज्ञानात्मक एवं भावात्मक परानुभूति की

कमी होती है स शोधों से यह भी प्राप्त हुआ है कि एसपरजर संलक्षण से युक्त लोगों मै दूसरोँ को समझने की योग्यता में कमी तथा अपने व्यक्तिगत

दबाव के कारण समान परानुभूति परक व्यवहार होता है ऐसा बहुत ही कम मिला है कि आत्मलीन लोगों में संवेगात्मक परानुभूति अधिक हो यद्दपि संवेगात्मक परानुभूति मिरर न्यूट्रान क्रिया पर आधारित रहती है ।

फिर भी ऐसे लोगों में परानुभूति देखने को प्राप्त नहीं होती परानुभूति एवं अनिर्रसमुह सम्बन्ध के अध्ययन में सापेक्षित स्थान प्राप्त किया है ऐसे शोध व्याघातों की विशेषता पर आधारित है जो अन्तर्र्सत आवृतियों को बढानें तथा अन्तरसमूह एकाधार को घटाने के लिये परानुभूति परम व्यवहार करते हैं ।

विशेषतरू ये कार्य इस तथ्य का वर्णन करते हैं कि भिन्न प्रकार के हस्ताधिगमनों में परानुभूति क्या प्रभाव डालती है यहाँ निर्विवाद सत्य है कि इसके द्वारा अंत समूह में सुद्रिड़ता आती है अनिर्रसमुह विभेदन का पूर्व कथन करता है व्याघ्रात पद्धति को अपनाकर समूह के प्रत्यक्ष दृश्य से संबंध स्थापित किया जा सकता है और अंत समूह आवृति में संबंध स्थापित हो सकता है स वासर– गुणा रोपण हमारी अनुभूतियों को निवेशित करता है। परनु संवेगिक प्रतिक्रियाए व्यवहार को गतिशीलता व निर्देशन देती है स परानुभूति में अंतरव्यक्ति तथा अंतर सामूहिक विशेषता होती है। प्रत्येक व्यक्ति का आत्म प्रस्तुतिकरण होता है और इससे समूह को समग्र बनने के लिये सकारात्मकताए प्राप्त होती हैं इस संबंध में बहुत से अध्ययन हुए हैं परन्तु सभी अध्धयनों को एक साथ रखने पर यहाँ सिद्ध होता है कि दूसरे सामुह क कोई सदस्य यदि अन्य समुह में सदस्यता प्राप्त करने जाता है तो पूरे समूह के व्यवहार पारदर्शी हो जाता है समुह सदस्यता अन्तर समुह आवृति एवं परानुभूति दोनों को प्रभावित करती है तथा ये दोनों कारक स्वतंत्र रूप से दोनों को प्रभावित करते हैं।

परानुभूति परक प्रतिक्रियाओं के समंकरू अभिवृतीय सन्दर्भ– अन्तर सामुह संपर्क सामान्यता अन्तरसमुह अभिवृति को विकसित करने में प्रभावशाली होता है सन्दर्भ की प्रकृति किसी अन्तरसमुह अभिवृति के माध्यम से प्रकट होती है ।

जब सकारात्मक अन्तसमुह संपर्क अन्तरसमुह एकाधार को कम करेगा तो नकारात्मक रूप में प्रतिजलित होने वाले सन्दर्भ एवं प्रसामजिक अभिवृति पर बाध्य समूह कर प्रभाव पड़ता है जो उनकी विभेदनात्मक प्रत्याशालाओं पर आधारित होता है अतरू प्रसामाजिक व्यवहार को परानुभूति परक व्यवहार की उपस्थिति हेतु मध्यस्थकारी भूमिका का निर्वाह करना चाहिए जिससे सिद्ध होता है कि अन्तरव्यक्ति संबन्ध में परानुभूति की महत्ता सुस्थापित

है और अन्तरसमुह संबन्ध को सुधारने में यह स्थिर मौलिक एवं प्रयासत्म्क व्यवहार करती है।

18.10 आशावाद

आशावाद एवं निराशावाद का संप्रत्यय लोगों के भविष्य की प्रत्याशाओं के साथ जुड़े हैं यह संप्रत्यय लोक बुद्धि से जुड़े है तथा इन्होनें अभिप्रेरणा के एक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत निर्माण किया गया जिसको प्रत्याशा मूलक सिद्धांत कहा जाता है यह सिद्धांत ऐसा तार्किक मूल्य प्रदान करते है जिनके माध्यम से हम यह जान सकते हैं की आशावाद एवं निराशा वाद व्यक्ति के व्यवहार वह संवेग को किस प्रकार प्रभावित करते है की व्यवहार का उद्देश्य लक्ष्य प्राप्ति हैं

कारवर एवं शियर (1998) के अनुसार – लक्ष्य कार्य अंतरस्थितीय वह मूल्य है जो लोग वांछनीय या अवांछनीय रूप से परिलक्षित करते है उन परिस्थितियों मई खुद को समायोजित करने की कोशिश करते है परन्तु जो परिस्थितिया उनको अवांछनीय लगती है वहा से हट जाने को प्रयास करते है इस सैधांतिक उन्मुखता के अनुसार यदि व्यक्ति के पास मूल्य परख लक्ष्य नहीं है तो उसके कोई कार्य नहीं हो सकते हैं

विश्वास या संदेह की दशा जो प्रत्यक्षतरू लक्ष्य प्राप्ति से जुडी होती है यदि व्यक्ति मैं विश्वास नही होता तो कोई भी कार्य नही होता इसके विपरीत यदि व्यक्ति में यदि विश्वास पर्याप्त मात्रा मे होता है तो लोग लक्ष्य केन्द्रित व्यवहार करने लगते हैं यह विचार विशिष्ट मूल्य केन्द्रित विश्वास क साथ नही लागू होते बल्कि आशावाद और निराशावाद से सम्बंधित हैं इन सिद्धांत से आशावाद तथा निराशावाद के सम्बन्ध में अनेक पूर्व कथन है किसी भी चुनौती को स्वीकार करते समय प्रगति धीमी क्यों न हो आशावादियों को अपनी स्थिरता और आत्म विश्वास नही खोना चाहिए आशावादी संकोची व् संचयी होते है आशावादी सोचते है के वह विपत्ति को आसानी से हल कर लेंगे परन्तु निराशावादी हर पल विपत्ति की आशा करने लगते है यह सिद्धांत अनेक आयामों में अन्तरो को बताने लगता है जो स्वस्थ सम्बन्धी खतरों सावधानियो और उन पर विजय पाने से सम्बन्धित हैं यह उन अन्तरो को बतलाता है जिसमे बचाओ करो प्रक्रियाये प्रयोग में लायी जाती है लेकिन जब व्यवहार का वर्णन किया जाता है तो विपत्ति का सामना की जाने वाली प्रक्रियाये ही केवल व्यवहार नही होती लोग ऐसी परिस्थिति में संवेग का अनुभव करने लगते है कदिनैया अनुभूति उत्पन्न करती है इसी को आशावाद तथा निराशावाद का उद्भव माना जाता है।

आशावादी सदैव अच्छे परिणाम की आशा करते है उनमे सकारात्मक भाव संवेग एवं प्रतिक्रियाओं का मिश्रण होता है ।

निराशावादी नकारात्मक परिणाम की आशा करते है इसी लिए उनमे चिंता उदासी तथा निराशा देखने को मिलती है।

विधि परक कथ्य से सम्बन्धित निर्मितिया आशावाद के साथ जुदा एक विधि परक कथ्य यह है की आशावाद के साथ अनेक निर्मितिया जुडी होती है मौलिक रूप से वे केवल आशावाद की ही नही होती बल्कि एक दूसरे के साथ सम्बंधित होती है

प्रथम – नियंत्रण बोध (थॉमस 2002) व्यक्तिगत क्षमता बोध (बैन्दुरा) यह संप्रत्यय वांछित परिणामो की की प्रतियाशाओ का उसी प्रकार प्रतिनिधितव करता है जैसे आशावाद करता है वांछित परिणाम कैसे प्राप्त होते है इसकी अभिकल्पनाओ में अंतर है आत्म क्षमता संप्रत्यय जिस मई आत्म एक सम्वाहक के रूप में कार्य करता है उदहारण के लिए यदि लोगो की आतं क्षमताये एवं प्रत्याशाये अधिक है तो वे अपने व्यक्तिगत प्रयास या कौशल पर विश्वास रखेंगे जो उनके परिणामो को निर्धारित करेगा।

इसी प्रकार नियंत्रण के संप्रत्यय के साथ भी यही घटना घटित होती है जब लोग स्वयं को नियंत्रण में देखते है या विश्वास करते है तो उनका वांछित प्रतिफल उनके अपने व्यक्तिगत प्रयासों में उपस्थित होगा इस व्याख्या के प्रतिरूप आशावाद व्यक्ति के गुण तथा क्षमताओं पर आधारित होता है लोग इसलिए आशावादी होते है क्योंकि वे गुणवान ईश्वरीय शक्ति से प्रदत्त भाग्यशाली अच्छे मित्र या अच्छे मित्रो से युक्त होते है ये करक अनेक कारको क साथ मिलकर आशावादिता को बढ़ाते है और इसके फलस्वरूप व्यक्ति को वांछित प्रतिफल की प्राप्ति होती है (मर्फी 2000)

उदाहरण स्वरूप हम कह सकते है के यदि व्यक्ति अकेला रहने के बजाये लोगो साथ रहे तो तो वह कठिन से कठिन परिस्थियों का सामना भी आसानी से कर सकता है और अकेला इंसान कठिन परिस्थियों में चिंता व निराशा से घिर जाता है बहुधा देखा गया है क अकेला इंसान अवसाद से भी ग्रसित हो जाता है।

आशावाद का यह रूप बाहरी सकारात्मक सम्वाह से प्रभावित होता है व्यक्तिगत क्षमता वांछित प्रतिफल का एक प्रमुख निर्धारक है कुछ ऐसी परिस्थितिया होती है जहा पर हमे स्वयं ही कार्य को सम्पादित करना होता है और हमारा लक्ष्य बिंदु सफलता की प्राप्ति होता है इसलिए व्यक्ति गत नियंत्रण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण पाई जाती है अन्य निर्मिती जो आशावाद क तुल्य है वो है आशा।

18.11 आशा के दो भाग है

18.11 (1)–व्यक्ति द्वारा चुने मार्गो के अस्तित्व का प्रतिफल है जो उसे उसके मार्ग में पहुचाते है

18.11 (2) –व्यक्ति के विश्वास का स्तर जो रास्तो तक पहुचता है

अन्तोत्वगात्वा यह भी बताया गया है की निराशावाद का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्नायु विकृति से है (स्मिथ पॉप) स्नायुविक विकृति तथा संवेगात्मक स्थिरता को चिंता तथा दुखद संवेगों की अनुभूति से जोड़ा गया है (मार्शेल यंग 1990) ने यह पाया की यदि स्नायु विकृति का नियंत्रण कर दिया जाये तो आशावाद एवं अनेक प्रत्याशा चरों का सहसंबंध कम हो सकता है शिएर कारवार एवं ब्रिबज (1990) ने यह पाया की इन निर्मितियो के मध्य ओवर लेप कम था परन्तु उन्होंने ये पाया की निराशावाद और स्नायुविक विकृति में सहसंबंध दृष्टिगोचर हो रहा था।

द्वी एक ध्रुवीय या द्वी एक ध्रुवीय दृ दूसरा विधि परक कथन इस तथ्य से सम्बंधित है।

आशावाद तथा निराशावाद दो कारको से पृथक किये जा सकते है पहला सकारात्मक रूप से निर्मित पदों (में अपने भविष्य के प्रति हमेशा आशावादी रहता हूँ) नकारात्मक रूप से निर्मित पद (में अपने लिए समर्थन की बहुत कम अधिक उम्मीद करता हूँ) ऐसा देखा गया है की दोनों उपमापनिया व्यक्तित्व के के विभिन्न संबंधो का माप करती है प्रश्न यह है की पदों के इन दोनों से के मध्य अंतर क्या है क्या यह पूरी तरह विधि पर आधारित है अथवा यह निर्मित वैधता को बतलाता है जब पदों के विभाजन इस पूर्व कथनों के आधार पर किया जाता है तो नकारात्मक पदों का ही पूर्व कथन पहले अथवा अधिक होता है।

कारवार तथा गेन्स के द्वारा एक अध्यन किया गया जिसमे प्रसव के उपरान्त महिलाओं के अवसाद ग्रस्त अनुभूतियो के विकास का अध्यन किया गया यह अध्ययन आशावाद एवं संवेगात्मक अनुभूति के अंतर्गत किया गया स्त्रियों ने ..... एवं अवसाद मापनी पर अपनी गर्भावस्था के तीसरे महीने में प्रतिक्रिया दी प्रसव की बाद उन्होंने दोबारा अवसाद मापनी का परीक्षण किया आशावाद प्रारंभ में अधिक मात्रा में पाया गया और उसके उपरान्त प्रसव के बाद इसकी मात्रा कम पायी गयी।

18.12 चिकित्सात्मक संदर्श

आशावाद एवं सकारात्मक स्वस्थिबोध का प्रयोग चिकित्सात्मक अर्थ में भी किया जाता है कुछ परियोजनाओ में उन लोगों का अध्यन किया जिनकी बाईपास सर्जरी हुई थी एक अध्यन ऑपरेशन के पहले और एक ऑपरेशन के बाद हुआ आशावादियों में दबाव की मात्रा कम तथा जिजीविषा की मात्रा अधिक थी जेराल्ड तथा अन्य (1993) उन्हें ऐसा अनुभव हो

रहा था की ऑपरेशन के बाद जीवन की अवधि में बढ़ोतरी हो जाएगी कार्वेट ने 1993 में आशावाद का अध्यन ब्रैस्ट कैंसर के अध्यन के साथ भी किया उन महिलाओं का साक्षात्कार ऑपरेशन के एक दिन पहले तथा ऑपरेशन के कुछ दिन बाद तथा 3, 4 तथा 12 माह बाद लिया गया आशावादी महिलाएं सहनशीलता का परिचय देती रही सलिनसन गुल्चाड और इलीन (2000) ने कैंसर के मरीजों पर यही परिणाम प्राप्त किया।

अन्य स्थितिया— चिकित्सात्मक दशाये केवल प्रतिबल की अव्दाशाये नही है जिसमे आशावाद का अध्ययन हो सकता है बल्कि मरीजो की देखभाल करने वाले लोगो की आशावादिता अवसाद तथा उनके दैहिक स्वास्थ पर भी आशावाद का सापेक्षिक प्रभाव पड़ता है गिबन तथा अन्य (1193) हबर तथा अन्य (1992) शिशन तथा हबर (1995) के द्वारा इन परिणामो की पुष्ठी हुयी है

आशावाद, निराशावाद तथा कोपिंग— यदि परेशानियों के समय आशावादी लोग निराशावादी लोगो की तुलना में कम परेशानी का अनुभव करते है तो क्या वे प्रसन्न चित्त लोग है नही यह इसलिए होता है क्यों की उनको अवसाद के उप्पर नियंत्रण होता है इसका मतलब है की वे आशावादी लोग है वे लगातार प्रयत्न कर के सफलता पाने के लिए विश्वस्त होते है यहाँ तक की उस समय भी जब वे विपत्ति में हो ये उनकी आशावादिता का ही परीणाम होता है की वे सकारात्मक चिंतन के द्वारा अपनी विपत्ति से छुटकारा पा लेते है इसके विपरीत जो परिस्थितियों से छुटकारा पाते हैं वे समस्या का समाधान करने में चूक जाते है।

आशावादी उपागम वादी होते है और निराशावादी परिहार्वादी होते है ऐसा इसलिए भी होता है क्यों की आशावादी सकारात्मक विचारो को मन मई उभरने देते है नकारात्मक परिस्थियों की अवहेलना ही उनकी सकारात्मकता पर प्रभाव डालती है और उनकी गुण वत्ता को दूर करती है।

18.13 कोपिंग की श्रेणिया

कोम्पस (2001) स्किनर (2003) के अनुसार हमारे पास ऐसे बहुत से मार्ग है जिनको अपनाकर हम तनाव पूर्ण परिस्थियों से बाख सकते है इन विधियों में सबसे उत्तम विध्ही समस्या केन्द्रण है

बैज़र्सन फोल्क्मन (1984) रूथ कोह्हन तथा स्किनर ने कहा स्त्रेस्स्फुल सिचुएशन से दूर हो जाये वह इससे बाहर निकलने का एक मात्र रास्ता है

इस विचार को विस्तृत करते हुए सोब्रग्नैस (2006) ने आशावाद तथा सुरक्षत्मकता का परविश्लेशन किया और उन्होंने यह पाया की आशावाद का का सम्बन्ध संलंगनसत्मकता सुरक्षसत्मकता तथा संवेग केन्द्रित ससकारात्मक रूप से सम्बंधित था आशावाद में बहुत सी समस्या केन्द्रित तकनीक बतलाई जिससे प्रतिबल को नियंत्रित किया जा सकता था उन्होंने कुछ संवेग केन्द्रित सुरक्षात्मकता जिसे ट्रौमा भी कहा जाता है का वर्णन किया

18.14 आशावाद तथा स्वास्थ में वृद्धि

ऐसी बहुत सी स्थितिया है जिसमे आशावादिता स्वास्थ को बड़ा देती है यदि हम इसकी गहराई मई जाये तो आशावादी खतरों से नही घबराते, बहिर्मुखी होते है सदैव खुश रहते है निराशावादी खतरों से एकदम घबरा जाते सदैव दुखी रहने वाले तथा अंतर्मुखी होते है आशावाद न केवल मानसिक बल्कि शारीरिक स्वस्थ पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है

18.15 आशावाद एक सामाजिक स्त्रोत

आशावाद सामाजिक आयामों में सफल रहते है बिसैती एवं अन्य ने एक अध्य्य्न में कॉलेज प्रारंभ करने वाले के समक्ष आने वाली चुनौतियों एवं सुरक्षा उपायों का अध्ययन किया आत्म बोध स्वस्थी बोध से परे इस अध्ययन में यह सिद्ध हुआ की आशावादियो ने निराशावादियों की तुलना में फर्स्ट सेमेस्टर तक अपना सामाजिक दाएरा बड़ा लिया बहुत से लोग सम्बन्ध स्थापन के लिए आशावाद को एक सकारात्मक स्त्रोत मानते है

18.16 क्षमा दान

क्षमा दान का संप्रत्यय बहुत दिनों से विश्व के सभी धर्मो में चर्चा का विषय रहा है परन्तु विगत कुछ वर्षो से मनोवैज्ञानिको ने इसमें गहन रूचि लेना प्रारंभ कर दिया है क्षमादान के सन्दर्भ में किये गए नए कार्य एक्स्ट्रीम एवं उनके सहयोगियों (1990 –1997) दृ व्यक्तित्व की वे प्रतिक्रियाये जिनमे क्षमादान का बहुत महत्त्व है मेक्गुलाक 2001 में किये गये अध्ययन द्वारा यह प्रकाश में आयी एनद्राम गील्ड्राद 2000 ने अपने शोधों के परीणाम के आधार पर यह पाया की व्यक्ति की आयु में वृद्धि के साथ क्षमा दान में भी वृद्धि होती है क्षमा दान का महत्त्व रक्त चाप और श्वास जैसी दैहिक अनुमापो में प्रभाव डालता है मित्वैलेट तथा लाम २००१ ने कहा क्षमादान को आगे बढ़ाने में नैदानिक अवरोधों का भी महत्व है इस तरह के शोधों में मूलतः शोधार्थी यह सिद्ध करना चाहते है की क्षमादान शब्द का क्या अर्थ है बहुत सी परिभाशाओ में समानता दृष्टिगोचर होती है

एंडरात एवं उनके सहयोगियों ने 1992 में क्षमा दान को व्यक्ति की अपराध क प्रति निर्णय लेते समय नकारात्मक भाव के ऊपर पूर्ण विजय है जो अधिकार व प्यार के आधार पर उसके निर्णय को नही बदलती बल्कि वह अपराधी की ओर स्नेह संतुलन व समर्पण से उन्मुख हो जाती है एक्लिने मेमस्टर 2000 ने क्षमा दान को चोट खाए हुए व्यक्ति का चोट खाए हुए व्यक्ति को ऋण मुक्त कर देना है मेककुलाक एवं उनके सहयोगियों ने क्षमा दान को अभिप्रेरणात्मक परिवर्तनों का एह सेट कहा है जिससे एक व्यक्ति 1–अपराधी प्रतिभागी के विरोध में कम से कम एक व्यक्ति अभिप्रेरित होता है 2– विरोध के प्रति उसकी विमुखता का स्तर लगातार कम होता जाता है 3– अपराधी द्वारा आघात पहुचने वाली क्रियाओ के बावजूद उसके लिए सदीक्षा तथा मैत्री पूर्ण व्यवहार रखा जाता है उपरोक्त परिभाषाओ में अंतर होने के बावजूद एक महत्वपूर्ण बिंदु पर यह सामान है यह बिंदु वह परिकल्पना है कि क्षमादान अपराधी के प्रति क्षमादाता के व्यवहारों में प्रसमाजिक परिवर्तन को प्रस्तुत करता है वास्तव में सरे मनोवैज्ञानिको का यही मत है जब लोग क्षमा करते है तो उनकी प्रतिक्रियाओं में अपराधी के प्रति कम नकारात्मक अधिक सकारात्मक देखने को मिलता है बहुमत का यह बिंदु मेककुलाक तथा थ्योरेंसन 2000 में दिया उनका कहना था की व्यक्ति के अंदर होने वाला प्रसमजिक परिवर्तन उसे अपराधी के प्रति निर्विवाद रूप से क्षमा करने को विवश कर देता।

18.17 क्षमादान के विरोधी विचार

चूँकि प्रसामजिक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन क्षमादान का नैतिक चिन्ह है और परिवर्तन समय अंतराल को मांगता है समय क्षमादान का महत्व पूर्ण आंतरिक पहलू है इस सिद्धांत में क्षमादान के सैद्धांतिक और विधिपरक विचार की उपेक्षा की गयी अधिकतर शोधों में मनोवैज्ञानिको ने क्षमादान को एक व्यक्ति के अपराधी के प्रति एक बार किये गये आम प्रतिवेदित संज्ञान संवेग अभिप्रेरणा एवं व्यवहार को बतलाता है मेकगुलाश एवं होएट 2002 ने अपने अंतर व्यव्हारात्मक अध्ययन बतलाया की हम बहुधा की क्षमादान दाता याची को बहुत बार विवशता के कारण, व्यक्तियों की खुशियों के चलते , सामाजिकता के चलते सिर्फ बाहरी तौर पर माफ़ क्र देता है परन्तु अंदर से उसे पूर्णतया माफ़ नही क्र पाता उसे माफ़ करना बहुधा उसके लिए एक दिखावा होता है और क्षमा याची सोचता है कि उसे क्षमादान मिल चुका परन्तु यह केवल एक अधुरा सच होता है इस विषय में बहुत से अध्ययन हुए और परिणाम ये ही पाया गया की माफ़ी बहुधा बहरी होती है आंतरिक नही।

इस सम्बन्ध में यह परिकल्पित किया जा सकता है की अपने प्रतिवेदन में जिन लोगो ने अपराधी के प्रति कम उपेक्षा तथा प्रतिशोध अभिप्रेरणा तथा उच्च्य स्तरीय उदारता का परिचय दिया हो वे सही अर्थ में क्षमादान दाता सिद्ध होते है।

अन्यत्र को क्षमादान क्षमादान की अधिकतर अवस्थाओ में लोग दूसरे प्रतिभागी को एक अपराधी के रूप में देखते है टैगनी 1999 में इसके सन्दर्भ में एम् मॉडल दिया और उस अभिरूप के चार परिणामो को दूर किया ।

18.17 1– एक अपराधी के प्रति भावनात्मक संज्ञानात्मक संक्रमण ।

18.17 2– अभिशप्त अपराधी के उत्तरदायित्व परन्तु उसके द्वारा दिए गये आघात का वास्तविक मुल्यांकन करता है ।

18.17 3–बदला लेने या उसे दंड देने की आवशयकता को अस्वीकार कर देता है परन्तु इस सन्दर्भ में उसे नकारात्मक संवेगों का पूर्ण त्याग करना होता है वास्तव में क्षमादान करते समय क्षमादान दाता अपराधी द्वारा किये गये सभी कार्यो के लिए अपने विरोध की अनुभूति पर विजय प्राप्त कर लेता है।

18.17 4– क्षमादान दाता अपराधी को क्षमा कर के स्वयं को उससे दूर कर लेता है

स्वयं को क्षमादान– दिशिया ने कहा की आत्म क्षमादान अपने द्वारा की गयी त्रुटी का प्रतियाक्षिकरण करने के उपरान्त अपने प्रति विद्रोह को धीरे धीरे कम कर देना चूँकि हम हपने ही साथ रहते है इसलिए दूसरो को क्षमा करने की अपेक्षा दुष्कर हो जाता है।

परिस्थिति को माफ़ करना– क्षमादान को केवल व्यक्ति के लिए ही प्रयुक्त होना चाहिए पशुओ के लिए नही क्या यह विचार सही है शायद नही । हमें मनुष्य पशु और यहाँ तक कि परिस्थितियों को क्षमादान के अंतर्गत रखना चाहिए जिसके अंतर्गत अपराध की उत्त्पत्ति हुई और अपराधी को क्षमादान दिया गया।

यामसन ने कहा कि क्षमादान व्यक्ति स्वयं तथा परिस्थिति इन सभी लक्ष्य बिंदुओं के साथ हो सकता है स क्षमादान ने संदर्भ कि प्रायरू अपराधी अपने अतीत और वर्तमान के में किये गए अपराध के साथ सहसम्बन्ध स्थापित कर लेता है अपने द्वारा किये गए अपराध के उत्तरदायी वह प्रस्तुत परिस्थिति नहीं मानती अपने अतीत में हुई बहुत सी घटनाओं को वह उस घटना के लिये उत्तरदायीमानता है।

इसी प्रकार क्षमादाता भी यदि अपराधी के अतीत के कृत्यों को भी ध्यान में रखता है तो उसमें वर्तमान में क्षमादान करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है इस समय नैदर. मनो. क कर्तव्य होता है कि वह उससे यह निवेदन करे कि वह केवल वर्तमान पर केन्द्रित हो और अतीत से सम्बन्धित सारे नकारात्मक विचारों पर पूर्ण विराम लगा दें, इससे वह वर्तमान में रहते हुए भविष्य कि ओर जा सके।

उदा.–क्षमा याचना का मापन दृ क्षमादान के सारे सिद्धान्त व्यक्ति के द्वारा दिए गए आत्म प्रतिवेदन से संबंधित है।

जहा पर हम केवल आत्मप्रतिवेदन की सत्यता पर ही आश्रित होते हैं परन्तु उस सत्यता का मूल आधार क्या है हम नहीं जानते इसको ध्यान में रखते हुए थामसन सहयोगी 2005 ने क्षमादान के शील गुड़ का मापन करने के लिये 19 पदीय मापनी का निर्मार्ण किया इसमें क्षमादान में तीन रुप ही स्वयं / अन्यध्परिस्थिति और प्रत्येक के लिये 6 पद सुनिश्चित किये गए हैं यह पद ७ बिंदु शब्दार्थ विभेदन मापनी के रूप में प्रयुक्त किया गया है स इस मापनी पर पायी जाने वाले अंक क्षमादान के अन्य परिकक्षणों में साथ सकारात्मक रूप से सहसम्बंधित है और इस परिकक्षण में उच्च अंक पाने वाले लोग अधिक लचीले विश्वास पात्र तथा कम विध्वंसात्मक तथा कम अव्सायी तथा मननशील होते हैं इस मापनी का वर्णन निम्नवत है–

मापनी

मैक ग्लोबल एवं उनके सहयोगीयों ने 1998 में अपराधी अपराध सम्बन्धी अंतरव्यास्तिक अभिप्रेरणा मापनी का निर्माण किये जिसमें 12 पद आत्म प्रतिवेदन के रूप में दिए गए ये पद 5 बिंदु शब्दार्थ मापनी में व्यवस्थित है ।

इसका वर्णन निंम्वत है–

टैंगनी एवं उनके सहयोगियों ने 1991 में बहुआयामी क्षमादान आविस्करिका का निर्माण किया इसमें अपराध के संबंधित 16 विभिन्न दृश्यों का मापन किया गया है ।

1. खुद को क्षमादान करने की कला ।
2. दूसरों क्षमादान करने की कला ।
3. क्षमायाचना करने की कला ।
4. दूसरों पर दोष आरोपित करने की कला ।
5. खुद पर दोष आरोपित करने की कला ।
6. स्वयं को क्षमा करने में लगने वाला समय ।
7. दूसरों को क्षमा करने में लगने वाला समय ।
8. भावनाओं को आघात पहुचाने के प्रति संवेसता क्रोध युक्ता ।

क्षमादान का विकासात्मक एवं स्नायुदैहिक प्रकार हम एक समूह में रहते हैं और समूह के साथ सम्बन्ध की स्थापना एवं निर्वाह करते समय बहुत बार रुजा होते है कि हमसे (गलती से या जानबूझकर) दूसरे की भावनाओं का अनादर हो जाता है दूसरा व्यक्ति जिसका अनादर होता है वह दो प्रकार की परिस्थितियों से रूबरू होता है।

1. यदि अपमान जनक बात उसके भावनाओं की गहराई व अहम को स्पर्स नहीं करती तो वह थोड़े समय के बाद उसे भूल जाता है परन्तु यदि वह अपमान जनक उद्दीपन उसके अहम या किसी भी भावनात्मक पहलू को स्पर्स करता है तो वह दूसरे व्यक्ति के प्रति आक्रामक हो जाता है और उससे तर्क कुतर्क करने लगता है।

परन्तु समदाता ऐसे व्यक्ति से किसी भी प्रकार का तर्क नहीं करते समाज के नियम के अनुसार चलते हैं क्षमादान कि ऐसी प्रक्रिया को अपनाते हैं। जोविकासात्मक होती है जो समाज कि संरचना को सुद्रिर्ण बनाए रखते हैं सापेक्षित योगदान प्रदान करते हैं स न्यवर्ग ने समादान कि प्रक्रिया का जैव स्नायुविकी (2000) का वर्णन किया है।

1. आवश्यकता अनुसार क्षमायाचना व्यक्ति के स्वयं को मजबूत करती है जो अपराधी के साथ तर्क करने के दौरान नष्ट हो सकती थी कहना न होगा कि स्वएक विकासात्मक प्रक्रिया है जो समय कि वृद्धि के साथ दृसाथ व्यक्ति में संज्ञानात्मक भावानुभूति एवं क्रियात्मक स्थिरता को संरक्षित है। स्वका बोध मातिस्य में फ्रैन्टल रेमसोरल लोव में स्थित होता है जो हिप्पो कैम्पस व संवेदी व्यवस्था से अंतरूगमन प्राप्त करता है।

2. स्वपर होने वाला आघात संवेदीगत्यात्मक अंतर गमनों के माध्यम से अंकित हो जाता है और इस अंतर्गमन की मध्यता हाइपोयेमस नेपेथेरिकल नरवस सिस्टम लिविक सिस्टम करते हैं।

3. जब व्यक्ति क्षमादाता अपराधी व्यक्ति के साथ मैत्री स्थापित करना चाहता है तो टेम्पोरल पैरियल फेन्टल लोब लिम्बिक सिस्टम सब सक्रीय हो जाते हैं। अंत में क्षमादान के रूप में किया गया व्यवहार लिम्बिक सिस्टम से निर्दिष्ट होता है और उसका सम्बन्ध सकारात्मक संवेगों से होता है।

18.18 सारांश

18.18 (1)– **परानभूति**– परनभूति जिका अर्थ है अन्य लोगो की परवाह करना सहायता करने आदि से होता है।

18.18 (2)– **आशावाद** – आशावाद व्यक्ति में वांछनीय रूप से परिलक्षित है जो व्यक्ति को विभिन्न परिस्थिति में समायोजित करने का प्रयास करता है आशावादी का उद्देश्य लक्ष्य प्राप्ति है।

19.18 (3)– क्षमादान व्यक्ति को अपराध के प्रति निर्णय लेते समय नकारात्मक भाव के उप्पर पूर्ण विजय है जो अधिकार और प्यार के आधार पर निर्णय नही बदलती है

18.19 बोधात्मक प्रश्न

18.19 (1)– विधालय जाकर बच्चो को क्षमादान की विधिया बताइए

18.19 (2)–परान्भूति पर एक मैनेचर तैयार कीजिये

18.20 निबंधात्मक प्रश्न

18.20 (1)– परान्भूति से आप क्या समझते है इसका वर्णन विस्तार पूर्वक कीजिये ?

18.20 (2)– आभार से आप क्या समझते है विस्तार पूर्वक समझिए ?

18.20 (3)– क्षमादान का परिचय देते हुए इसकी व्याख्या विस्तार पूर्वक कीजिये ?